[मनुसंहि]तास्थविषयानुक्रमः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः

इति

भाषाप्रकाशसहिता—

मनुस्मृतिः

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ॥
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥

गणेशगुरुपादाब्जसेवनाल्लब्धबुद्धिना ॥
मनुस्मृतेर्भाषयाऽथ प्रकाशः क्रियते मया ॥ १ ॥

महर्षिलोक एकाग्रचित्त से बैठे हुए मनुजी के सम्मुख उपस्थित होकर मनुजी से उनका आसनादि सत्कार होने पर शिष्य के कर्तव्यानुसार नमस्कार आदि से मनुजी का सत्कार कर यह वचन बोले ॥ १ ॥

भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥
अन्तरप्रभवानाञ्च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

[कि] महाराज ! सब वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र तथा इनके मध्य में उत्पन्न अनुलोम सङ्कर प्रतिलोम सङ्कर व सङ्करसङ्कर अर्थात् अठारह जाति के आचार ब्राह्मण क्षत्रिय आदि के क्रम से हम लोगों को ठीक ठीक आप कह सकते हैं ॥ २ ॥

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः ॥
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ ३ ॥

क्योंकि महाराज आप ही केवल-विचार व प्रमाण से सिद्ध करने को अशक्य ऐसे इस सम्पूर्ण परमात्मा के सृष्टि बनाने का तत्त्व जानते हैं ॥ ३ ॥

स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ॥
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ॥ ४ ॥

ऐसा उन आगत महर्षियों के यथायोग्य पूंछने पर मनुजी उन सब महर्षियों का 'सुनिये' इस वाक्य से सत्कार कर बोले ॥ ४ ॥

आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयम्प्रसुप्तमिव सर्व्वतः ॥ ५ ॥

यह संसार नाम और रूप से रहित अत एव कल्पना व जानने को अशक्य सर्वत्र सुप्त की समान अन्धकार मय था ॥ ५ ॥

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥

उस समय अव्यक्त अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियों को अदृश्य स्वयंभू परमात्मा इस पृथिव्यादि जगत् का प्रकाश करने को तम का नाशक सत्त्व रूप से प्रादुर्भूत हुए ॥ ६ ॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥

जो अप्रत्यक्ष सूक्ष्म अव्यक्त नित्य समस्तवस्तुमय और अचिन्त्य था वही स्वयं प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

अपने शरीर से नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से उस परमात्मा ने ध्यानकर पहिले रज उत्पन्न किया फिर उसमें बीज का अर्थात् चिच्छक्ति का स्थापन किया ॥ ८ ॥

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
तस्मिन् जज्ञे स्वयम्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥

वह बीज सूर्य की समान कान्तिशाली सुवर्णमय अण्डा हुआ, उस अण्डे में सकल जगत् के उत्पादक ब्रह्मा स्वयं आविर्भूत हुए ॥ ९ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

रज को 'नार' ऐसा कहते हैं क्योंकि वह नर अर्थात् शुद्ध सत्त्व से उत्पन्न हुआ

है । सृष्टिके आरम्भ में नार इसका प्रथम विकार है अतः उस को नारायण कहते हैं ॥ १० ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

जो जगत् का कारण अव्यक्त नित्य और सदसद्रूप है उससे प्रकट भये हुए उस नारायण को लोक में ब्रह्म कहते हैं ॥ ११ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ १२ ॥

उस अण्डा में उस भगवान ने एक साल वास कर आपही अपने ध्यान से उस अण्डा के दो खण्ड किये ॥ १२ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्याञ्च दिवम्भूमिञ्च निर्ममे ॥
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥१३॥

उन दोनों खण्डों से ऊपर के खण्ड से स्वर्ग व नीचे के खण्ड से भूलोक, उनके मध्य में आकाश और पूर्वादि आठ दिशाएं तथा जलका शाश्वत स्थान अर्थात् समुद्र उस भगवान ने बनाया ॥ १३ ॥

उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥
मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥
महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥
तेषान्त्ववयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ॥
संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्म्ममे ॥ १६ ॥

उस ब्रह्म से ही सदसद्रूप मन, (अहङ्कार तत्त्व) उत्पन्न हुआ । उससे अभिमान करने वाला समर्थ अहङ्कार बुद्धि और चित्त, सब त्रिगुणात्मक अर्थात् मन से (अहङ्कार तत्त्व से) तमःप्रधान अहङ्कार, सत्त्वप्रधान बुद्धि, रजःप्रधान चित्त, विषयों के प्रत्यक्ष जनक महाभूतों के पांच सत्त्वप्रधान अंशों का और

परमाणु से लेकर महाभूत तक ।उत्पन्न करने का अपरिमित सामर्थ्यशाली उन पञ्चतत्त्व व अहङ्कारतत्त्व ऐसे छः के सूक्ष्म अंशों को अपने अर्थात् महत्तत्त्व के अंश में मिला कर सब वस्तुओं का निर्माण किया ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ॥
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥

जिस कारण स्थूल वस्तुओं के उत्पादक परमाण्वादि उस ब्रह्मा के सूक्ष्म अवयव इन अहङ्कार व पञ्चतत्त्वों को आश्रय देते हैं अतः विद्वान् लोक ब्रह्म के मूर्त्ति को शरीर कहते हैं ॥ १७ ॥

तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्म्मभिः ॥
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥

रजःप्रधान अपने कर्मांशि व तमःप्रधान अपने सूक्ष्म अवयवों के सहित आकाश वायु तेज जल और पृथिवी ये पञ्चमहाभूत अर्थात् सात्त्विक राजसिक तामसिक अंशों से मिश्रित पञ्चतन्मात्रा समस्त वस्तुओं के कारण भूत अविनाशि मन से उत्पन्न हुईं ॥ १८ ॥

तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥ १९ ॥

उन अति सामर्थ्यशालि सात पुरुष महत्तत्त्व अहङ्कार पञ्चतन्मात्रा इनके सूक्ष्म अंश परमाणुओं के द्वारा अविनाशि सूक्ष्मरूप से विनाशि स्थूल महाभूतादि जगत् परिणत होता है ॥ १९ ॥

आद्याद्यस्य गुणांस्त्वेषामवाप्नोति परः परः ॥
योयो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥

आकाश वायु तेज जल पृथिवी इन में आगे आगे का पहिले पहिलों के और अपने २ गुणों को प्राप्त करता है जैसे वायु आकाश का गुण शब्द और अपने स्पर्श को पाता है एवं तेज शब्द स्पर्श और रूप, जल शब्द स्पर्श रूप और रस, तथा पृथिवी शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध प्राप्त करती है। अत एव इनमें का प्रथम एक गुण का दूसरा दो तीसरा तीन चौथा चार और पांचवा पांच गुण का कहाता है ॥ २० ॥

सर्वेषां तु स नामानि कर्म्माणि च पृथक् पृथक् ॥
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्म्ममे ॥ २१ ॥

परमात्मा ने उन महाभूतों के नाम कर्म और आकार भिन्न भिन्न पहिले वेद ही से निर्माण किया ॥ २१ ॥

कर्मात्मनाञ्च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनाम्प्रभुः ॥
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञञ्चैव सनातनम् ॥ २२ ॥

उस भगवान ने क्रिया करनेवाले देव मर्त्य और साध्यगण अर्थात् अन्तरिक्षचारी तथा सूक्ष्म सनातन यज्ञ अर्थात् क्रिया को उत्पन्न किया ॥ २२ ॥

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयम्ब्रह्म सनातनम् ॥
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥

उन यज्ञों की सिद्धि करने को सनातन ब्रह्मरूप ऋग्यजुःसाम नामक वेदों का अग्नि वायु और सूर्य से क्रमेण दोहन अर्थात् प्रकाश किया ॥ २३ ॥

कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥
सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणि च ॥२४॥
तपो वाचं रतिञ्चैव कामञ्च क्रोधमेव च ॥
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥

इस प्रजा के सृष्टि की इच्छा से परमात्मा ने समय, उसके वर्ष मास आदि विभाग, तारागण, नवग्रह, नदियां, समुद्र, पर्वत, सम और विषम भूमि, इच्छादिव्रत, वाणी, सन्तोष, इच्छा और क्रोध को उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ २५ ॥

कर्म्मणाञ्च विवेकार्थं धर्म्माधर्म्मौ व्यवेचयत् ॥
द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥

किसने क्या करना, क्या न करना इस विवेक के लिये धर्म और अधर्म का विचार किया और इन प्रजाओं को अर्थात् कर्म करने वालों को धर्म से सुख अधर्म करने से दुःख इत्यादि जोड़ी लगा दी ॥ २६ ॥

अणव्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्द्धानां तु याः स्मृताः॥
ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः॥ २७ ॥

पञ्चतन्मात्राओं की जो विनाशी तथा अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा अर्थात् महाभूतों के परमाणु बने हैं, उनसे लेकर घटादि स्थूल पर्यन्त यह संपूर्ण जगत् 'सूक्ष्म से स्थूल, स्थूल से स्थूलतर उससे घटादि' इस क्रम से उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥

यन्तु कर्म्मणि यस्मिन्स न्ययुङ्क्त प्रथमम्प्रभुः ॥
स तदेव स्वयम्भेजे सृज्यमानः पुनःपुनः ॥ २८ ॥

उस प्रभु ने जिसको जिस धर्म अथवा अधर्म कार्य में सृष्टि के आरम्भ में लगाया फिर फिर उत्पन्न होनेवाला वह अर्थात् तज्जातीय दूसरा वही काम स्वयं करने लगा ॥ २८ ॥

हिंसाहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मावृतानृते ॥
यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥ २९ ॥

उसने हिंसा, दया, शमदमादि मृदु, युद्धादि क्रूर, यज्ञयागादि धर्म, अधर्म सत्य और असत्य इनमें का जो कर्म सृष्टि के समय जिसका निश्चित किया वह काम उसको स्वयं आजाता है ॥ २९ ॥

यथर्त्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्त्तुपर्य्यये ॥
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः ॥ ३० ॥

जिस प्रकार वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद् हेमन्त शिशिर पहिला ऋतु जाने बाद दूसरा ऋतु प्राप्त होते ही अपने अपने आम्र वृक्षको मोहर इत्यादि लक्षण को अपने आप पाते हैं उसी प्रकार जीव भी अपने अपने कर्मको पाते हैं॥ ३० ॥

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्त्तयत् ॥ ३१ ॥

उस भगवान् ने लोकों की विशेष वृद्धि होने के लिए मुखसे ब्राह्मण बाहुसे क्षत्रिय जङ्घासे वैश्य और पैर से शूद्रका निर्माण किया ॥ ३१ ॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥

अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥

वह ब्रह्म हैम अण्डा में स्थित अपने शरीर का दो भागकर आधे से पुरुष व आधे से स्त्री हुआ। और उस स्त्री में विराड्रूप हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया ॥३२॥

तपस्तप्त्वाऽसृजद्यन्तु स स्वयं पुरुषो विराट् ॥
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ! ॥ ३३ ॥

हे ब्राह्मणवर ! उस विराट् पुरुष ने स्वयं तपस्या कर जिसको उत्पन्न किया वही इस सब जगत् का स्रष्टा मैं हूं सो जानियेगा ॥ ३३ ॥

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यम्पुलहं क्रतुम् ॥
प्राचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेव च ॥ ३५ ॥

प्रजाकी सृष्टि करने की इच्छा से मैंने अत्यन्त कठिन तपस्या कर पहिले महाऋषि दस प्रजापति मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वाल्मीकि, वसिष्ठ, भृगु और नारद को उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन् भूरितेजसः ॥
देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥
यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ॥
नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणाञ्च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥
किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहङ्गमान् ॥
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ ३९ ॥
कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥
सर्व्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥

इन मरीच्यादि दस प्रजापतियों ने अत्यन्त समर्थ और सात स्वारोचिषादि

मनु, देवता, उनके स्वर्गादि स्थान, बड़े बड़े ऋषि महात्मा, कुबेर आदि यक्ष, रावण आदि राक्षस, पिशाच, चित्ररथादि गन्धर्व, उर्वशीआदि अप्सराएं, विरोचनादि असुर, नाग, सर्प, उनके भक्षक गरुड़ादि पक्षी, अग्निष्वात्तादि तथा पित्रादि के भिन्नभिन्न गण, बिजली, वज्र, मेघ, सीधे व टेढे इन्द्रधनुष, उल्का, निर्घात, केतु, छोटी बड़ी ताराएं, किन्नर, बन्दर, मत्स्य, अनेक तरह के पक्षि, पशु, मृग, मनुष्य, सिंहादि क्रूर जानवर, दोनों दन्तवाले अश्वादि, कीड़े मकोड़े, पतङ्ग, जलौका, मक्खियां, खटमल, डांस, मच्छर और भिन्न भिन्न सब स्थावर वृक्ष पर्वत घर आदि बनाये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ॥
यथाकर्म्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४१ ॥

इस प्रकार उन महात्मा दस प्रजापतियोंने मेरी आज्ञासे यह सब स्थावर जंगमात्मक जगत् उस उसके कर्मके अनुसार अपनी तपस्या के जोर से निर्माण किया ॥ ४१ ॥

येषान्तु यादृशङ्कर्म्म भूतानामिह कीर्तितम् ॥
तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगञ्च जन्मनि ॥ ४२ ॥

जिन प्राणियों का जो कर्म संसार के आरम्भ के समय कहा है वह और जन्मका क्रम अर्थात् किसकी उत्पत्ति कैसे होती है वह आप से कहता हूं ॥ ४२ ॥

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ ४३ ॥

गवादि पशु, हरिणादि, मृग सिंहादि जानवर, दोनों दांतवाले अश्वादि, राक्षस, पिशाच और मनुष्य चामकी गर्भकी थैली अर्थात् भिल्ली में उत्पन्न होते हैं॥४३॥

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ॥
यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ ४४ ॥

कबूतर वगैरह पक्षी, सांप, मकर, मछलियां, कछुए, और जो इसी तरह के स्थल में उत्पन्न होनेवाले विस्तुय्या आदि और जलमें उत्पन्न होनेवाले शंख आदि हैं वे सब अण्डा में पैदा होते हैं ॥ ४४ ॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥

ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥ ४५ ॥

डांस, मच्छर, जलौक, मक्खो और खटमल पसीने से पैदा होते हैं और जो इसी तरह के अन्य हैं भुनगे चूंटिया आदि ये सब गरमी से पैदा होते हैं ॥ ४५ ॥

उद्भिज्जास्स्थावरास्सर्व्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ॥
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥

बीज और डालियों के लगाने से उगने वाले वृक्षौषधितृणादि सब स्थावर भूमिको फोड़कर उगते हैं। उनमें जो फल पकते ही नष्ट होते हैं व बहुत फूल अथवा फल देते हैं उनको ओषधि कहते हैं ॥ ४६ ॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ॥
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतस्स्मृताः ॥ ४७ ॥

जिनको फूल नहीं व फल होते हैं उनको वनस्पति कहते हैं और जिनके फूल व फल दोनों होते हैं उनको वृक्ष कहते हैं ॥ ४७ ॥

गुच्छगुल्मन्तु विविधन्तथैव तृणजातयः ॥
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥ ४८ ॥

गुच्छ चमेली बेला आदि जिनके जड़ से लताओं का विस्तार होता है, गुल्म एक जड़ से अनेक उत्पन्न होते हैं ऊख आदि बहुत प्रकार के हैं, वैसे ही तृण घास दूब आदि प्रतान कोंहड़े का बेल आदि और वल्ली पेड़ या ऊँचे पर चढ़ने वाले बेल बहुत प्रकार के हैं ये सब बीज और डालियों के लगाने से होते हैं ॥ ४८ ॥

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥
अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ ४९ ॥

इनको अधर्म कार्य करने के कारण बहुत तमोगुण से वेष्टित होने से सुख दुःख का भीतर ज्ञान होता है ॥ ४९ ॥

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः ॥
घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥ ५० ॥

भयङ्कर और विनश्वर इस जगत् में ब्रह्मा से स्थावरों तक की उत्पत्ति कही ॥ ५० ॥

एवं सर्व्वं स सृष्ट्वेदं माञ्चाचिन्त्यपराक्रमः ॥
आत्मन्यन्तर्दधे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥ ५१ ॥

अचिन्त्य सामर्थ्यशाली उस भगवान ने इस प्रकार मुझे तथा इस संसार को सृष्ट करके फिर प्रलय में काल को लीन करता हुआ वह अपने में लीन हो गया ॥ ५१ ॥

यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ॥
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥५२॥

जब वह भगवान जागता है अर्थात् सृष्टि की इच्छा करता है तब यह सब जगत् उत्पन्न होता है और जब सोता है अर्थात् वह इच्छा त्याग देता है तब इसका लय हो जाता है ॥ ५२ ॥

तस्मिन्स्वपिति तु स्वस्थे कर्म्मात्मानश्शरीरिणः ॥
स्वकर्म्मभ्यो निवर्त्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥ ५३ ॥

वह सृष्टि के इच्छा को त्याग कर सोते ही काम करने वाले देव मनुष्य गन्धर्व आदि सब जीव अपने अपने कामों से निवृत्त होते हैं अर्थात् उनकी क्रियाएँ बन्द पड़ती है और मन का लय हो जाता है ॥ ५३ ॥

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि ॥
तदाऽयं सर्व्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥ ५४ ॥

जिस समय सब वस्तु उस परब्रह्म में एक दम लीन हो जाती हैं उस समय सकलवस्तुस्वरूप परब्रह्म व्यापार रहित होकर सुख से सोता है अर्थात् स्वस्वरूप में रहता है ॥ ५४ ॥

तमोऽयन्तु समाश्रित्य चिरन्तिष्ठति सेन्द्रियः ॥
न च स्वं कुरुते कर्म्म तदोत्क्रामति मूर्त्तितः ॥ ५५ ॥

और जिस समय इन्द्रिय सहित हिरण्यगर्भ तमोरूप धारण करता है व अपना सृष्टिकर्म नहीं करता उस समय वह शरीर रहित होता है ॥ ५५ ॥

यदाऽणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च ॥
समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥ ५६ ॥

जब पञ्चतन्मात्रा स्वरूप होकर स्थावर और जङ्गम का कारण रूप होता है उस समय महाभूतादि रूप से प्रकट हो विराट्रूप को धारण करता है ॥५६॥

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वञ्चराचरम् ॥
संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥ ५७ ॥

अविनाशी वह परमात्मा इस प्रकार जागने सोने से सदा इस सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम जगत् की सृष्टि व संहार करता है ॥ ५७ ॥

इदं शास्त्रन्तु कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः ॥
विधिवद् ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥ ५८ ॥

उस परमात्मा ने इस शास्त्र को कर पहिले पहिल स्वयं मुझ को ही विधिवत् सिखलाया और मैंने मरीचि आदि ऋषियों को सिखाया ॥ ५८ ॥

एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ॥
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्व्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ ५९ ॥

भृगु ऋषि यह सब धर्मशास्त्र आपको सुनावेंगे क्योंकि यह भृगु जी सम्पूर्ण धर्मशास्त्र मुझ से पढ़े हैं ॥ ५९ ॥

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्म्मनुना भृगुः ॥
तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ६० ॥

मनुजी ने ऐसा कहने पर वह भृगु महर्षि ने सन्तुष्ट होकर उन ऋषियों को कहा कि सुनिये ! ॥ ६० ॥

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड् वंश्या मनवोऽपरे ॥
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाःस्वा महात्मानो महौजसः ॥ ६१ ॥

स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ॥
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥ ६२ ॥

इस स्वायंभुव मनुजी के वंश के उदार और बड़े समर्थ स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत, चाक्षुष, और महातेजस्वी वैवस्वत नामक और छः मनुओं ने अपनी अपनी प्रजा उत्पन्न की ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

स्वायम्भुवाद्यास्सप्तैते मनवो भूरितेजसः ॥
स्वे स्वेऽन्तरे सर्व्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥ ६३ ॥

बड़े तेजस्वी स्वायम्भुव आदि पूर्वोक्त सात मनुओं ने अपने अपने मन्वन्तर में सम्पूर्ण स्थावर और जंगम इस जगत् को उत्पन्न कर पालन किया ॥ ६३ ॥

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ॥
त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रन्तु तावतः ॥ ६४ ॥

दस और आठ अर्थात् अठारह पलकों (आंख का स्वाभाविक खुलना व बन्द होने) से १ काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओं की १ कला, तीस कलाओं का १ मुहूर्त और ३० मुहूर्तों का १ अहोरात्र याने दिन होता है ॥ ६४ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्य्यो मानुषदैविके ॥
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ ६५ ॥

मनुष्य और देवताओं के दिन और रात्रिका विभाग सूर्य भगवान् करते हैं। अर्थात् सूर्य के उदय से अस्त पर्यन्त दिन व अस्त से उदय तक रात होती है। रात प्राणियों को सोने के लिये व दिन काम करने को है ॥६५॥

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥
कर्म्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ६६ ॥

तीस अहोरात्र का १ मास होता है वह पितरों का १ अहोरात्र है। पितरों का अहोरात्र दो पक्षों में विभक्त है। जैसे कृष्ण पक्ष दिन पितरों को कार्य करने को व शुक्ल पक्ष रात्रि सोने को है ॥ ६६ ॥

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥

१२ मास का एक वर्ष होता है वह देवताओं का एक अहोरात्र है। उसका विभाग तो दक्षिणायन रात है और उत्तरायण दिन ॥ ६७ ॥

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ॥
एकैकशो युगानान्तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ६८ ॥

ब्रह्माजी के अहोरात्र का जो प्रमाण है सो युगों में एकएक के प्रमाण के द्वारा क्रमेण संक्षेप से जानियेगा ॥ ६८ ॥

चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥६९॥

चार हजार वर्षों का कृतयुग कहते हैं कृतयुग का सन्ध्याकाल अर्थात् प्रारम्भ उतने ही सौ अर्थात् ४ चार सौ वर्षों का और सन्ध्यांश समाप्तिकाल भी उतना अर्थात् ४ चार सौ वर्षों का होता है ॥ ६९ ॥

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ॥
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥

सन्ध्या और सन्ध्यांश के सहित अन्य तीन युग त्रेता, द्वापर और कलियुगों में हजार व सौ की संख्या क्रमेण एक एक कम होती है अर्थात् ३००० तीन हजार वर्षों का त्रेता युग ३०० तीन २ सौ के उसके सन्ध्या व सन्ध्यांश, २००० दो हजार वर्षों का द्वापर युग व २०० दो २ सौ के उसके सन्ध्या व सन्ध्यांश और १००० एक हजार वर्षों का कलियुग व एक २ सौ के उसके सन्ध्या व सन्ध्यांश है ॥ ७० ॥

यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ॥
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥

जो यह पहिले ही चारो मानवयुगों का प्रमाण कहा उसका बारह गुना देवताओं का युग होता है ॥ ७१ ॥

दैविकानां युगानान्तु सहस्रपरिसंख्यया ॥
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥

और १ एक हजार दैवयुगों का एक ब्राह्म अर्थात् ब्रह्मा का दिन व उतनेही युगों की एक ब्रह्मा की रात होती है ॥ ७२ ॥

तद्वै युगसहस्रान्तम्ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ।
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ७३ ॥

अहोरात्र को जानने वाले लोग १ हजार युग से होने वाले १ दिन को ब्रह्मा का पवित्र दिन व उतनी ही रात कहते हैं ॥ ७३ ॥

तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुद्ध्यते ॥
प्रतिबुद्धश्च सृजति मनस्सदसदात्मकम् ॥ ७४ ॥

उस दिन के समाप्त होने पर परमात्मा सोते हैं और रात के अन्त में जागते हैं और जाग कर सदसद्रूप पूर्वोक्त मन अहङ्कार तत्त्व को उत्पन्न करते हैं ॥७४॥

मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ॥
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः॥७५॥
आकाशात्तु विकुर्व्वाणात्सर्व्वगन्धवहः शुचिः ॥
बलवान् जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः ॥७६॥
वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ॥
ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥
ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः ॥
अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥७८॥

फिर सृष्टि करने की इच्छा होने पर उसी अहङ्कारतत्त्व से सब सृष्टि होती है पहिले अहङ्कारतत्त्व से आकाश उत्पन्न होता है उसका गुण शब्द कहते हैं। आकाश को विकार होने से उससे सब तरह गन्ध, सुगन्ध व दुर्गन्ध को धारण करने वाला पवित्र और बलवान् वायु उत्पन्न होता है उसका गुण स्पर्श कहा है । वायु को विकार होने से उस विकृतवायु से दूसरों का प्रकाशक अन्धकार का नाशक और स्वयं प्रकाशमान ऐसा तेज उत्पन्न होता है उसका गुण रूप होता है। तेज को विकार होने से उस विकृत तेज से जल उत्पन्न होता है उसका रस गुण है और उसी प्रकार विकृत जल से पृथिवी उत्पन्न होती है उसका गुण गन्ध होता है। इस प्रकार सब से पहिले इस पञ्चमहाभूतों की सृष्टि होती है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ॥
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ७६ ॥

जो पहिले बारह हजार चौकड़ियों का दैवयुग कहा है उसके ७१ एकहत्तर युगों का १ मन्वन्तर होता है ॥ ७६ ॥

मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च ॥
क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनःपुनः ॥ ८० ॥

सृष्टि असंख्य मन्वन्तर रहती है और संहार अर्थात् प्रलय भी असंख्य मन्वन्तर काल तक रहता है । इस सृष्टि और संहार को परमात्मा पुनः पुनः खेलते खेलते करते हैं ॥ ८० ॥

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ॥
नाधर्म्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान्प्रति वर्त्तते ॥ ८१ ॥
इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ॥
चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥ ८२ ॥

कृतयुग में धर्म चारो भाग से पूर्ण रहता है और सत्य ही रहता है, मनुष्यों को किसी (धन विद्या) की भी प्राप्ति अधर्म से अर्थात् शास्त्र के उल्लङ्घन से नहीं होती है। अन्य तीन युगों में धन विद्या आदि के प्राप्ति से धर्म का एक एक भाग कम होता है और वह क्रमेण चौर्य, असत्य और कपट से। जैसे त्रेतायुग में चौर्यकर्मरूप अधर्म होने से धर्म का एक भाग कम होता है अर्थात् तीन ३ भाग धर्म रहता है। एवं द्वापर में चौर्य और असत्य होने से दो भाग और कलि में चौर्य, असत्य और कपट (जाल) होने से तीन भाग अर्थात् द्वापर में आधा (दो भाग) और कलि में पाव (१ भाग) धर्म रहता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ॥
कृतत्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥८३॥
वेदोक्तमायुर्म्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्म्मणाम् ॥

फलं त्वनुयुगं लोके प्रभावश्च शरीरिणाम् ॥ ८४ ॥

निरोग व सफल कामना वाले (जिनकी कामना कभी व्यर्थ न हुई हो) प्राणियों की आयु ४०० चार सौ वर्ष है किन्तु यह इनकी आयु कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन युगों में क्रम से १ एक १ एक भाग घटती है। प्राणियों की वेद में कही आयु, आशीर्वाद, कर्मों का फल और जीवों का सामर्थ्य जगत् में युग के अनुसार होता है अर्थात् ये भी क्रमेण एक एक भाग कम होते हैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ॥
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ ८५ ॥

युग के ह्रास (घटने) के अनुसार मनुष्यों के धर्म कृतयुग में अन्य, त्रेता में अन्य, द्वापर में अन्य और कलि में अन्य होते हैं ॥ ८५ ॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ८६ ॥

कृतयुग में तपस्या को सब से श्रेष्ठ धर्म कहा है, त्रेतायुग में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलि में केवल दान को श्रेष्ठधर्म कहते हैं ॥ ८६ ॥

सर्व्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ॥
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्म्माण्यकल्पयत् ॥ ८७ ॥

उस बड़े तेजस्वी ब्रह्मा ने इस सब सृष्टि की रक्षा के लिये मुख, बाहु, जङ्घा और पैर से उत्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को भिन्न भिन्न काम लगाया ॥ ८७ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ८८ ॥

पढ़ाना, पढना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना व दान लेना ये छः काम ब्राह्मण को लगाये ॥ ८८ ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥
विषयेष्वप्रसक्तिं च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ८९ ॥

प्रजाओं की रक्षा करना, दान देना, याग करना, वेद पढ़ना, और विषयों से सबको शासन से दूर करना ये काम क्षत्रिय को नियत किये ॥ ८९ ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ ९० ॥

पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, देश देशान्तर में व्यापार करना, ब्याज बट्टा करना और खेती करना ये काम वैश्य को नियत किये ॥ ९० ॥

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ॥
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ ९१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों ही की इनके दोष न देखते हुए सेवा करना यही एक मुख्य काम शूद्र का उस समर्थ ब्रह्मा ने कहा ॥ ९१ ॥

ऊर्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्त्तितः ॥
तस्मान्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा ॥ ९२ ॥

ब्रह्मा ने पुरुष का आधा, नाभि से ऊपर का भाग अत्यन्त पवित्र कहा है और उससे भी अधिक पवित्र पुरुष का मुख कहा है ॥ ९२ ॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैव धारणात् ॥
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥

उस सर्वोत्तम मुख से उत्पन्न होने, क्षत्रिय आदि से बड़े होने और पठन आदि उपायों के द्वारा वेद की रक्षा करने के कारण ब्राह्मण इस सम्पूर्ण जगत् में स्वाभाविक श्रेष्ठ (पूज्य) है ॥ ९३ ॥

तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत् ॥
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥ ९४ ॥

क्योंकि उसको ब्रह्मदेव ने देवता तथा पितरों के हविर्भाग उनको प्राप्त करने और इस सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने के लिये तपस्या कर अपने मुख से सब के पहिले उत्पन्न किया है ॥ ९४ ॥

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥ ६५ ॥

[और] सदा जिसके मुख से देवता और पितर अपने भक्ष्य को खाते हैं उस ब्राह्मण से कौन वस्तु अधिक श्रेष्ठ हो सकती है? ॥ ६५ ॥

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ॥
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ६६ ॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ ६७ ॥

सब स्थावर वृक्ष आदि और जंगम कीड़े मकोड़े आदि वस्तुओं में कीड़े मकोड़े आदि जीव श्रेष्ठ हैं, जीवों में अपने हित व अहित को समझने की बुद्धिवाले कुत्ते आदि, बुद्धिमानों में धर्माधर्म विचार करनेवाले मनुष्य, मनुष्यों में पूर्वोक्त कारणों से ब्राह्मण, ब्राह्मणों में वेद शास्त्र जानने वाले विद्वान्, विद्वानों में वेद-शास्त्र को जानकर तदनुसार कार्य करने का निश्चय करनेवाले, उनमें निश्चय कर वेद-शास्त्र में कहे अनुसार चलने वाले और उनमें भी ब्रह्म के 'सोऽहम्' इस स्वरूप को जाननेवाले तत्त्वज्ञानी श्रेष्ठ हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्य शाश्वती ॥
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ६८ ॥

धर्म की चिरकाल रहने वाली अर्थात् अविनाशी मूर्त्ति ब्राह्मण देह का जन्म ही है। क्योंकि वह धर्म के प्रसार ही के लिये उत्पन्न और मोक्ष के लिये समर्थ है ॥ ६८ ॥

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ॥
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ ६९ ॥

ब्राह्मण जन्मते ही पृथिवी पर सब से श्रेष्ठ और सब जीवों के धर्म भण्डार की रक्षा करने को समर्थ होता है ॥ ६९ ॥

सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम् ॥

श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥ १०० ॥

जो कुछ जगत् में है यह सब ब्राह्मण का है क्योंकि ब्रह्मा के सर्वश्रेष्ठ मुख से उत्पन्न होने के कारण इस सब का ब्राह्मण मालिक हो सकता है ॥ १०० ॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥
आनृशंस्याद् ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥ १०१ ॥

ब्राह्मण अपना ही, आतिथ्यादि से मिला हुआ-अन्न आदि खाता है, वस्त्र आदि पहिनता है और द्रव्य आदि दान देता है। क्षत्रिय आदि ब्राह्मण की कृपा से अन्न आदि का भक्षण, दान आदि करते हैं ॥ १०१ ॥

तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः ॥
स्वायंभुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

उस ब्राह्मण और अन्य क्षत्रिय आदिकों को क्या करना चाहिये यह समझने के लिये ब्रह्मा के पुत्र सर्वज्ञ स्वायम्भुव मनुजी ने इस धर्मशास्त्र को बनाया ॥ १०२ ॥

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित् ॥१०३॥

विद्वान् ब्राह्मण इस शास्त्र को प्रयत्न से पढ़े और शिष्यों को यथा विधि पढ़ावे, दूसरा कोई मूर्ख ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि न पढ़ावे किन्तु केवल पढ़े ॥१०३॥

इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः ॥
मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥ १०४ ॥

इस मनुजी के बनाये हुए धर्मशास्त्र को पढ़ने व जानने वाले ब्राह्मण को तदनुसार ब्रह्मचर्यादि व्रत करने से मानसिक, वाचिक तथा कायिक दुष्ट कर्मों से होनेवाले दोष नहीं लगते हैं ॥ १०४ ॥

पुनाति पङ्क्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् ॥
पृथिवीमपि चैवेमां कृत्स्नामेकोऽपि सोऽर्हति ॥ १०५ ॥

धर्मशास्त्र को जानने वाला ब्राह्मण अपनी पंक्ति, तथा ७ सात ७ सात पूर्वा-

तर पुरुष और इस समस्त पृथिवी का एक भी उद्धार कर सकता है ॥ १०५ ॥

इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्द्धनम् ॥
इदं यशस्यमायुष्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥ १०६ ॥

यह धर्मशास्त्र कल्याण का स्थान अर्थात् मनोरथों को सिद्ध करनेवाला, सर्वोत्तम सद्बुद्धिवर्धक, लोक में प्रसिद्धिकारक, आयुर्वर्धक और सर्वोत्कृष्ट मोक्ष का साधन है ॥ १०६ ॥

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ॥
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥ १०७ ॥

इस धर्मशास्त्र में धर्म सम्पूर्ण रीति से कहा है, कर्मों के गुण तथा दोष और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारो वर्ण तथा अठारह जातियों का परम्परा प्राप्त आचार कहा है ॥ १०७ ॥

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ॥
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥१०८॥

वेद और स्मृति में कहा हुआ सदाचार ही सब से श्रेष्ठ धर्म है। अतः अपने हित की सदा इच्छा करने वाला द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपना कर्तव्य कर्म करने में लगा रहै ॥ १०८ ॥

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ॥
आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभाग्भवेत् ॥ १०९ ॥

अपने आचार से भ्रष्ट ब्राह्मण वेद में कहे हुए कर्मफल नहीं प्राप्त करता। और आचार में सदा तत्पर रहनेवाले ब्राह्मण को सब फल प्राप्त होते हैं ॥ १०९ ॥

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ॥
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥ ११० ॥

ऋषि लोग इस प्रकार आचार ही से धर्म होता है यह ज्ञात कर सम्पूर्ण तपस्याका मुख्य कारणभूत सदाचार करने लगे ॥ ११० ॥

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च ॥
व्रतचर्योपचारं च स्नानस्य च परं विधिम् ॥ १११ ॥
दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् ॥
महायज्ञविधानं च श्राद्धं कल्पश्च शाश्वतः ॥ ११२ ॥
वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च ॥
भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां सिद्धिमेव च ॥११३॥
स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च ॥
राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥ ११४ ॥
साक्षिप्रश्नविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि ॥
विभागधर्मं द्यूतं च कण्टकानां च शोधनम् ॥११५॥
वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् ॥
आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥ ११६ ॥
संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसंभवम् ॥
निःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् ॥ ११७ ॥
देशधर्माञ्जातिधर्मान्कुलधर्मांश्च शाश्वतान् ॥
पाषण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ॥ ११८ ॥

इस सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति, सब मनुष्यों के जातकर्म आदि संस्कार, ब्रह्मचारी के धर्म, स्नान अर्थात् विद्याध्ययन समाप्त होने पर गुरुकुल से लौटने की उत्तम विधि, विवाह की विधि और लक्षण, पञ्च महायज्ञों की विधि, श्राद्ध की सर्वसाधारण विधि, सब के जीविकार्थ वृत्तियों (व्यवसायों) का लक्षण, गृहस्थ के कर्तव्य, भक्ष्य व अभक्ष्य वस्तुओं का कथन, शौच अर्थात् मरण आदि में ब्राह्मण आदि की शुद्धि, पदार्थों की शुद्धि, स्त्रियां वानप्रस्थ व संन्यासियों के धर्म, मोक्ष, राजा के सम्पूर्ण धर्म, लेन देन बिक्री इत्यादि व्यवहार में

वाद के निर्णय की विधि, साक्षियों (गवाहों) को प्रश्न करने की विधि, पति-पत्नियों के अन्योन्य कर्तव्य, पिता आदि के धन का विभाग, द्यूत, चोर आदि दुष्टों का शासन, वैश्य, शूद्र और सब जाति के कर्तव्य, ब्राह्मण आदि सब के आपत्ति काल में कर्तव्य, कुकर्म होने से पश्चात्ताप होने पर उसका प्रायश्चित्त, अपने २ कर्म के अनुसार उत्तम, मध्यम, अधम योनि में जन्म, आत्मज्ञान, कर्मों के गुण और दोष की परीक्षा; देशाचार, जाति के आचार, कुलाचार, नास्तिक आदि विधर्मियों के धर्म और सभा (कम्पनी) के धर्म मनुजी ने इस धर्मशास्त्र में कहे हैं ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

यथेदमुक्तवाञ्छास्त्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया ॥
तथेदं यूयमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत ॥ ११९ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

मैंने पूछने पर मनुजी ने मुझे जैसे पहिले यह धर्मशास्त्र कहा है वैसे ही अब आप लोग मुझ से यह धर्मशास्त्र जान लीजिये ! ॥ ११९ ॥

इति श्रीदाक्षिणात्यब्राह्मणकुलावतंससिद्धेश्वरतनयनेनेगोपालकृतमनु-स्मृतिभाषाप्रकाशजगत्सृष्टि-ब्राह्मणश्रेष्ठत्व-विषयसूचीनिरूपणात्मकप्रथमाध्यायः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ॥
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥१॥

वेदार्थ जाननेवाले लोगों का राग द्वेष रहित होकर जिसका अनुष्ठान करते समय चित्त प्रसन्न हो वह धर्म है, उसको सावधानता से सुनिये ॥ १ ॥

कामात्मता न प्रशस्ता, न चैवेहास्त्यकामता ॥
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥

फल की इच्छा से कोई काम करना अच्छा नहीं है। लोक में निष्कामता तो नहीं ही है। कारण वेदाध्ययन और वेद आदि में कहे हुए नित्य, नैमित्तिक कर्म का भी अनुष्ठान काम्य है ॥ २ ॥

संकल्पमूलः कामो वै, यज्ञाः संकल्पसंभवाः॥
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ॥ ३ ॥

संकल्प [मानसिक पदार्थज्ञान] से इच्छा होती है, यज्ञ भी संकल्प से ही होते हैं। एकादशी आदि व्रत, अहिंसा आदि नियम और ज्योतिष्टोम आदि धर्म सब संकल्प मूलक ही हैं ॥ ३ ॥

अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित् ॥
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

संसार में प्राणि का कोई भी कर्म निष्काम कभी नहीं दिखाता है, कारण प्राणि जो जो लौकिक अथवा वैदिक काम करता है वह सब इच्छा का व्यापार है ॥ ४ ॥

तेषु सम्यग्वर्त्तमानो गच्छत्यमरलोकताम् ॥
यथा संकल्पितांश्चेह सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ ५ ॥

वेदाध्ययनादि सब कर्मों का उत्तम प्रकार से (नित्य, नैमित्तिक कर्मों को निष्काम, और काम्य कर्मों को फल में विशेष आग्रह न धरते) अनुष्ठान करने वाला देवभाव को प्राप्त होता है और इस लोक में स्वसङ्कल्पानुरूप सम्पूर्ण विषयों का उपभोग करता है ॥ ५ ॥

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ॥
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण वेद धर्म का मूल (प्रमाण) है। जो धर्म वेद में नहीं कहा है उसमें वेद वेदार्थ को जाननेवाले ऋषियों की स्मृति, स्मृति में भी जो नहीं है उसमें उनका सच्चरित्र, वह भी न रहे तो धार्मिक सज्जनों का आचार, और वह भी न रहे तो जिसका आचरण करने से अपने चित्त को सन्तोष प्राप्त हो वह सन्तोष प्रमाण है ॥ ६ ॥

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ॥
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ ७ ॥

मनुजी ने किसी ब्राह्मण आदि वर्ण का जो कोई वर्ण आश्रम धर्म कहा है वह सब वेद में कहा हुआ है। क्योंकि वह मनुजी सम्पूर्ण ज्ञान की मूर्ति हैं ॥ ७ ॥

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ॥
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ८ ॥

विद्वान् गुरूपदेश से इस सम्पूर्ण धर्मशास्त्र को सब समझ कर प्रमाणभूत वेद में कहे अपने २ धर्म में स्थिर हो ॥ ८ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ॥
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ९ ॥

क्योंकि वेद और स्मृतियों में कहे हुए आचार से चलनेवाला मनुष्य इस लोक में यश और परलोक में सर्वोत्तम स्वर्ग सुख प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो, धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ॥
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये, ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥ १० ॥

वेद को श्रुति, और स्मृति को धर्मशास्त्र जानना, ये दोनों सब विषयों में अमीमांस्य अर्थात् 'हिंसा पाप जनक है तो अग्नीषोमीय पशु हिंसा वैदिक भी पाप जनक होगी अथवा वैदिक हिंसा यदि पुण्य जनक है तो सब हिंसा से पुण्य क्यों न हो इत्यादि आक्षेप करने योग्य नहीं है। क्योंकि इनमें धर्म ही कहा है ॥ १० ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ॥
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११ ॥

जो तर्क कुतर्क से धर्म के मूल इन वेद और स्मृति को नहीं मानता है उस वेद की निन्दा करने वाले नास्तिक को सज्जन लोक अध्ययन आदि अपने कार्य और मंडली से बाहर करै अर्थात् अपने में उसको न मिलने दे ॥ ११ ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ॥
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

एवंच वेद, स्मृति, सदाचार, और मनःसन्तोष ये चार धर्म के लक्षण है ॥ १२ ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ॥
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १३ ॥

अर्थ और काम में जो मनुष्य नहीं फसे हैं उनके लिये यह धर्म का उपदेश है। धर्म जानने की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को मुख्य प्रमाण श्रुति है ॥ १३ ॥

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ॥
उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः ॥ १४ ॥

जिस विषय में श्रुति ने दो प्रकार कहे हैं वह दोनों वहां धर्म है कारण दोनों को ऋषियों ने धर्म ही माना है ॥ १४ ॥

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ॥
सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ १५ ॥

सूर्य भगवान का उदय होने पर, उदय होने के पहिले जिस समय आकाश में ताराएं दीखतीं हो अर्थात् प्रभात में, और अरुणोदय काल में इन सब काल में यज्ञ करै ऐसी वैदिक श्रुति है ॥ १५ ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो, नान्यस्य कस्यचित्॥१६॥

जिस के गर्भाधान से दाह क्रियान्त संस्कार वैदिक मन्त्र से करने को कहा है

उस ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को यह धर्मशास्त्र पढ़ने का अधिकार है इससे अन्य किसी स्त्री, शूद्र, संकरजाति अथवा पतित को नहीं ॥१६॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ॥
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ १७ ॥

सरस्वती और घाघरा, तथा गङ्गा और यमुना इन के मध्य के देश को 'ब्रह्मावर्त' कहते हैं ॥१७॥

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ॥
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ १८ ॥

उस 'ब्रह्मावर्त' देश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य सब जातियों का जो परम्परा से चलते आया हुआ आचार है वह सदाचार कहा जाता है ॥ १८ ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ॥
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः ॥ १९ ॥

कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, कान्यकुब्जदेश, और शूरसेन का देश मथुरा आदि, ये 'ब्रह्मर्षि' देश हैं और ब्रह्मावर्त्त के समीप और समान है ॥ १९ ॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ॥
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ २० ॥

इस दुनियां के सब जन ब्रह्मावर्त और उसके समान कुरुक्षेत्र, मत्स्य, कान्यकुब्ज और मथुरा देश में उत्पन्न ब्राह्मणसे अपने अपने आचार की शिक्षा ग्राप्त करें ॥ २० ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ॥
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्य, पूर्व में प्रयाग और पश्चिम में कुरुक्षेत्र इनके मध्य,का देश मध्यदेश कहा जाता है ॥ २१ ॥

आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात् ॥
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ २२ ॥

विद्वान् पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र पर्यन्त और हिमालय से विन्ध्य पर्यन्त के मध्य भाग को आर्यावर्त कहते हैं ॥ २२ ॥

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ॥
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥ २३ ॥

कृष्णसार मृग जहां स्वाभाविक अर्थात् अपने आप रहता व चरता है उस देश को यज्ञ करने योग्य, भारत वर्ष जानना। और इससे अन्य देश म्लेच्छ देश है ॥ २३ ॥

एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः ॥
शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः ॥ २४ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन्हीं ब्रह्मावर्त आदि कहे हुए देशों में रहे और शूद्र जीविका से दुःखी हो तो जहीं कहीं रहै ॥ २४ ॥

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता ॥
संभवश्चास्य सर्वस्य, वर्णधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥

मैंने धर्म का उत्पत्तिस्थान व सृष्टि आपको संक्षेप से कही। अब ब्राह्मण आदि वर्णों के धर्म सुनिये। ॥ २५ ॥

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ॥
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ २६ ॥

पिता आदि द्विजों का वेद में कहे हुए पवित्रता सम्पादक गर्भाधान आदि प्रयोगों से इस लोक में अच्छा फल देने वाले अध्ययन आदि कर्मों में और परलोक में अच्छे फल देने वाले यज्ञों में अधिकार सम्पादक गर्भाधान आदि शरीर संस्कार करै ॥ २६ ॥

गार्भैर्होमैर्जातकर्म-चौल-मौञ्जी-निबन्धनैः ॥
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ २७ ॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, चूड़ाकर्म और यज्ञोपवीत संस्कारों से द्विजों के शुक्र शोणित व गर्भ सम्बन्धि दोष दूर होते हैं ॥ २७ ॥

और शूद्र का दास शब्द से युक्त दीनदास आदि, इस प्रकार ब्राह्मण आदियो का नाम होना चाहिये ॥ ३२ ॥

स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ॥
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ॥ ३३ ॥

कन्याओं का नाम कहने को सुलभ, भयंकर शब्द रहित, स्पष्टार्थक, चित्तको आनन्द दायक, मङ्गलकारक, अन्त में दीर्घ वर्ण युक्त और आशीर्वाद वाचक शब्द से युक्त 'यशोदादेवी' आदि होना चाहिये ॥ ३३ ॥

चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले ॥ ३४ ॥

बालक को प्रसूति (सवरी) के घर से चौथे महीने में सूर्य दर्शन के लिये बाहर निकाले और छठवे महीने में अन्नप्राशन (अन्न खिलाना प्रारम्भ) करै अथवा जिसके कुल में जिस समय मङ्गलकार्य करने से शुभ होता हो वह उस समय करै ॥ ३४ ॥

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ॥
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥ ३५ ॥

सब द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालकों का चौल(मुण्डन) संस्कार अपने कुल की रीति के अनुसार, अथवा प्रथम या तीसरे वर्ष में करै ॥ ३५ ॥

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥
गर्भादेकादशे राज्ञो, गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ ३६ ॥

ब्राह्मण बालक का उपनयन (जनेऊ) संस्कार गर्भ अथवा जन्म से अष्टम वर्ष में, क्षत्रिय का एकादश ११ वर्ष में, और वैश्य का बारह १२ वें वर्ष में करना चाहिये ॥ ३६ ॥

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ॥
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ ३७ ॥

ब्रह्म तेज की इच्छा करने वाले ब्राह्मण बालक का उपनयन संस्कार पांच ५ वे वर्ष में, बल की इच्छा करने वाले क्षत्रिय बालक का छठवे वर्ष में और

ऐहलौकिक उन्नति की इच्छा करने वाले वैश्य बालक का आंठवे वर्ष में करना चाहिये ॥ ३७ ॥

आ षोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ॥
आ द्वाविंशात्क्षत्रबन्धोरा चतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ ३९ ॥

ब्राह्मण बालक को गायत्री का उपदेश अर्थात् उपनयन संस्कार सोलह १६, क्षत्रिय को बाईस २२, और वैश्य को चौबीस २४ वर्ष तक हो सकता है। इसके पश्चात् उनके कहे हुए काल में संस्कार न होने से ये तीनों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक शिष्टों के निन्दनीय सावित्रीपतित व्रात्य होते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ॥
ब्राह्मान् यौनांश्च संबन्धान्नाचरेद् ब्राह्मणः सह ॥ ४० ॥

विधि पूर्वक प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्ध भये विना इन व्रात्यों के साथ अध्ययन अध्यापनादि तथा विवाहादि सम्बन्ध आपत्काल में भी ब्राह्मण न करै ॥ ४० ॥

कार्ष्णरौरवबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः ॥
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च ॥ ४१ ॥

ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्राह्मण कृष्ण मृग का, क्षत्रिय रुरुमृग का और वैश्य बकरे का चर्म धारण करै और सन रेशम और ऊन के वस्त्र पहिनै ॥ ४१ ॥

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ॥
क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या, वैश्यस्य शणतान्तवी ॥४२॥

ब्रह्मचर्य आश्रम में मेखला (करधनी) तेहरी (तीन लरों से बनी हुई) बराबर की और चिकनी ब्राह्मण के लिये मूंज की, क्षत्रिय के लिये मूर्वा (मुर्हरी) अथवा धनुष्य के डोरी की, और वैश्य के लिये सन के डोरे की करै ॥ ४२ ॥

मुञ्जालाभे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः ॥
त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ ४३ ॥

मूंज, मूर्वा और सन न मिलै तो ब्राह्मण के लिये कुशा की क्षत्रिय के लिये अश्मन्तक व वैश्य के लिये वल्वज तृण की मेखला करै। उस मेखला को तेहरी कर कुल की रीति के अनुसार एक १ तीन ३ अथवा पांच ५ गांठ बान्धे ॥४३॥

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ॥
शणसूत्रमयं राज्ञो, वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥ ४४ ॥

यज्ञोपवीत ब्राह्मण को रुई के, क्षत्रिय को सन के और वैश्य को ऊन के सूत का ऊपर की पेठन से बटा हुआ और तेहरा होना चाहिये ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ, क्षत्रियो वाटखादिरौ ॥
पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डमर्हन्ति धर्मतः ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण ने बेल अथवा पलास का दण्ड, क्षत्रिय ने वट अथवा खैर का दण्ड और वैश्य ने पैलू अथवा गूलर का दण्ड अपने २ कुल की प्रथा के अनुसार ग्रहण करना उचित है ॥ ४५ ॥

केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः ॥
ललाटसंमितो राज्ञः, स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥४६॥

ब्राह्मण का दण्ड उसको खड़ाकर उसके पैर से शिखा के अग्र तक का लम्बा, क्षत्रिय का कपाल तक और वैश्य का नाक तक का लम्बा होना चाहिये ॥ ४६ ॥

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ॥
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः ॥ ४७ ॥

उन तीनों वर्णों के दण्ड सीधे, छिद्ररहित (न घूने हुए), देखने में सुन्दर, मनुष्यों के चित्त में उद्वेग उत्पन्न न करने वाले, त्वचा (छिलके) से युक्त और न जले हुए होने चाहिये ॥ ४७ ॥

प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ॥
प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद् भैक्ष्यं यथाविधि ॥ ४८ ॥

तीनों वर्णों के ब्रह्मचारी अपना अपना बेल आदि का वाञ्छित दण्ड लेकर

सूर्यभगवान् की प्रार्थना करै और पश्चात् अग्नि की प्रदक्षिणा कर अपनी विधि से भिक्षा मांगे ॥ ४८ ॥

भवत्पूर्वं चरेद् भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥ ४९ ॥

ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा मांगती समय 'भवत्' शब्द को पूर्व में, क्षत्रिय ब्रह्मचारी मध्य में और वैश्य ब्रह्मचारी अन्त में कहे, यथा 'भवान् भिक्षां ददातु, भिक्षां भवान् ददातु, भिक्षां ददातु भवान्'। और स्त्री को भिक्षा माँगती समय 'भवति! भिक्षां देहि, भिक्षां भवति! देहि, भिक्षां देहि भवति!' ऐसा क्रमेण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों के ब्रह्मचारी कहें ॥ ४९ ॥

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ॥
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ॥ ५० ॥

सब के पूर्व में भिक्षा अपनी माता, बहिन अथवा मवसी से माँगनी चाहिये जो कि भिक्षा माँगने पर इस ब्रह्मचारी को भिक्षा न देकर अपमानित न करै ॥ ५० ॥

समाहृत्य तु तद् भैक्ष्यं यावदर्थममायया ॥
निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार अपने को पर्याप्त हो इतनी भिक्षा माँग कर छल रहित गुरु को निवेदन करै, फिर गुरु की अनुमति मिलने पर पूर्वाभिमुख और आचमन करने से शुद्ध होकर उस भिक्षा को भोजन करै ॥ ५१ ॥

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ॥
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः ॥ ५२ ॥

पूर्वाभिमुख होकर किया हुआ भोजन आयुष्य को, दक्षिणाभिमुख होकर किया हुआ यश को, पश्चिमाभिमुख होकर किया हुआ लक्ष्मी को और उत्तराभिमुख होकर किया हुआ सत्य की वृद्धि करता है ॥ ५२ ॥

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ॥
भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ॥ ५३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सदा अर्थात् किसी भी आश्रम में भोजन के समय पहिले आचमन कर स्वस्थचित्त से भोजन करै, और भोजन कर पश्चात् भी आचमन करै और जल से नाक के दो छिद्र, कान के दो छिद्र और मुख को स्पर्श करै ॥ ५३ ॥

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ॥
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥

सदा खाने की चीज को मानसिक पूजा कर उसकी निन्दा न करते भोजन करै, और देखकर हर्ष करै प्रसन्न होय तथा सब प्रकार से सन्तोष करै ॥ ५४ ॥

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति ॥
अपूजितं तु तद् भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥ ५५ ॥

पूजन किया हुआ अन्न सदा बल और वीर्य को देता है और विना पूजन के भक्षित अन्न इन दोनों का नाश करता है ॥ ५५ ॥

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ॥
न चैवाध्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥ ५६ ॥

अपना उच्छिष्ट (जूठा) अन्न किसी को न देना चाहिये। तथा दिन रात की सन्धि (सन्ध्याकाल) में और रात्रि तथा दिन कीसन्धि (प्रातःकाल) में भोजन न करना चाहिये। शय्या (बिछौने) पर भोजन न करना चाहिये और उच्छिष्ट अर्थात् खाते खाते कहीं जाना न चाहिये ॥ ५६ ॥

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ॥
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥

अधिक भोजन से आरोग्य और आयुष्य का नाश होता है, और आलस्यादि के द्वारा यज्ञ, यागादि और नित्यकर्म का अनुष्ठान यथा विधि न होने से स्वर्ग और पुण्य का भी नाश होता है तथा लोक में निन्दा होती है, अतः अधिक भोजन न करना चाहिये ॥ ५७ ॥

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ॥

कायत्रैदशिकाभ्यां वा, न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥

ब्राह्मण को सदा ब्राह्म काय अथवा देव तीर्थ से आचमन करना चाहिये, पित्र्यतीर्थ से कदापि आचमन नहीं करना चाहिये ॥ ५८ ॥

अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ॥
कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं, पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥

दाहिने हाथ के अंगूठे के मूल का नीचे का भाग ब्राह्मतीर्थ है, अङ्गुलियों के मूल (कनिष्ठिका के नीचे) का भाग कायतीर्थ, अङ्गुलियों का अग्रभाग दैवतीर्थ और अंगूठा तथा अङ्गुलि के मध्य का भाग पित्र्यतीर्थ है ॥ ५९ ॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एव च ॥ ६० ॥

प्रथम तीन समय जल का आचमन कर दो बार मुख को अपने अङ्गुष्ठ से स्पर्श करै और फिर नाक कान आँख सिर और छाती को जल से स्पर्श करै यह स्मार्त आचमन की विधि है ॥ ६० ॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ॥
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥ ६१ ॥

अपनी शुद्धि की इच्छा करने वाले धर्मात्मा पुरुष को एकान्त में पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर गरम न किये हुए फेन (फँस) रहित जल से पूर्वोक्त ब्राह्म, काय, अथवा दैवतीर्थ से सदा आचमन करना चाहिये ॥६१॥

हृद्गाभिः पूयते विप्रः, कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ॥
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु, शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥६२॥

आचमन किया हुआ जल हृदय में जाने से ब्राह्मण की, कण्ठतक से क्षत्रिय की, मुख में जाने से वैश्य की और ओठों के भीतर के भाग को स्पर्श होने से शूद्र की शुद्धि होती है अर्थात् आचमन उतने जल से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को करना चाहिये जितने से हृदय, कण्ठ, मुख और ओष्ठ के भीतर के भाग में जल का स्पर्श हो ॥ ६२ ॥

उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः ॥

सव्ये प्राचीन आवीती, निवीती कण्ठसज्जने ॥ ६३ ॥

यज्ञोपवीत के बाहर दक्षिण हाथ निकालने पर (तथा बाँये कन्धे पर रखने और दक्षिण कुक्षि में लटकने से) द्विज उपवीती, वाम हाथ बाहर निकालने पर (दक्षिणकन्धे पर रखने व वाम कुक्षि में लटकने से) प्राचीन आवीती और कण्ठ में (पुष्प माला के सदृश) पहिनने से निवीती कहाता है अर्थात् दैवकर्म उपवीती होकर करना शास्त्र में रहने से दैवकर्म करती समय द्विजको यज्ञोपवीत अपने वाम कन्धे पर दक्षिण हाथ उसके बाहर निकाल कर रखना चाहिये, पित्र्यकर्म करती समय वाम हाथ बाहर निकाल कर दक्षिण कन्धे पर और मानुषकर्म करती समय दोनों कन्धों पर फूल की माला के सदृश रखना चाहिये ॥ ६३ ॥

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ॥

अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥६४॥

पूर्वोक्त मेखला, चर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु यदि भग्न हो जाँय तो उस भग्न मेखला आदि का जल में त्याग कर अपने २ गृह्यसूत्रों में कहे हुए मन्त्रों से दूसरी मेखला आदि का धारण करना चाहिये ॥ ६४ ॥

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ॥

राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे, वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥ ६५ ॥

ब्रह्मचर्य अवस्था में रक्खे हुए केशों के मुण्डन को केशान्त कहते हैं वह केशान्त संस्कार ब्राह्मण का गर्भ से १६ सोलहें वर्ष में, क्षत्रिय का २२ बाईसवें वर्ष में और वैश्य का २४ चौवीस वें वर्ष में करना चाहिये ॥ ६५ ॥

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ॥

संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥

यह सब कहे हुए जातकर्म आदि संस्कार कन्याओं के भी उसी क्रम से व उसी काल में केवल मन्त्र रहित करै ॥ ६६ ॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥

पतिसेवा गुरौ वासो, गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥

द्विजाति कन्याओं का विवाह संस्कार तो वैदिकमन्त्रों हीसे करै कारण यही संस्कार तो स्त्रियों के लिये उपनयन संस्कार है, तथा अपने पति की सेवा यही

गुरुकुल में वास, और घर का सब कार्य पाक आदि करना यही अग्निपरिक्रिया अर्थात् सायंप्रातर्होम है ॥ ६७ ॥

एष प्रोक्तो द्विजातीनामौपनायनिको विधिः ॥
उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः, कर्मयोगं निबोधत ॥ ६८ ॥

यह कही हुई ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की उपनयन विधि उनकी उत्पत्ति (द्विजातित्व की सूचक और पवित्रताजनक है। अब इनके कर्म कहता हूँ सुनिये।) ॥ ६८ ॥

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ॥ ६९ ॥

गुरु अपने शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार कर पहिले उसको शुद्धि के विधि की शिक्षा दे, तथा स्नान आचमन आदि आचार, प्रातः सायं सन्ध्योपासन, और अग्नि में होम करने की शिक्षा दे ॥ ६९ ॥

अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः ॥
ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः ॥७०॥

वेद के पठन की इच्छा करने वाला शिष्य शास्त्रोक्त विधि से आचमन आदि के द्वारा शुचिर्भूत होकर उत्तराभिमुख, हलके व पवित्र वस्त्रों को धारण कर जितेन्द्रिय अर्थात् एकाग्रचित्त से ब्रह्माञ्जलि युक्त वेद पढ़े ॥ ७० ॥

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ॥
संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥ ७१ ॥

सदा वेद पढने के आरम्भ में गुरु के चरण का स्पर्श कर हाथ जोड़ कर अध्ययन करना और पुनः समाप्ति में गुरु के चरण को स्पर्श करना इसका नाम ब्रह्माञ्जलि है ॥ ७१ ॥

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ॥
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥७२ ॥

गुरु के वाम चरण को अपने वाम हाथ से और दक्षिण चरण को अपने दक्षिण हाथ से इस प्रकार अपने हाथों को बदल कर गुरु के चरणों को दोनों हाथों से स्पर्श करे ॥ ७२ ॥

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः ॥
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ॥७३॥

गुरु अध्यापन की समय सदा आलस्य रहित होकर अध्ययन करने वाले शिष्य को 'अरे पढ़ो' ऐसा कह कर अध्यापन करना प्रारम्भ करै और 'बस करो' ऐसा कह कर वन्द करै ॥ ७३ ॥

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ॥
स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥ ७४ ॥

वेद के अध्ययन की समय प्रारम्भ और समाप्ति में 'ॐ' कहै। कारण पहिले ॐ न कहने से पढ़ा हुआ वेद धीरे २ भूल जाता है और अन्त में ॐ न कहने से आः ही नहीं है ॥ ७४ ॥

प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ॥
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति ॥ ७५ ॥

पूर्वाग्र कुशाओं के आसन पर वैठे हुए, हाथ में कुशाओं की मुष्टि लिये हुए और तीन ३ प्राणायाम कर शुद्ध भये हुए ही द्विज को 'ॐ' कार (प्रणव) का उच्चारण करने का अधिकार है ॥ ७५ ॥

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ॥
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भवःस्वरितीति च ॥ ७६ ॥
त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ॥
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ७७ ॥
एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ॥
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ ७८ ॥

ब्रह्मदेव ने इस प्रणव के तीन ३ अक्षर अकार, उकार और मकार को तथा महाव्याहृति भूः, भुवः, और स्वः, को क्रम से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से निकाला और उसी परम श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने इन्ही तीनों वेदों से इस गायत्री ऋचा का एक १ एक १ पाद उसी प्रकार निकाला है इस हेतु प्रणव

और तीन ३ महाव्याहृति पूर्वक गायत्री का प्रातःकाल और सायंकाल की सन्ध्या समय जप करने से वेदाध्यायी ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य को सम्पूर्ण वेद के अध्ययन का फल प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः ॥
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ ७६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य एक मास रोज १ हजार प्रणव महाव्याहृति पूर्वक इस गायत्री का जप करै तो बड़े भी पाप से छूट जाता है। कांचली से जिस प्रकार सर्प छूटता है अर्थात् पाप दूर करने के लिये १ हजार गायत्री का जप १ मास तक प्रतिदिन द्विज को करना चाहिये ॥ ७६ ॥

एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ॥
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥ ८० ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य प्रातःकाल में स्नान सन्ध्योपासन आदि नित्य-कर्म तथा सायकाल में सन्ध्योपासन होम आदि नित्यकर्म और गायत्री जप न न करने से सज्जनों की सभा में निन्दा को प्राप्त होता है ॥ ८० ॥

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥ ८१ ॥

ॐ कार (प्रणव) पूर्वक अविनाशिनी ३ महाव्याहृति भूः, भुवः और स्वः, तथा तीन पाद की पूर्वोक्त गायत्री यह वेद का मुख है अर्थात् सब शरीर में यथा मुख श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार यह सम्पूर्ण वेद का सारभूत अत एव श्रेष्ठ भाग है ॥ ८१ ॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ॥
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥ ८२ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य आलस्य रहित इस गायत्री का तीन ३ वर्ष नित्य जप करता है वह वायु की समान कामचारी ब्रह्मरूप होकर मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ८२ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म, प्राणायामः परं तपः ॥

सावित्र्यास्तु परं नास्ति,मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥८३॥

एक ॐ यह अक्षर साक्षात् परब्रह्म है अर्थात् मोक्ष देने वाला है, प्राणायाम सबसे उत्तम तपस्या है, सावित्री से उत्तम अन्य कोई मन्त्र नहीं है अर्थात् सर्वोत्तम है और मौन (न बोलना) की अपेक्षा सत्य बोलना अधिक उत्कृष्ट है ॥ ८३ ॥

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजतिक्रियाः ॥
अक्षरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥ ८४ ॥

सब होम, याग आदि वैदिककर्म नश्यमान हैं अर्थात् 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' इस कथनानुसार क्षणिक उत्तम फल देने वाले हैं और प्रणव ॐकार तो अविनाशी सम्पूर्ण जगत् का अधिपति अर्थात् जगत् जिसका विवर्त है ऐसा साक्षाद् ब्रह्म है अर्थात् मोक्ष देनेवाला है ॥ ८४ ॥

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ॥
उपांशु स्याच्छतगुणः,साहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ८५ ॥

वैदिक ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों की अपेक्षा जप दस गुना अधिक है और वह अत्यन्त धीरे उच्चारण कर यदि किया जाय तो सौ १०० गुना अधिक है और वह मन में करने से हजार गुना अधिक है अर्थात् १ जप से १० यज्ञ का, १ उपांशु जप से १०० यज्ञ का और १ मानस जप से हजार यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ॥
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८६ ॥

जो ४ पाक यज्ञ—वैश्यदेव, बलिकर्म, नित्यश्राद्ध और अतिथि सत्कार तथा वेद में कहे हुए दर्श पूर्णमास ज्योतिष्टोम आदि हैं वे सब मिल कर भी जप की १६ सोलहवी कला को नहीं पा सकते हैं ॥ ८६ ॥

जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात्, मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ ८७ ॥

ब्राह्मण केवल गायत्री का जप करने से सिद्धि प्राप्त करता है दूसरा कुछ

वह करै अथवा न करै यह निःसन्देह है कारण ब्राह्मण सूर्य का उपासक है गायत्री सूर्य का ही मन्त्र है ॥ ८७ ॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ॥
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥ ८८ ॥

जैसे सारथि (कोचवान्) घोड़ों को रोकने में तत्पर रहता है तैसे ही विद्वान् चित्त को बहकाने वाले स्त्री आदि विषयों में आसक्त इन्द्रियों को रोकने का उद्योग करता रहै ॥ ८८ ॥

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः ॥
तानि सम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ८९ ॥

पूर्व विद्वान् जिन ग्यारह को इन्द्रिय कहते हैं उनको क्रम से ठीक २ मैं कहता हूं ॥ ८९ ॥

श्रोत्रं, त्वक्, चक्षुषी, जिह्वा, नासिका चैव पञ्चमी ॥
पायूपस्थं, हस्तपादं, वाक्चैव दशमी स्मृता ॥ ९० ॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ॥
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥ ९१ ॥

कान, त्वचा, चक्षु, जिव्हा और पांचवीं नाक, तथा गुदा, लिङ्ग, हात, पैर और दसवी वाणी ये दस इन्द्रिय हैं । इनमें कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नाक ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं अर्थात् विषयों का, इनसे ज्ञान होता है, और गुदा, लिङ्ग, हात, पैर और वाणी ये पॉच कर्मेन्द्रिय है अर्थात् इन से सब कर्म चेष्टाएँ होती हैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ९२ ॥

अपने गुण से दोनों का प्रवर्तक होने से उभय ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय स्वरूप मन ग्यारहवॉ इन्द्रिय है । जिस को जीतने से इन दोनों ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक और कर्मेन्द्रिय पञ्चक गणों का जय होता है ॥ ९२ ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥

संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥६३॥

इन इन्द्रियों की विषयों में अत्यन्त आसक्ति होने से निःसन्देह दृष्ट व अदृष्ट दोष प्राप्त होते हैं और इनको विषयों से रोक कर दूर रखने से सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ९३ ॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ९४ ॥
यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान् यश्चैतान् केवलांस्त्यजेत् ॥
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ ९५ ॥

तृष्णा विषयों का उपभोग करने से कभी शान्त नहीं होती किन्तु घृत मिलने से अग्नि जैसे अधिक प्रदीप्त होता है तैसे अधिक २ बढ़ती है। अतएव जो इन सब विषयों को प्राप्त कर उपभोग करता है और जो इन को त्याग देता है उन में त्यागने वाला श्रेष्ठ है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया ॥
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ ९६ ॥

सांसारिक झञ्झटों में लिपटे हुए इन्द्रियों का निग्रह, केवल विषयों का उपभोग न करने से वैसा नहीं हो सकता, जैसा कि, ज्ञान से सदा के लिये होता है ॥ ९६ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ॥
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥९७॥

जिसका मन, विषय-वासना में अत्यन्त लिप्त रहता है उसको वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, नियम और तपस्या का फल कभी भी नहीं मिलता ॥ ९७ ॥

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ॥
न हृष्यति ग्लायति वा, स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥९८॥

भला या बुरा सुनने से, स्पर्श से, दर्शन से, भोजन से और सूंघने से जिस मनुष्य को हर्ष और विषाद नहीं होता उसको जितेन्द्रिय समझना चाहिये ॥ ९८ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥
तेनाऽस्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥९९॥

जैसे चर्म के पात्र (मसक) को एक भी छिद्र हो तो उससे समूचा जल धीरे २ चू जाता है, वैसे ही मनुष्य का सब इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय विषयासक्त हो तो, उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है ॥ ९९ ॥

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ॥
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥ १०० ॥

अपने शरीर को कष्ट न देकर क्रम से अर्थात् एक २ विषय का त्याग करते हुये चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रिय और वाक् आदि कर्मेन्द्रियों के समुदाय को अपने आधीन तथा मन का निग्रह कर सभी पुरुषार्थों को भलीभांति प्राप्त करना चाहिये ॥ १०० ॥

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥१०१॥

द्विजाति ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रातःकाल आवश्यक स्नानादि विधि से निवृत्त हो कर सूर्योदय पर्यन्त और सायङ्काल में अच्छी तरह से नक्षत्रों के उदय तक एक स्थान पर गायत्री का जप करता रहे ॥ १०१ ॥

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ॥
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥१०२॥

प्रातःकाल सूर्योदय पर्यन्त गायत्री जप करने वाले के रात्रि में जान कर या अनजान से होने वाले पाप नष्ट होते हैं और सायंकाल में नक्षत्र दर्शन पर्यन्त गायत्री जप करने वाले के दिन के पाप नष्ट होते हैं ॥ १०२ ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ॥
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥१०३॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, अथवा वैश्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासन नहीं करता उसको सब द्विजाति के कर्म से अलग करदे। सन्ध्योपासन न करने वाले ब्राह्मण से कोई भी याग न करावे, उससे अध्ययन न करे और न कोई उसे

दान ही दे। ऐसे ही क्षत्रिय और वैश्य का कोई भी कर्म वेदोक्त मन्त्रों से न करै ॥ १०३ ॥

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ॥
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥ १०४ ॥

नदी, तड़ाग आदि तीर्थों पर सन्ध्यावन्दन नित्यकर्म करने वाला एकान्त जा कर एकाग्र चित्त से सम्पूर्ण वेद का न हो सके तो प्रणवव्याहृति युक्त गायत्री का ही पाठ करै। इतने से भी ब्रह्मयज्ञ का फल होता है ॥ १०४ ॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ १०५ ॥

अनध्याय (अष्टमी, पूर्णिमा, सन्क्रान्ति आदि) के दिन भी वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द) ब्रह्मयज्ञ में वेद और हवन के समय मन्त्र पढ़ने से दोष नहीं है ॥ १०५ ॥

नैत्यके नास्त्यनध्यायो, ब्रह्मसत्रं हि तत् स्मृतम् ॥
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥ १०६ ॥

प्रति दिन नियमित (ब्रह्मयज्ञ आदि में) वेदाध्ययन के लिये अनध्याय नहीं है। कारण यह कि ब्रह्मसूत्र नामक यज्ञ; जिस में कि वेदाध्ययन रूप हविं है वह अनध्याय के दिन करने पर भी पुण्यकारक ही होता है ॥ १०६ ॥

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः॥
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु ॥ १०७ ॥

पवित्रता के साथ जो एकाग्र चित्त से १ वर्ष तक प्रति दिन विधि पूर्वक वेदाध्ययन करता है उसके लिये यह वेदाध्ययन प्रति दिन दूध, दही, घृत और सहद बहाता है अर्थात् इन से जैसी देवता और पितरों की तृप्ति होती है वैसी ही इसके देवता और पितरों की तृप्ति केवल वेदाध्ययन से ही होती है ॥१०७॥

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधःशय्यां गुरोर्हितम् ॥
आसमावर्तनात् कुर्यात् कृतोपनयनो द्विजः ॥१०८॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का बालक उपनयन से समावर्तन संस्कार होने

तक सायंप्रातः होम, भिक्षा, जमीन पर शयन और गुरु की सेवा बराबर करे ॥ १०८ ॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ॥
आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः॥१०९॥

अपने आचार्य के पुत्र, सेवा करने वाले, दूसरी विद्या बताने वाले, धर्माचरण करने वाले, सदाचार सम्पन्न, नातेदार, बताया हुआ शीघ्र व ठीक २ समझने के योग्य बुद्धिमान्, धन देने वाले, साधु, और जाति वाले, इन दसों को अवश्य पढ़ाना चाहिये ॥ १०९ ॥

नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेन पृच्छतः ॥
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥ ११० ॥

विद्वान् को जान कर भी विना पूछे, और अन्याय (अर्थात् दुष्टभाव) से पूछने पर उत्तर न देना चाहिये, किन्तु लोक मेंमूर्ख के समान चुप रहे॥११०॥

अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ॥
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाऽधिगच्छति ॥१११॥

जो अध्यापक शिष्य को छल से पढ़ाता है अथवा जो शिष्य अपने गुरू को छल से पूछता है वहां गुरु शिष्य में से एक की मृत्यु होती है अथवा उनकी परस्पर लड़ाई हो जाती है ॥ १११ ॥

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा ॥
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥ ११२ ॥

जिसको पढाने से धर्म न हो, न द्रव्यलाभ हो, या अध्ययन के अनुसार सेवा भी न होती हो ऐसे शिष्य को न पढ़ाना चाहिये । जैसे ऊषर भूमि में अच्छा बीज कोई नहीं बोता ॥ ११२ ॥

विद्ययैव समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना ॥
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् ॥ ११३ ॥

वेदाध्यापक को विद्या के साथ मर जाना अवश्य अच्छा है, लेकिन घोर आपत्ति आने पर भी कुशिष्य को पढ़ाना नहीं अच्छा ॥ ११३ ॥

विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् ॥
असूयकाय मां मा दास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥११४॥

क्योंकि; विद्या ने आकर ब्राह्मण से कहा-कि, मैं तुम्हारा खजाना (निधि) हूं, मेरी रक्षा करो और जो तुम्हारी असूया करै उसे (असच्छिष्य को) मत पढ़ावो, ऐसा होने से मेरा सामर्थ्य और भी अधिक होगा ॥ ११४ ॥

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम् ॥
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥ ११५ ॥

जिसको आप शुद्ध और इन्द्रियनिग्रही ब्रह्मचारी समझें उस रक्षा करने में प्रमाद न करने वाले-ब्राह्मण को मुझे देना अर्थात् पढ़ाना ॥११५॥

ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् ॥
स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥ ११६ ॥

जो अभ्यास के लिये वेद का अध्ययन करता हो, दूसरा कोई वेद पढ़ रहा हो वहां उसको न जनाए बिना उसकी आज्ञा से जो वेद पढ़ लेता है वह वेद के चोरी का अपराधी होने से नरक-भागी होता है ॥ ११६ ॥

लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथाध्यात्मिकमेव च ॥
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ ११७ ॥

जिससे व्यवहार, वेद शास्त्र अथवा मोक्ष का ज्ञान प्राप्त हुआ हो उसे स्वयं ही पहिले नमस्कार करै ॥ ११७ ॥

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ॥
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥११८॥

केवल गायत्री जानने वाला ही क्यों न हो? परन्तु, यदि वह सदाचार संपन्न हो तो, वही श्रेष्ठ है। और तीनों वेद जानने वाला यदि चाहें जो खाय व चाहे जिसका विक्रय करै तो वह अधम ही है ॥ ११८ ॥

शय्याऽऽसनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ॥
शय्याऽऽसनस्थश्चैवेनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ ११९ ॥

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ॥
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥ १२० ॥

बड़े के बिछौने और आसन पर छोटे को न बैठना चाहिये, छोटे के, बिछौने अथवा आसन पर बैठे रहने पर यदि बड़ा आजाय तो उसे उठ कर बड़े को नमस्कार करना चाहिये। क्योंकि, बड़े के आने से छोटे के प्राण ऊपर २ होने लगते हैं और फिर बड़े की अगवानी और नमस्कार करने से वे ठीक होते हैं ॥ ११६ ॥ १२० ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ॥
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥१२१॥

बड़े को सदा उठ कर नमस्कार और सेवा करने वाले के आयुष्य, विद्या, यश और बल ये चारों बढ़ते हैं ॥ १२१ ॥

अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन् ॥
असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् ॥ १२२ ॥

ब्राह्मण, अपने बड़े को नमस्कार करते समय नमस्कार के बाद 'मैं अमुक हूं' इस प्रकार अपने नाम का उच्चारण करे ॥१२२॥

नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते ॥
तान् प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात् स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥१२३॥

जो लोग नमस्कार के समय कहे हुये वाक्य का अर्थ नहीं जान सकते हों उनको नमस्कार करते समय बुद्धिमान 'मै अमुक हूं' यह न कह कर केवल 'मैं हूँ' इतना ही कहे और स्त्रियों को नमस्कार करते समय भी केवल 'मैं हूँ' यही कहे ॥१२३॥

भोःशब्दं कीर्त्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने ॥
नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः॥१२४॥

नमस्कार के समय अपने नाम के अन्त में 'भो' कहना चाहिये, क्योंकि ऋषियों ने भो शब्द में नाम के स्वरूप की सत्ता कही है ॥१२४॥

आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ॥
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥१२५॥

ब्राह्मण को नमस्कार करने पर उसके उत्तर में आशीर्वाद देना चाहिये और वह 'आयुष्मान् भव सौम्य ! (अर्थात् हे सौम्य ! तेरी आयु बढ़े)' ऐसे शब्दों से होना चाहिये । यदि नाम का अन्तिम अक्षर अकार हो तो उसको, और यदि अन्तिम अक्षर व्यञ्जन हो तो, उस के पास के उपान्त्य स्वर को, प्लुत (त्रैमात्रिक) उच्चारण करना चाहिये ॥ १२५ ॥

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ॥
नाभिवाद्यः स विदुषा, यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ १२६॥

जो ब्राह्मण, नमस्कार करने वाले को आशीर्वाद देने की पूर्वोक्त रीति नहीं जानता उसे विद्वान ब्राह्मण को नमस्कार न करना चाहिये । क्योंकि, वह शूद्र के ही समान है ॥ १२६ ॥

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम् ॥
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥ १२७ ॥

ब्राह्मण की भेंट होने पर उसे कुशल, क्षत्रिय को निरोगता, वैश्य को स्वस्ति-क्षेम और शूद्र को आरोग्य पूछना चाहिये ॥ १२७ ॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ॥
भो भवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥ १२८॥

जिसकी यज्ञदीक्षा हुई हो, उसके अवस्था में छोटा होने पर भी उसको आशीर्वाद देते समय धार्मिक ने उसका नाम न लेना चाहिये किन्तु, 'भो भवान्' इस संबोधन से आशीर्वाद देना चाहिये ॥ १२८ ॥

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बन्धा च योनितः ।
तां ब्रूयाद् भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ॥१२९॥

जिस पराई स्त्री से अपना कोई सम्बन्ध न हो उसको 'भवति !' 'सुभगे !' 'भगिनि !' (आप, सौभाग्यवती और बहिन) इस प्रकार के सम्बोधन कह कर आशीर्वाद दे ॥ १२९ ॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ।
असावहमिति ब्रूयात् प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥ १३० ॥

अपने से छोटी उमर वाले मामा, मामी, चाचा, चाची, सास, ससुर, याजक और कुलपुरोहित के आने पर उठ कर, 'मैं अमुक हूं' इस प्रकार केवल अपना नाम प्रकट करै, नमस्कार न करै ॥ १३० ॥

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ॥
संपूज्या गुरुपत्नीवत् समास्ता गुरुभार्यया ॥ १३१ ॥

मौसी, मामी, सास और फुवा इनकी मान मर्यादा अपने गुरु की स्त्री सी करनी चाहिये, क्योंकि, वे सब गुरुभार्या के समान हैं ॥ १३१ ॥

भ्रातर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि ।
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥ १३२ ॥

अपने ज्येष्ठ भाई की सजातीय स्त्री का चरणवन्दन रोज रोज करना चाहिये। और चाची मामी वगैरह स्त्रियों का चरण वन्दन परदेश से आने पर करना चाहिये अर्थात् रोज २ नहीं ॥ १३२ ॥

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ।
मातृवद् वृत्तिमातिष्ठेत् माता ताभ्यो गरीयसी ॥१३३॥

फुवा, मौसी और बड़ी बहिन इनको अपनी माता के समान मानना चाहिये और अपनी माता को इनसे भी अधिक मानना चाहिये ॥ १३३ ॥

दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् ॥
त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥ १३४ ॥

एक शहर अथवा गांव के रहने वालों की दस वर्ष में, गीत आदि कला जानने वालों की पांच साल में, विद्वानों की तीन साल में, और नातेदारो की एक क्षण में मैत्री होती है ॥ १३४ ॥

ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम् ॥
पितापुत्रौ विजानीयाद्, ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥१३५॥

चाहे ब्राह्मण दस वर्ष का और क्षत्रिय सौ वर्ष का हो तो भी वे दोनों परस्पर बाप बेटे के समान हैं और उनमें ब्राह्मण पिता के समान है ॥ १३५ ॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ॥
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ १३६ ॥

धन, बड़ा कुटुम्ब, अधिक अवस्था, सदाचार और विद्या ये पाँचों सन्मान के कारण हैं । परन्तु, इनमें उत्तरोत्तर अर्थात्, धन से बड़ा कुटुम्ब, उससे अधिक अवस्था, उससे सदाचार और उससे विद्या अधिक २ सन्माननीय हैं ॥ १३६ ॥

पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च॥
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः, शूद्रोऽपि दशमीं गतः ॥१३७॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य वर्णों में जिसे धन आदि पूर्वोक्त पाचों में से अधिक और अच्छे हो उसे उनमें से अधिक मानना चाहिये, और ९० वर्ष से अधिक वृद्ध, शूद्र का भी सम्मान करना चाहिये ॥ १३७ ॥

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ॥
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥ १३८ ॥
तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ ॥
राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक् ॥ १३९ ॥

गाड़ी आदि सवारी पर बैठने वाले, ९० वर्ष के वृद्ध, रोगी, बोझा ढोने वाले, स्त्री, स्नातक, राजा और दुलहा ये यदि सामने से आजाँय तो इन्हें हट कर रास्ता दे दे और ये सब अथवा कुछ यदि एकही समय सामने आजाँय तो स्नातक और राजा को पहिले रास्ता दे, स्नातक और राजा में पहिले स्नातक को रास्ता देना चाहिये ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ॥
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥

जो ब्राह्मण, अपने शिष्य का स्वयं उपनयन कर उसे कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और अङ्गों सहित वेद पढ़ाता है उसको उस शिष्य का 'आचार्य' कहते हैं ॥ १४० ॥

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ॥
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ १४१॥

जो ब्राह्मण, शिष्य को वेद का कुछ भाग या केवल शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्यौतिष, निरुक्त और छन्द इन वेदाङ्गों को अपनी जीविका के हेतु पढ़ाता है उसे 'उपाध्याय' कहते हैं ॥ १४१ ॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥
संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ १४२ ॥

और जो ब्राह्मण, गर्भाधान आदि संस्कार विधियुक्त कराकर अन्न वस्त्र से शिष्य का पालन पोषण करता है वह उसका 'गुरु' कहलाता है ॥ १४२ ॥

अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान् मखान् ॥
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥ १४३ ॥

जो ब्राह्मण, वरणी लेनेपर, जिस यजमान के स्मार्त या श्रौत आधान, अष्टका आदि पाकयज्ञ और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों को करता है वह (ब्राह्मण) उसका 'ऋत्विक्' कहा जाता है ॥ १४३ ॥

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ॥
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत् कदाचन ॥ १४४ ॥

जो ब्राह्मण, दोनों कानों में वैदिक मन्त्र का भली भाँति उपदेश करता है उसे अपने माता पिता के समान जानना चाहिये और उसके साथ कभी भी द्रोह न करना चाहिये ॥ १४४ ॥

उपाध्यायान् दशाऽऽचार्य, आचार्याणां शतं पिता ॥
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १४५ ॥

अपने उपाध्याय से दस गुना अधिक आचार्य का, आचार्य से सौ गुना अधिक अपने पिता का और पिता से हजार गुना अधिक अपनी माता का गौरव (मान मर्यादा) करना चाहिये ॥ १४५ ॥

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता ॥
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ १४६ ॥

अपने शरीर को उत्पन्न करने वाला और गायत्री का उपदेश देने से अपने में द्विजातित्व को उत्पन्न करने वाला, इन दो में उपदेश करने वाला पिता श्रेष्ठ है, क्योंकि, ब्राह्मण का द्विजाति होना ही उसे इस लोक तथा परलोक में चिर-स्थायि फल देता है ॥ १४६ ॥

कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः ॥
संभूतिं तस्य तां विद्याद्, यद् योनावभिजायते ॥१४७॥
आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः ॥
उत्पादयति सावित्र्या, सा सत्या साऽजराऽमरा ॥१४८॥

माता पिता, कामवश होकर, परस्पर मैथुन करने से बालक को जो जन्म देते हैं वह केवल उसका जन्ममात्र होता है, क्योंकि, वह अपनी माता के कुक्षि में शरीर ग्रहण करता है। परन्तु, समूचे वेद को जानने वाला आचार्य, सावित्री के उपदेश द्वारा बालक के जिस द्विजाति जन्म को देता है वही तो ब्राह्मण का सत्य और अजर-अमर जन्म है ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ॥
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया ॥ १४९ ॥

जो थोड़ा या बहुत पढ़ाने का जिस पर उपकार करता है; उसे उस उपकार के कारण लोक में गुरु मानना चाहिये ॥ १४९ ॥

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता ॥
बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥ १५० ॥

अवस्था में अपने से छोटा होने पर भी; द्विजाति जन्मदाता और धर्म का उपदेशक ब्राह्मण अधिक अवस्था के द्विजाति का धर्मपिता होता है (अर्थात् उसने उसको अपने पिता के समान मानना चाहिये) ॥ १५० ॥

अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः ॥
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥ १५१ ॥

अङ्गिरा ऋषि के पुत्र शुक्र जी ने अपने चाचा आदि बड़ों को पढ़ाने के कारण शिष्य बनाकर, 'बेटा!' इस प्रकार कहा ॥ १५१ ॥

ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः॥
देवाश्चैतान् समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान् ॥१५२॥
अज्ञो भवति वै बालः, पिता भवति मन्त्रदः ॥
अज्ञं हि बालमित्याहुः, पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ १५३ ॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ॥
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ १५४ ॥

जब उससे क्रुद्ध होकर उन्होंने देवताओं से यह बात पूँछा तब देवताओं ने उनको जवाब दिया कि, आपको जो उसने 'बेटा' कहा है वह न्याय्य ही है, क्योंकि; जो मूर्ख हो वही बाल है और जो ज्ञानी उपदेश करे वही पिता है। कारण यह कि, मूर्ख को ही बाल और उपदेश करने वाले को बड़ा कहते हैं, न कि, अधिक अवस्था, केशों की श्वेतता, अधिक धन, या चाचा मामा होने से। ऋषियों ने ही यह नियम बनाया है कि, जो विद्वान् हो वही श्रेष्ठ और हम लोगों में बड़ा है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं, क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ॥
वैश्यानां धान्यधनतः, शूद्राणामेव जन्मतः ॥ १५५ ॥

ब्राह्मणों को विद्वत्ता, क्षत्रियों को बल, वैश्यों को धन तथा अन्न आदि संपत्ति, और शूद्रों को अधिक उमर-होने से बड़ा समझना चाहिये ॥ १५५ ॥

न तेन वृद्धो भवति येनाऽस्य पलितं शिरः ॥
यो वै युवाऽप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥१५६॥

केवल माथे के बाल पकजाने से ही बड़ा नहीं होता। जो बालक होने पर भी यदि पढ़ने वाला हो तो, उसी को देवता बड़ा कहते हैं ॥ १५६ ॥

यथा काष्ठमयो हस्ती, यथा चर्ममयो मृगः ॥
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥ १५७ ॥

जैसे काठ का हाथी अथवा मरजाने पर मसाला भर के रक्खा हुआ केवल चर्म का हिरण और वैसे ही अपठित ब्राह्मण, ये तीनों केवल नाम मात्र के हैं ॥ १५७ ॥

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु, यथा गौर्गवि चाफला ॥
यथा चाऽज्ञेऽफलं दानं, तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥१५८॥

जैसे, स्त्रियों को नपुंसक से कोई फल नहीं होता, गौ को गौ से कोई फल नहीं होता, अथवा जैसे मूर्ख को दान देने का कोई फल नहीं होता, वैसे ही वेद न पढ़े हुये ब्राह्मण का भी कोई फल नहीं होता है ॥ १५८ ॥

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ॥
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥१५९॥

धर्म की इच्छा करने वाले को अपने शिष्यों से विना अधिक मार पीट किये ही, उत्तम फल देने वाली विद्या सिखानी चाहिये और सिखाते समय मधुर व प्रिय शब्दों का प्रयोग करना चाहिये ॥ १५९ ॥

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग् गुप्ते च सर्वदा ॥
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥ १६० ॥

उसको, वेदान्त शास्त्र में कहे हुये सब फल प्राप्त होते हैं जिसके; वाणी और मन सदा शुद्ध और संयत रहते हैं ॥ १६० ॥

नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ॥
ययाऽस्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥१६१॥

किसी के दुःख देने पर भी उसके मर्म की बात न कहै, तथा दूसरे के द्रोह का काम या इच्छा न करै और जिस बात के कहने से किसी के चित्त को दुःख होता हो ऐसी निन्द्य बात न कहै ॥ १६१ ॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ॥
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥१६२॥

ब्राह्मण को संमान से सदा विष के समान डरना चाहिये और अमृत के समान अपमान की इच्छा करनी चाहिये, तात्पर्य यह कि, संमान होने से न हर्ष करै और न अपमान से विषाद ! ॥ १६२ ॥

सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते ॥

सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ १६३ ॥

अपमान को सहन करने वाला सुख से सोता है जागता है और इस जगत् में सुख से व्यवहार करता है, अपमान करने वाला मात्र नष्ट होता है ॥ १६३ ॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ॥
गुरौ वसन् संचिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥१६४॥

गर्भाधान से वेदारम्भ तक के द्विजातिसंस्कारों से संस्कृत किया हुआ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का ब्रह्मचारी, गुरु जी के पास रह कर धीरे २ वेदाध्ययन रूप तपस्या करै ॥ १६४ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः ॥
वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥ १६५ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्रह्मचारी, अनेक प्रकार की तपस्या और वेद और शास्त्र में कहे हुये ब्रह्मचारि के नियमों के साथ २ उपनिषदों के सहित समूचे वेद का अध्ययन करके ज्ञान संपादन कर ले ॥ १६५ ॥

वेदमेव सदाऽभ्यस्येत् तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः ॥
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ १६६ ॥

तपस्या करने की इच्छा करने वाला ब्राह्मण, सदा वेद ही की आवृत्ति करता रहै, क्योंकि, ब्राह्मण के लिये लोक में वेदाभ्यास ही सब से उत्तम तपस्या कही गई है ॥ १६६ ॥

आ हैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः ॥
यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥१६७॥

जो ब्रह्मचारी द्विज, माला धारण कर के (अर्थात् ब्रह्मचारी के नियमों का त्याग करने पर) भी प्रतिदिन अपनी शक्ति के अनुसार वेद का अध्ययन करता है वह नख शिखान्त देहव्यापी सर्वोत्कृष्ट तपस्या का फल पाता है। ब्रह्मचारी के नियमों से वेदाध्ययन तो इससे भी अधिक फल देने वाला होता है ॥ १६७ ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१६८॥

जो द्विज वेद, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र न पढ़ कर अन्य विद्या पढ़ता है वह जीता ही अपने वंश के सहित शूद्र हो जाता है अर्थात् वैदिक कर्म में अधिकार रहने पर भी उसका फल नहीं प्राप्त कर सकता है ॥ १६८ ॥

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ॥
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥ १६९ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का प्रथम जन्म, माता के पेट से, दूसरा जन्म, यज्ञोपवीत संस्कार से, और तीसरा जन्म, ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ में श्रौत दीक्षा ग्रहण करने से—होता है ॥ १६९ ॥

तत्र यद् ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिन्हितम् ॥
तत्रास्य माता सावित्री, पिता त्वाचार्य उच्यते ॥१७०॥

उन तीनों जन्मों में दूसरा यज्ञोपवीत संस्कार से होने वाला जो द्विजाति जन्म है, उस जन्म में सावित्री उसकी माता और आचार्य उसके पिता कहे जाते हैं ॥ १७० ॥

वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ॥
न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ॥१७१॥

वेद का उपदेश करने से आचार्य को इसका पिता कहते हैं, क्योंकि, यज्ञोपवीत संस्कार के पहिले ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य बालक को किसी कर्म का अधिकार नहीं होता ॥ १७१ ॥

नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥
शूद्रेण हि समस्तावद् यावद् वेदे न जायते ॥१७२॥

जब तक ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य बालक का वेदमाता सावित्री में जन्म न हो, तब तक, वह शूद्र के तुल्य है, इसलिये उससे अपने माता पिता के श्राद्ध के सिवाय किसी कर्म में वेद मन्त्र का उच्चारण न करावे ॥ १७२ ॥

कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ॥
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥ १७३ ॥

उपनयन संस्कार होने पर उपनीत बालक को नित्य स्नान, तर्पण और देव-पूजा आदि ब्रह्मचारी के नियम कहने चाहिये और फिर उसे विधिपूर्वक क्रमसे वेद (संहिता ब्राह्मण) का अध्ययन कराना चाहिये ॥ १७३ ॥

यद् यस्य विहितं चर्म, यत् सूत्रं, या च मेखला ॥
यो दण्डो, यच्च वसनं, तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥१७४॥

जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य बालक को, उपनयन संस्कार में जो चर्म, यज्ञोपवीत, करधनी, दण्ड और वस्त्र धारण कराये गये हो, वही, चर्म, यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड और वस्त्र ब्रह्मचर्य व्रत में भी उसे नवीन धारण करने चाहिये ॥१७४॥

सेवेतेमांस्तु नियमान् ब्रह्मचारी गुरौ वसन् ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृध्यर्थमात्मनः ॥१७५॥

गुरुकुल में निवास करता हुआ ब्रह्मचारी, अपना तपोबल बढ़ाने के लिये चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रिय व वाक् आदि कर्मेन्द्रियों का निग्रह कर इन नियमों का पालन करे ॥ १७५ ॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद् देवर्षिपितृतर्पणम् ॥
देवताऽभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥१७६॥

ब्रह्मचारी प्रतिदिन स्नान करके स्वच्छता के साथ देव, ऋषि और पितरों का तर्पण, देवताओं का पूजन और अग्नि में समिधाओं से होम करे ॥ १७६ ॥

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः ॥
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥१७७॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥१७८॥

द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथाऽनृतम् ॥
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥१७९॥

मद्यपान, मांसभक्षण, सुगन्ध सूंघना, फूलों के हार पहिरना, गुड़ आदि मीठे रस खाना, स्त्रियों के साथ मैथुन, बासी चीज का भक्षण, किसी जीव की हिंसा, शरीर में तेल लगाना, आँखों में काजल लगाना, जूता पहिरना, छाता लगाना, किसी वस्तु की अभिलाषा करना, क्रोध, लालच, नाचना, गाना, बजाना, जुआ खेलना, लोगों की निन्दा या हँसी करना, झूठ बोलना, पराई स्त्रियों को कटाक्ष से देखना या स्पर्श करना और दूसरों की हानि करना, इन को ब्रह्मचारी कभी न करै ॥१७७॥ ॥१७८॥ ॥१७९॥

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित् ॥
कामाद्, हि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः॥१८०॥

ब्रह्मचारी सब जगह अकेला ही सोवे और जानकर कभी भी स्वयं वीर्यपात न करे । इच्छा पूर्वक वीर्यपात करने से ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट हो जाता है ॥ १८० ॥

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ॥
स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥१८१॥

यदि द्विज ब्रह्मचारी का अनजान से स्वप्नावस्था में वीर्यपात हो जाय तो, स्नान कर सूर्य भगवान् का पूजन करे और 'पुनर्माम्' इस ऋचा को तीन बार पढ़े ॥ १८१ ॥

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् ॥
आहरेद्यावदर्थानि, भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ १८२ ॥

अपने गुरू को जल, माला-फूल, गोबर और कुशा इनकी जितनी आवश्यकता हो उतना ले आवे और प्रतिदिन भिक्षा मांगा करे ॥ १८२ ॥

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ॥
ब्रह्मचार्याहरेद् भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥ १८३ ॥

ब्रह्मचारी को उन्ही के घरसे प्रतिदिन नियम से भिक्षा मांगनी चाहिये जो

लोग वेदाध्ययन और यज्ञ याग करते हुये अपना २ कर्म करने में तत्पर हों ॥१८३॥

गुरोः कुले न भिक्षेत, न ज्ञातिकुलबन्धुषु ॥
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥ १८४ ॥

ब्रह्मचारी को अपने गुरु, सपिण्ड और बन्धुओं के घर भिक्षा न मांगनी चाहिये। यदि दूसरे और घर गांव में न हों तो पहिले पहिल को छोड़ना चाहिये अर्थात् बन्धुबान्धवों के घर ! उनके न हों तो, अपने सपिण्डों के घर ! और यदि उनके भी न हों तो, गुरु के घर भिक्षा मांगनी चाहिये, अन्यथा नहीं ॥१८४॥

सर्वं वाऽपि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे ॥
नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत् ॥१८५॥

यदि गांव में वेदाध्ययन यज्ञ याग आदि स्वकर्म करने वालों के घर न हों तो, गांव भर में चाहे जिस घर से हो बिना बोले ब्रह्मचारी को स्वयं शुद्धता से भिक्षा मांगनी चाहिये, जिन्हें किसी प्रकार का अपराध लगाया गया हो, केवल उन्हीं के घर छोड़ दे ॥ १८५ ॥

दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायसि ॥
सायं प्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥१८६॥

जङ्गल आदि दूर देश से समिधाओं को लाकर काठ की पट्टी टांड़ आदि ऊँचे स्थान में रख दे और उन्हीं से प्रातःकाल और सांयकाल आलस छोड़ कर अग्नि में होम करै ॥ १८६ ॥

अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम् ॥
अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥१८७॥

बिना किसी रोग आदि कष्ट के ब्रह्मचारी यदि सात दिन भिक्षा न मांगे, और प्रात. सायं होम न करै तो उसको अवकीर्णिव्रत(११-११८)प्रायश्चित्त करना चाहिये१८७

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ॥
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥१८८॥

ब्रह्मचारी को प्रतिदिन भिक्षा वृत्ति से उदर पोषण करना चाहिये, कभी भी एक का अन्न न खाना चाहिये, क्योंकि, भिक्षा से प्राप्त अन्न का भोजन करने

पर भी वह भोजन उपवास के ही तुल्य है अर्थात् उसको (ब्रह्मचारी को) उपवास का फल मिलता है ॥१८८॥

व्रतवद्देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत् ॥
काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद् व्रतमस्य न लुप्यते ॥१८९॥

यदि कोई गृहस्थ ब्रह्मचारी को देवता अथवा पितरों के कार्य में भोजनार्थ निमन्त्रण दे तो उस एक का भी अन्न व्रत और ऋषियों के तुल्य है अर्थात्, मद्य-मांस रहित भोजन कर सकता है उससे उसके व्रत का भंग नहीं होता॥ १८९ ॥

ब्राह्मणस्यैव कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः ॥
राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्म विधीयते ॥ १९० ॥

ऊपर कहा हुआ, श्राद्ध आदि निमन्त्रण में एक ही के घर भोजन करना केवल ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिये ही ऋषियों ने कहा है, क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारी को नहीं ॥ १९० ॥

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा ।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ॥ १९१ ॥

गुरु के कहने या न कहने पर भी अपने पढ़ने में और गुरु की सेवा में सदा तत्पर रहना चाहिये ॥ १९१ ॥

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१९२॥

गुरु के सामने अपना शरीर, वाणी, चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रिय, और मन इनको रोक कर हाथ जोड़े हुये खड़ा रहना चाहिये ॥ १९२ ॥

नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ।
आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥१९३॥

यदि गुरु बैठने को कहे तो कपड़ा ओढ़ कर किन्तु, दाहिना हाथ ओढ़े हुये कपड़े से काम करने के लिये सदा बाहर निकाल कर भली भांति गुरु के सामने बैठना चाहिये ॥ १९३ ॥

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात् सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत् प्रथमं चास्य, चरमं चैव संविशेत् ॥१९४॥

सदा ब्रह्मचारी का भोजन कपड़ा पोषाक गुरु के सामने उस से हलका होना चाहिये, गुरु के पहिले उठना चाहिये और पीछे सोना चाहिये ॥ १९४ ॥

प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत् ॥
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥१९५॥

सोते हुये, बैठे हुये, खाते रहते, खड़े हुये या पीछे की ओर से कभी गुरु से न सुनै और न उनसे कुछ कहै ॥ १९५ ॥

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः ॥
प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः ॥१९६॥
पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ॥
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥ १९७ ॥

गुरु बैठे हों तो; उठकर, खड़े हों तो; उनके आगे २-३ पैर चलकर, आते हों तो; शीघ्र उनके समीप जाकर, दौड़ते हों तो; पीछे २ दौड़ कर, पीठ किये हों तो, उनके सामने जाकर, दूर हों तो; उनके समीप जाकर, और सोते या समीप ही में खड़े हों तो, नमस्कार कर उनसे सुनै और कहै ॥ १९६॥१९७॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥ १९८ ॥

गुरु के पास शिष्य का बिस्तर और आसन सदा नीचे होने चाहिये । और गुरु की आँखों के सामने शिष्य को इच्छानुसार न बैठना चाहिये ॥ १९८ ॥

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ॥
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥ १९९ ॥

गुरु की अविद्यमानता में भी उनका नाम मात्र उच्चारण न करे किन्तु 'गुरुवर्य' आदि उपपद लगाकर उच्चारण करे और गुरु के चाल, चलन और भाषण का मसखरा न करे ॥ १९९ ॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते ॥
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥२००॥

जहां अपने गुरु की हँसी या निन्दा की बातें होती हों वहाँ अपने कान बन्द करलें या वहाँ से और कहीं चला जाय ॥ २०० ॥

परीवादात् खरो भवति, श्वा वै भवति निन्दकः ॥
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥२०१॥

अपने गुरु की हँसी करने से दूसरे जन्म में वह (शिष्य) गदहा होता है, निन्दा करने से कुत्ता; उनके धन का अनुचित उपभोग करने से कृमि और उनके उत्कर्ष को न सहने से कीड़ा होता है ॥ २०१ ॥

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ॥
यानासनस्थश्चैवेनमवरुह्याभिवादयेत् ॥२०२॥

स्वयं दूर देश में रह कर किसी दूसरे के द्वारा गुरु की पूजा न करनी चाहिये । इसी प्रकार क्रोध में रह कर, अथवा भार्या के समीप रहने पर स्वयं भी पूजा न करनी चाहियें । गाड़ी आदि सवारी या गद्दी पर अपने बैठे हों तो उतर कर गुरु को नमस्कार करना चाहिये ॥ २०२ ॥

प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह ॥
असंश्रवे चैव गुरोर्न किञ्चिदपि कीर्तयेत् ॥ २०३॥

जहाँ अपने शरीर की हवा उनके शरीर पर जाती हो, या उनके शरीर की हवा अपने पर आती हो ऐसे स्थान पर गुरु के साथ न बैठना चाहिये । जिस विषय में और जब गुरु अपना न सुनते हों तो उस विषय में या उस समय गुरु से कुछ भी कहना न चाहिये ॥ २०३ ॥

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च ॥
आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥२०४॥

गुरु के साथ बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, ऊँटगाड़ी, मकान, बिस्तर, चटाई, चट्टान, तख्ता और नाव पर गुरु के साथ शिष्य बैठ सकता है ॥ २०४ ॥

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥
न चानिसृष्टो गुरुणा स्वान् गुरूनभिवादयेत् ॥२०५॥

गुरु के गुरु को अपने गुरु के समान मानना चाहिये। गुरु की आज्ञा के बिना अपने माता चाचा आदि बड़ों को नमस्कार न करना चाहिये ॥२०५॥

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु ॥
प्रतिषेधत्सु चाधर्मान् हितं चोपदिशत्स्वपि ॥२०६॥

विद्या पढ़ाने वाले, अधर्म करने को रोक कर धर्म करने का उपदेश करने वाले, और अपने बड़े जनों के लिये भी इसी प्रकार पूर्व में कहे हुये वर्ताव को रखना चाहिये ॥ २०६ ॥

श्रेयस्सु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ॥
गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ २०७ ॥

अपने से ज्ञान या अवस्था में अधिक गुरु के औरस पुत्र, सम्बन्धी और अपने चाचा आदि इनको भी सदा गुरु के समान मानना चाहिये ॥२०७॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ॥
अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥२०८॥

बराबरी का या छोटा गुरुपुत्र अपने को पढ़ा सकता हो तो उसका भी गुरु के समान आदर करना चाहिये और अपने से पढ़े हुये गुरुपुत्र का यज्ञ में गुरु के ही समान आदर करना चाहिये ॥ २०८ ॥

उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने ॥
न कुर्याद् गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥२०९॥

गुरुपुत्र के शरीर को उपटन आदि लगाना और नहलाना न चाहिये, न उसका जूठा भोजन करना चाहिये और न पैर दाबने चाहिये ॥ २०९ ॥

गुरुवत् प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोषितः ॥
असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥२१०॥

गुरु के स्वजातीय स्त्रियों की गुरु के समान ही सेवा करनी चाहिये,

और असवर्ण स्त्रियों को उनके आने पर केवल उठ कर नमस्कार करना चाहिये ॥ २१० ॥

अभ्यञ्जनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेव च ॥
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥२११॥

गुरु पत्नी के शरीर में तेल लगाना, नहलाना, अपटने लगाकर मालिश करना, चोटी करना, इत्यादि कभी न करने चाहिये ॥ २११ ॥

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ॥
पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥ २१२ ॥

दुनियां की रीति को जानने वाले बीस वर्ष से अधिक अवस्था के शिष्य को अपने तरुण गुरुपत्नी का चरणस्पर्श करना न चाहिये ॥ २१२ ॥

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ॥
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥२१३॥

पुरुषों को फसाँना यह नारियों का स्वभाव है, इस लिये जानकार पुरुष स्त्रियों से कभी असावधान नहीं रहते ॥ २१३ ॥

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ॥
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥२१४॥

चाहे विद्वान् हो या मूर्ख, उसको काम और क्रोध के आधीन कर जवान स्त्रियाँ बिगाड़ सकती हैं ॥ २१४ ॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥२१५॥

अपनी माता, बहिन या कन्या के साथ एकान्त में कभी न रहना चाहिये, क्योंकि, इन्द्रियां बड़ी प्रबल होती हैं वे ज्ञानी को भी विषयान्ध कर देती हैं ॥ २१५ ॥

कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि ॥
विधिवद् वन्दनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् ॥ २१६ ॥

स्वयं तरुण भी हो वह ब्रह्मचारी अपने तरुण गुरुपत्नियों को (अभिवादयेऽमुकशर्माऽहम्) 'अमुक मैं नमस्कार करता हूँ' ऐसा कह कर केवल नमस्कार करे ॥ २१६ ॥

विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् ॥
गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ २१७ ॥

शिष्ट पुरुषों की यह रीति है ऐसा जान कर परदेश से आने पर अपने गुरुपत्नियों का चरणस्पर्श भी करना चाहिये और प्रतिदिन नमस्कार तो करना ही चाहिये ॥ २१८ ॥

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः ॥
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्यो नाभ्युदियात् क्वचित् ॥२१६॥

ब्रह्मचारी सिर को मुड़ाया करै, बिलकुल न मुड़ाकर सारे केशों की जटा बनावे, या केवल शिखा ही रक्खे अर्थात् माथा मुडाया करे । ब्रह्मचारी को अपने गुरु के घर के सिवाय अन्यत्र गाँव में रहते कभी सूर्यास्त या सूर्योदय न होना चाहिये अर्थात् सूर्यास्त के पहिले गुरु के घर आजाना चाहिये और सूर्योदय होने के बाद ही वहाँ से निकलना चाहिये ॥ २१६ ॥

तं चेदभ्युदियात् सूर्यः शयानं कामचारतः ॥
निम्लोचेद्वाऽप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥ २२० ॥

सूर्योदय या सूर्यास्त के समय ब्रह्मचारी यदि यथेच्छ सो रहा हो तो उसको दिन रात भोजन न कर जप करते हुये बिताना चाहिये ॥ २२० ॥

सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः ॥
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ॥ २२१ ॥

जो ब्रह्मचारी सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोने पर भी दिनरात उपवास और जप नहीं करता उसको बड़ा भारी पाप लगता है ॥ २२१ ॥

आचम्य प्रयतो नित्यमुभे सन्ध्ये समाहितः ॥
शुचौ देशे जपन् जप्यमुपासीत यथाविधि ॥२२२॥

पवित्र भूमि पर बैठ कर आचमन प्राणायाम पूर्वक प्रातः सायं एकाग्रचित्त से सन्ध्योपासन और गायत्रीजप, यथाविधि प्रतिदिन करना चाहिये ॥२२२॥

यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किञ्चित् समाचरेत् ॥
तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वाऽस्य रमेन्मनः ॥२२३॥

यदि श्रेष्ठ कर्म स्त्री और शूद्र करें तो उस समस्तकर्म को ब्रह्मचारी कर सकता है और मन को जिस कर्म में आनन्द होता हो उसको भी ब्रह्मचारी कर सकता है (परन्तु वह कर्म शास्त्र निषिद्ध न हो) ॥ २२३ ॥

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च ॥
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ॥२२४॥

अच्छे काम ही से धर्म और अर्थ, काम और अर्थ, केवल धर्म या केवल अर्थ होता है। वस्तुतः धर्म, अर्थ और काम ये तीनों अच्छे काम से होते हैं ॥२२४॥

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः, पिता मूर्तिः प्रजापतेः ॥
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु, भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः ॥२२५॥

आचार्य परमात्मा का, पिता ब्रह्मदेव का, माता पृथिवी का और भाई अपना रूप है ॥ २२५ ॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ॥
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २२६ ॥

आचार्य, पिता, माता, और बड़े भाई ये आर्त से भी अपमानित न किये जायँ और यह ब्राह्मण के लिये तो बहुत ही आवश्यक है ॥ २२६ ॥

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् ॥
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२७॥

मनुष्यों की उत्पत्ति में जो कष्ट माता और पिता को झेलना पड़ता है उससे सैकड़ों वर्षों में भी मनुष्य उऋण नहीं हो सकता ॥ २२७ ॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ॥
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ २२८ ॥

माता, पिता और गुरु का सदा प्रिय करते रहना चाहिये, क्योंकि, उन्हीं तीनों के सन्तुष्ट होने से सब तपस्या पूरी होती है ॥ २२८ ॥

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते ॥
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २२९ ॥

उन तीनों की सेवा ही तो सर्वोत्तम तपस्या कहलाती है। उनकी आज्ञा विना कोई भी धर्मकार्य न करना चाहिये ॥ २२९ ॥

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः ॥
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥२३०॥
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताऽग्निर्दक्षिणः स्मृतः ॥
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥ २३१॥

माता, पिता और आचार्य, ये ही तीनों लोक, आश्रम, वेद और अग्नि हैं। उनमें पिता गार्हपत्याग्नि, माता दक्षिणाग्नि और आचार्य आहवनीय अग्नि हैं और ये ही तो तीनों अग्नि श्रेष्ठ हैं ॥ २३० ॥ २३१ ॥

त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान् विजयेद् गृही ॥
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥ २३२ ॥

इन तीनों की सेवा में प्रमाद न करने से गृहस्थाश्रमी भी भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तीनों को जीत कर देवताओं के सदृश प्रकाशमान अपने शरीर ही से स्वर्गलोक में आनन्द पाता है ॥ २३२ ॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ॥
गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ २३३ ॥

माता की सेवा से भूलोक, पिता की सेवा से भुवर्लोक (अन्तरिक्ष लोक) और गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक के सुख को पाता है ॥ २३३ ॥

सर्वे तस्याऽऽदृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ॥
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥२३४॥

जो अपने माता, पिता और आचार्य की सेवा करता है उसके सब धर्म

कार्य सिद्ध होते हैं और जो उनकी सेवा न कर उनका तिरस्कार करता है उसको सब धर्म कार्य करने पर भी फल नहीं मिलता है बल्कि सब निष्फल हो जाते हैं ॥ २३४ ॥

यावत् त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ॥
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात् प्रियहिते रतः ॥२३५॥

जब तक अपने माता, पिता और आचार्य जीयें तब तक दूसरा कोई धर्म कार्य स्वतन्त्र हो कर न करना चाहिये, किन्तु सदा उन्हीं के प्रिय हित में लीन हो उनकी सेवा किया करे ॥ २३५ ॥

तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् ॥
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥२३६॥

उनकी सेवा के सिवाय दूसरा जो जो काया, वाचा और मन से धर्म कार्य करना हो वह उनको बतला देना चाहिये ॥ २३६ ॥

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ॥
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥२३७॥

उनकी सेवा करने ही से मनुष्य के सब धर्म, अर्थ और काम त्रिविधि पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, अतः उनकी सेवा करना ही मुख्य धर्म है और दूसरा सब गौण धर्म है ॥ २३७ ॥

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ॥
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥२३८॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ॥
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥२३९॥

यदि नीच मनुष्य पर अपनी श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, तो, उससे भी उसकी उत्तम विद्या सीख लेना चाहिये, चाण्डाल से भी मोक्ष का ज्ञान, दुष्ट कुल से भी स्त्री, विष से भी अमृत, छोटे से भी हित की बात, शत्रु से भी सच्चरित्र और अपवित्र वस्तु से भी सुवर्ण ले लेना चाहिये ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ॥
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥२४०॥

स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शुद्धिक्रिया, उत्तम भाषण और नाना प्रकार की कारीगरी इनको सब से ले लेना चाहिये ॥ २४० ॥

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ॥
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥ २४१ ॥

यदि ब्राह्मण अध्यापक अच्छा न मिलता हो, तो क्षत्रिय और वैश्य से भी पढ़ना चाहिये किन्तु क्षत्रिय और वैश्य गुरु की सेवा केवल पढ़ने के ही समय करनी चाहियें, दूसरे समय नहीं ॥ २४१ ॥

नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत् ॥
ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन् गतिमनुत्तमाम् ॥२४२॥

जो ब्राह्मण विद्वान् न हो उसके, या क्षत्रिय और वैश्य के पास सदा शिष्य को न रहना चाहिये ॥ २४२ ॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोः कुले ॥
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ॥ २४३ ॥

जिसको गुरु के ही समीप सदा रहने की इच्छा हो वह आमरणान्त गुरु की सेवा में तत्पर रहे ॥ २४३ ॥

आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् ॥
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥२४४॥

जो ब्राह्मण ब्रह्मचारी आ-मरणान्त गुरु की सेवा करता है वह सहज ही मोक्ष पाता है ॥ २४४ ॥

न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् ॥
स्नास्यंस्तु गुरुणाऽऽज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ॥२४५॥
क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम् ॥
धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥ २४६ ॥

पढ़ने के समय गुरु को धार्मिक शिष्य कुछ भी न दे, किन्तु गुरु से अपने घर के लिये विदाई होने समय उनके आज्ञानुसार यथाशक्ति खेत, सुवर्ण, गौ, घोड़ा, छाता, जूता, आसन, धान्य, शाक और वस्त्र गुरुदक्षिणा देकर गुरु को सन्तुष्ट करें ॥ २४५ ॥ २४६ ॥

आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते ॥
गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥ २४७ ॥
एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारवान् ॥
प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद् देहमात्मनः ॥२४८॥

आमरणान्त गुरु की सेवा करनेवाले (नैष्ठिक) ब्रह्मचारी को आचार्य का स्वर्गवास होने पर विद्या आदि गुणों से युक्त गुरु के पुत्र, स्त्री और चाचा आदि सपिण्डों की सेवा करनी चाहिये, और ये न हों तो उन्हीं के घर में स्नान, सन्ध्या, भोजन, सायंप्रातर्होम से गुरु के अग्नियों की सेवा-करते २ अपने शरीर का मोक्ष कर दे ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः ॥
स गच्छत्युत्तमस्थानं न चेह जायते पुनः ॥ २४९ ॥

इति मनुस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्मचारि के नियमों का सतत पालन करने वाला ब्राह्मण मोक्ष पाता है और इस भूलोक में फिर कभी उत्पन्न नहीं होता ॥ २४९ ॥

इति श्री दाक्षिणात्यब्राह्मणकुलावतंससिद्धेश्वरतनय नेने-गोपालकृत
मनुस्मृतिभाषाप्रकाश द्वितीयाध्यायः सम्पूर्णः ॥ २ ॥

* तृतीयोऽध्यायः *

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ॥
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥

ऋग्, यजु और साम इन तीन वेदो का अध्ययन करने के लिये ३६ वर्ष, १८ वर्ष, ९ वर्ष, या पढ़ना समाप्त होने तक गुरु के समीप वास करना चाहिये ॥ १ ॥

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम् ॥
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ २ ॥

अपनी बुद्धि के अनुसार ऋग्, यजु और साम ये तीनों, दो, या केवल एक ही वेद (द्वितीय अध्याय में कहे हुये) ब्रह्मचर्य व्रत के साथ २ पढ़ कर पश्चात् गृहस्थाश्रम को स्वीकार करना चाहिये (अर्थात् विवाह करना चाहिये) ॥ २ ॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ॥
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत् प्रथमं गवा ॥ ३ ॥

ब्रह्मचारि नियमों के साथ २ अपने द्विज पिता का वेद रूप धन को प्राप्त करने पर विवाह के पहिले आसन पर बैठा कर माला फूल और गोदानदक्षिणा से उसका आचार्य या पिता को सत्कार करना चाहिये ॥ ३ ॥

गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ॥
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ ४ ॥

गुरु की आज्ञा से अपने गृह्योक्त विधि के अनुसार स्नान समावर्तन संस्कार होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को अपने २ वर्ण की सौन्दर्य आदि लक्षण युक्त कन्या से विवाह करना चाहिये ॥ ४ ॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ॥
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥

जो कन्या अपने माता की सपिण्डा न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को विवाह और मैथुन करना ठीक है ॥५॥

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ॥
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ॥
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥

जिस कुल में-जातकर्म आदि क्रिया न होती हों, पुरुष उत्पन्न न होते हों, वेदाध्ययन न होता हो, बड़े बड़े केश, अर्शरोग, क्षय, अग्निमान्द्य, मिरगी, भूरापन और कुष्ठ रोग हों, ऐसे दस कुलों के, बड़े-भारी, और गाय, बकरियां, भेड़, धन और धान्य से समृद्ध होने पर भी, उन में विवाह सम्बन्ध न करना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ॥
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥८॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥

जिस कन्या के केश भूरे, अङ्ग अधिक हो, रोग हों, बिलकुल केश न हों, बहुत रोम हों, बहुत और खराब बोली हो, आंखें पीली हों, नाम-नक्षत्र, पेड़, नदी, चाण्डाल आदि हीन जाति, पर्वत, पक्षी, सर्प और दूत वाचक अथवा भयङ्कर हों, उस कन्या से विवाह करना न चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ॥
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥ १० ॥

जिस कन्या के अङ्ग कम न हो, नाम सौम्य हो, गति हंसपक्षी या गज के समान हो, शरीर पर के रोम, केश और दांत छोटे छोटे हों, शरीर कोमल हो उस कन्या से विवाह करना चाहिये ॥ १० ॥

यस्यास्तु न भवेद् भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाऽधर्मशङ्कया ॥ ११ ॥

जिस कन्या का सहोदर भ्राता न हो और पिता का पता न लगता हो उससे बुद्धिमान् * पुत्रिका और अधर्म की शङ्का के हेतु विवाह न करे ॥ ११ ॥

सवर्णाऽग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ॥
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः ॥१२॥

पहिले पहिल अपने जाति और वर्ण की कन्या से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को विवाह करना ठीक है और दूसरे अन्य विवाह अन्य जाति और वर्ण की कन्या से भी हो सकते हैं ॥ १२ ॥

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य, सा च स्वा च विशः स्मृते ॥
ते च स्वा चैव राज्ञश्च, ताश्च स्वाचाग्रजन्मनः ॥१३॥

शूद्र की स्त्री शूद्रवर्ण ही की कन्या, वैश्य की शूद्र और वैश्य दो वर्ण की कन्याएँ, क्षत्रिय की शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय तीन वर्ण की कन्याएँ और ब्राह्मण की शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण चारों वर्ण की कन्याएँ भार्या हो सकती हैं ॥ १३ ॥

न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ॥
कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥ १४॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय का उनके वर्ण की कन्या न मिलने पर भी शूद्र वर्ण की कन्या से विवाह किसी भी इतिहास में नहीं दिखाई पड़ता है ॥ १४ ॥

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः ॥
कुलान्येव नयत्याशु ससन्तानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥

शूद्र की कन्या से कामवश होकर विवाह करने से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने कुलों को मय बाल बच्चों के शूद्र कर डालते हैं ॥ १५ ॥

शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च ॥
शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥

---

*नोट—पुत्रिका-जिस कन्या का भाई न हो, उससे जो पुत्र होगा वह उसके पति के कुल का न होगा बल्कि मातृकुल का होगा। और उसका दिया पिंडा और पानी मातृकुल वालों को ही मिलता है।

ब्राह्मण शूद्र की कन्या के साथ ब्याह करने से पतित होता है ऐसा अत्रि और गौतम ऋषि का मत है, क्षत्रिय शूद्र की कन्या से ब्याह कर उस से बच्चा होने पर पतित होता है ऐसा शौनक ऋषि का मत है, और वैश्य शूद्र की कन्या से ब्याह कर उसको पोता या नाती होने पर पतित होता है ऐसा भृगु ऋषि का मत है ॥ १६ ॥

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥१७॥

शूद्र की कन्या के साथ विषय करने से ब्राह्मण का अधः पात होता है और यदि उसको बच्चा हो जाय तो ब्राह्मण्य ही से च्युत हो जाता है ॥ १७ ॥

दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु ॥
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति ॥१८॥

शूद्र की कन्या से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ब्याह यदि कर भी ले तो भी देवता, पितर और अतिथि इनके उद्देश्य से कोई कार्य उसको साथ लेकर न करना चाहिये, क्योंकि, उसके (शूद्रा के) साथ होने वाले कार्य में देवता और पितर अपना हवि ग्रहण नहीं करते और उस द्विजाति को स्वर्ग नही मिलता ॥ १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥१६॥

शूद्रा का अधरोष्ठ पान करने से, उसके साथ शयन करने से और उससे बच्चा पैदा करने से द्विजाति का उस पाप से छुटकारा नहीं होता ॥ १६ ॥

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान् ॥
अष्टाविमान् समासेन स्त्रीविवाहान् निबोधत ॥ २० ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ॥
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २१ ॥

चारो वर्णों के इहलोक और परलोक में अच्छा और बुरा फल देने वाले कन्या से ब्याह करने के ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस,

और सब से निकृष्ट पैशाच ऐसे आठ विधि हैं सो संक्षेप से जानियेगा ॥ २० ॥ २१ ॥

यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य, गुणदोषौ च यस्य यौ ॥
तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥२२॥

जिस वर्ण के लिये जो विवाह धर्म्य है, जिस विवाह के जो गुण और दोष हैं, और जिस विवाह से संस्कृत स्त्री को सन्तान होने में जो गुण और दोष हैं, वह सब आप लोगों से कहता हूँ ॥ २२ ॥

षडानुपूर्व्या विप्रस्य, क्षत्रस्य चतुरोऽवरान् ॥
विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद् धर्म्यानराक्षसान् ॥२३॥

ब्राह्मण के लिये पहिले छ अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर और गान्धर्व विवाह, क्षत्रिय के लिये अन्तिम चार आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच; वैश्य और शूद्र के लिये राक्षस को छोड़ वही अर्थात् आसुर, गान्धर्व और पैशाच तीन विवाह धर्म्य हैं ॥ २३ ॥

चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान् प्रशस्तान् कवयो विदुः ॥
राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥ २४ ॥

उनमें भी ब्राह्मण को पहिले चार ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य; क्षत्रिय को केवल राक्षस; वैश्य और शूद्र को केवल आसुर विवाह अधिक अच्छे हैं ॥ २४ ॥

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या, द्वावधर्म्यौ स्मृताविह ॥
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन ॥ २५ ॥

प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच, इन अन्तिम पाँच विवाहों में पहिले तीन अच्छे हैं, और अन्तिम दो अधर्म्य अर्थात् हानिकारक हैं । पैशाच और आसुर विवाह कभी न करने चाहिये ॥ २५ ॥

पृथक् पृथग्वा, मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ ॥
गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥२६॥

पहिले कहे हुये गान्धर्व और राक्षस विवाह अलग अलग या एक साथ क्षत्रिय को धर्म्य हैं ॥ २६ ॥

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ॥
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥२७॥

किसी विद्वान् और सच्चरित्र पुरुष को स्वयं बुला कर अच्छे २ वस्त्र पहिना कर तथा पूजन कर कन्या दी जाय तो इस प्रकार का विवाह 'ब्राह्म विवाह' कहलाता है ॥ २७ ॥

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ॥
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ २८ ॥

यज्ञ में किसी ऋत्विक् को अच्छा काम करते हुये देख कर (प्रसन्न चित्त से) आभूषण सहित कन्या उसे दी जाय तो उस विवाह को 'दैव विवाह' कहते हैं ॥ २८ ॥

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ॥
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥२९॥

एक एक गौ और साँड़ (अर्थात् कुछ द्रव्य) विवाह या और किसी धर्म कार्य के लिये वर से लेकर यदि उसे कन्या दी जाय, तो वह विवाह 'आर्ष विवाह' कहलाता है ॥ २९ ॥

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचाऽनुभाष्य च ॥
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥३०॥

"कोई भी धर्म कार्य करना हो तो हम दोनों एक साथ किया करें" ऐसी प्रतिज्ञा वर से करा कर यदि पूजन पूर्वक उसे कन्या दी जाय, तो, वह विवाह 'प्राजापत्य विवाह' है ॥ ३० ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ॥
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥३१॥

अपनी शक्ति के अनुसार कन्या या उसके बड़े लोगों को मनमाना व्यय करने के लिये धन देकर उनसे वह कन्या ली जाय, तो, वह विवाह 'आसुर' विवाह कहलाता है ॥ ३१ ॥

इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ॥
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥ ३२ ॥

कन्या और वर दोनों का परस्पर प्रेम होने से किसी समय दोनों में बड़ों की आज्ञा के बिना ही यदि समागम हो जाय तो वह विवाह 'गान्धर्व' विवाह कहलाता है, और दोनों की इच्छा से होने के हेतु उस विवाह से समागम का सुख अधिक प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ॥
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३३ ॥

यदि रोती और चिल्लाती हुई कन्या का उस के घर में मार काट और तोड़ फोड़ मचा कर बलात्कार से हरण किया गया हो तो वह विवाह 'राक्षस' विवाह कहलाता है ॥ ३३ ॥

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ॥
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ३४ ॥

यदि कोई पुरुष किसी सोती हुई, नशे में चूर, या पागल, कन्या के साथ निराले में विलास कर ले, तो इस भाँति जो एक प्रकार का विवाह हुआ वह 'पैशाच' विवाह कहलाता है और सब विवाहों से महानिन्द्य और अधिक पाप-जनक है ॥ ३४ ॥

अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते ॥
इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥ ३५ ॥

ब्राह्मणों को जल से ही कन्यादान करना उत्तम होता है, और अन्य क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का तो परस्पर प्रेम होने से, केवल कहने से भी कन्यादान हो सकता है ॥ ३५ ॥

यो यस्यैषां विवाहानां मनुना कीर्तितो गुणः ॥
सर्वं शृणुत ! तं विप्राः ! सर्वं कीर्तयतो मम ॥ ३६ ॥

मैं आप लोगों से सब कह ही रहा हूं इसलिये इन कहे हुये आठों विवाहों

में जिसका जो गुण मनु भगवान् ने कहा है उसे भी प्यारे ब्राह्मणों ! सुन लीजिये ॥ ३६ ॥

दश पूर्वान् परान् वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् ॥
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितॄन् ॥३७॥
दैवोढाजः सुतश्चैव सप्तसप्त परावरान् ॥
आर्षोढाजः सुतस्त्रींस्त्रीन्, षट्षट् कायोढजः सुतः ॥३८॥

ब्राह्म विवाह से ब्याही हुई स्त्री से उत्पन्न पुत्र यदि धर्मात्मा हो तो वह अपने से पहिले पिता आदि दस पुरुष, आगे के पुत्र आदि दस पुरुष और स्वयं अपने को, इस प्रकार २१ पुरुषों को एकही बार पाप से मुक्त करा देता है। दैव विवाह से ब्याही स्त्री से उत्पन्न पुत्र सात ऊपर के सात नीचे के और स्वयं अपने को, इस प्रकार पन्द्रह, आर्ष विवाह से ब्याही स्त्री से तीन ऊपर के, तीन नीचे के, और अपने को इस प्रकार पॉच, और प्राजापत्य विवाह से ब्याही स्त्री से ६ ऊपर के, ६ नीचे के और अपने को, इस प्रकार तेरह; पुरुषों का पाप से उद्धार होता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ॥
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ॥ ३९ ॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ॥
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥४०॥

किसी का ब्याह क्रम से ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य, इन्हीं चार विवाहों में से भया हो, तो उसी की सन्तान ब्रह्मतेज वाली, शिष्टपुरुषों को मान्य, सुन्दर, सात्त्विक, दयालु, धनी, यशस्वी, यथेच्छ विषयोपभोग करने वाली, धर्मात्मा और शतायु होती है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ॥
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ ४१ ॥

बाकी और दूसरे आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच विवाहों में से यदि किसी ने कोई ब्याह किया हो तो उन विवाहों के दूषित होने से उसकी सन्तान

भी निर्दय, असत्य बोलने वाली, और ब्राह्मण तथा धर्मकार्य्य से द्वेष करने वाली होती है ॥ ४१ ॥

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ॥
निन्दितैर्निन्दिता नृणां, तस्मात् निन्द्यान् विवर्जयेत्॥४२॥

सन्तान यदि स्त्रियों का ब्याह ब्राह्म आदि विवाह विधि से हुआ हो तो अच्छी, और आसुर आदि निन्द्य विवाह विधियों से हुआ हो तो निन्द्य होती है इस लिये निन्द्य आसुर आदि विवाह न करने चाहिये ॥ ४२ ॥

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते ॥
असवर्णास्त्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि ॥ ४३ ॥
शरः क्षत्रियया ग्राह्यः, प्रतोदो वैश्यकन्यया ॥
वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥ ४४ ॥

अपने वर्ण की कन्या से ब्राह्मण यदि ब्याह करे तो उस कन्या का हाथ पकड़ कर विवाह संस्कार करना चाहिये, और असवर्ण कन्या से करे तो यदि क्षत्रिया कन्या हो तो उसके हाथ में का बाण पकड़ कर, वैश्या कन्या हो तो उसके हाथ में दी हुई लगाम पकड़ कर और शूद्रा कन्या हो तो उसके पहिने हुये वस्त्र का आँचला पकड़ कर विवाह संस्कार करना चाहिये। इसी रीति से क्षत्रिय और वैश्य को भी असवर्ण कन्या के साथ विवाह करना चाहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ॥
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ ४५ ॥

जब भार्या को ऋतु प्राप्त हो तब निषिद्ध रात्रियों के अतिरिक्त किसी एक समय पति को उसकेसाथ विषय भोग अवश्य करना चाहिये, सदा अपनी स्त्री में ही प्रीति रखनी चाहिये, और अपनी ही स्त्री में आसक्त पुरुष को यदि विषय भोग करने की इच्छा हो तो ऋतुकाल न होने पर भी अपनी भार्या से कर सकता है किन्तु उस दिन अमावास्या पौर्णमासी आदि पर्व न होने चाहिये ॥ ४५ ॥

ऋतुःस्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ॥

चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ ४६ ॥

रुधिरस्राव से निषिद्ध पहले चार दिन को लेकर सोलह दिन तक स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल रहता है अर्थात् उतने ही दिनों में गर्भ धारण कर सकती हैं ॥ ४६ ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या॥
त्रयोदशी च, शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ४७ ॥

उन सोलह रात्रियों में पहली ४ रात्रियां, ग्यारहवीं रात और तेरहवीं रात पति को भोग के लिये निषिद्ध हैं बाक़ी दस रात उपयुक्त हैं ॥ ४७ ॥

युग्मासु पुत्रा जायन्ते, स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥
तस्माद् युग्मासु पत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥४८॥

सम अर्थात् ६, ८, १०, १२, १४ और १६ वीं रात्रि में गर्भाधान से पुत्र होते हैं और विषम ५, ७, ९, १३ और १५ वीं रात्रि में गर्भाधान से कन्या होती हैं, इस लिये पुत्र होने की इच्छा करने वाले को अपनी स्त्री से ऋतु काल की सम रात्रि में भोग करना चाहिये ॥ ४८ ॥

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे, स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥
समेऽपुमान्, पुंस्त्रियौ वा, क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥४९॥

पुरुष का वीर्य अधिक हो तो पुत्र, स्त्री का रुधिर अधिक हो तो कन्या, और दोनों का बराबर हो तो नपुंसक, या पुत्र और कन्या दोनों होते हैं; और यदि दोनों का वीर्य और रुधिर नि सार और कम हो जाय तो सन्तान होती ही नहीं ॥ ४९ ॥

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ॥
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ५० ॥

यदि पुरुष अपनी भार्या से पहली ४, ग्यारहवीं और तेरहवीं ऐसी ६ निषिद्ध रात्रियों और दूसरी अन्य आठ रात्रियों को छोड़ कर केवल बाकी ही रात्रियों में विषयोपभोग करता हो तो किसी भी आश्रम (गृहस्थ और वानप्रस्थ) में होने पर भी वह ब्रह्मचारी ही है अर्थात् उसको ब्रह्मचर्य का फल

मिलता है ॥ ५० ॥

न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ॥
गृह्णंश्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ५१ ॥

जानकार कन्यापिता को वरपक्ष से थोड़ा भी द्रव्य न लेना चाहिये, क्योंकि लोभ से द्रव्य लेने वाला मनुष्य कन्या देने के कारण कन्या का वेचने वाला हो जाता है ॥ ५१ ॥

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ॥
नारी यानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥ ५२ ॥

जो पुरुष किसी स्त्री के धन, दासी, सवारी, और वस्त्र अर्थात् किसी भी वस्तु को अपने उपयोग में लाते हैं वे उस पाप से नरक में जाते हैं ॥ ५२ ॥

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् ॥
अल्पोऽप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥ ५३ ॥

पहिले कहे हुए "आर्ष" विवाह में एक एक या दो दो गाय और सॉड वरपक्ष से लेने को किसीने कहा है वह ठीक नहीं है, क्योंकि, चाहे थोड़ा धन लिया जाय अथवा बहुत, वह विक्रय ही तो होगा ॥ ५३ ॥

यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः ॥
अर्हणं तत् कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् ॥ ५४ ॥

जिन कन्याओं के माता पिता आदि बड़े लोग वरपक्ष वालों से स्वसन्तोष से धन देने पर भी स्वयं नहीं लेते किन्तु अपनी कन्याओं को दे देते हैं वह विक्रय नहीं होता, बल्कि ऐसा करके कन्याओं का बड़ा भारी एक उपकार करते हैं ॥ ५४ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ॥
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥

यदि अपना अधिक कल्याण चाहते हों, तो, माता, पिता, भ्राता, पति और [illegible] इत्यादि को स्त्रियों का अलङ्कार आदि से सदा सत्कार करते [illegible] चाहिये ॥ ५५ ॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः ॥
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥५६॥

जिस घराने में नारियों का सदा आदर होता रहता है उस घराने पर देवताओं की कृपा सदा बनी रहती है, और जिस में नारियों का आदर न हो उलटा अनादर हुआ करता है उस घराने के सब काम बिगड़ जाते हैं ॥ ५६ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र, विनश्यत्याशु तत्कुलम् ॥
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥

जिस घराने की बहू, बेटियाँ आदि शोक किया करती हैं, उस घराने का बहुत शीघ्र नाश होता है, और जहाँ की बहू बेटियाँ, आदि शोक नहीं करती बल्कि आनन्द मनाती है उस घराने की सदा बढ़ती होती रहती है ॥५७॥

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ॥
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥ ५८ ॥

जिन घरानों की बहू, बेटियाँ आदि सदा अनादर के कारण कुढ़ा करती हैं उन घरानों की जैसे किसी दुश्मन को आभिचारिक कृत्य (मूठ, करनी, टोना,) करने से हानि होती है चारो ओर से हानि ही होती रहती है ॥ ५८ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥

इस हेतु अपना उत्कर्ष जो चाहते हों वे सदा उपनयन आदि मङ्गल कार्य और उत्सवों के दिन अपनी स्त्रियों को अच्छे २ अलङ्कार (गहने), कपड़े और भोजन देकर सन्तुष्ट किया करें ॥ ५९ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च ॥
यस्मिन्नेव कुले नित्यं, कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६०॥

जिस घराना में पति-पत्नि परस्पर सन्तुष्ट रहते हैं उसकी बढ़ती अवश्य होती ही रहती है ॥ ६० ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत, पुमांसं न प्रमोदयेत् ॥

अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ॥ ६१ ॥

यदि अच्छे अलङ्कार वस्त्र आदि भार्या को नहीं दिये जाते तो सुन्दर न मालूम होने के कारण उस स्त्री से पति को आनन्द नहीं होता, और पति को आनन्द न हो तो वहां सन्तति कभी नहीं होती है ॥ ६१ ॥

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ॥
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ६२ ॥

वह कुल जहां पति का अपनी भार्या पर प्रेम होता है सारे जगत को अच्छा प्रतीत होता है और वह घराना जहां पति का उसकी भार्या पर प्रेम नहीं होता किसी को अच्छा नहीं ज्ञात होता ॥ ६२ ॥

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ॥
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ६३ ॥

जिन कुलीन द्विजाति घरानों में आसुर आदि निन्द्य विवाह अथवा ब्राह्मणों का अपमान होता हो, तथा जातकर्म आदि संस्कार और वेदाध्ययन आदि न होते हों, वे अकुलीन (नीच) हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः ॥
गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥ ६४ ॥
अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम् ॥
कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥६५॥

बढ़ई, लोहार आदि की कारीगरी के काम, ब्याज-बट्टा, अपने वर्ण की स्त्री से विवाह न कर केवल रंडियों ही से सन्तान की उत्पत्ति; गाय, घोड़ा, गाड़ी, पालकी आदि सवारियों का क्रय-विक्रय, खेती, राजा की नौकरी, अनधिकारियों के याग में आर्त्विज्य, श्रौत-स्मार्त क्रियाओं पर अश्रद्धा, और वेदाध्ययन का अभाव इत्यादि जिन घरानों में होने लगते हैं उनका शीघ्र ही नाश होता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि ॥
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥६६॥

जिन घरानों में वेदविद्या बहुत हो वे दरिद्र होने पर भी कुलीन घर कहलाते हैं और लोक में उनकी बड़ी प्रशंसा होने लगती है ॥ ६६ ॥

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि ॥
पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥६७॥

गृहस्थ को अपने २ गृहसूत्र में कहे सायंप्रातर्होम आदि कर्म, पञ्चमहायज्ञ और अपने घर प्रतिदिन होनेवाला पाक (रसोई) विवाह काल में प्राप्त हुये अग्नि में करना चाहिये ॥ ६७ ॥

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ॥
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥६८॥

चूल्हा, सिल-लोढ़ा, झाड़ू, ऊखल-मूसर और पानी का कुण्डा इन पांचो से काम लेने से अनेक जन्तुओं की हिंसा होती है अतः ये पांच गृहस्थ के घर के बधस्थान (कसाई घर के सदृश) हैं ॥ ६८ ॥

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ॥
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ६९ ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥

उन सब उपरोक्त स्थानों में होनेवाली हिंसाओं के प्रायश्चित के लिये महर्षियों ने वेद का अध्ययन और अध्यापन रूप ब्रह्मयज्ञ; पितरों का तर्पण रूप पितृयज्ञ, देवताओं के उद्देश्य से होम रूप देवयज्ञ (वैश्वदेव), कृमि कीट आदि जन्तुओं के उद्देश्य से बलिदान रूप भूतयज्ञ (बलिहरण) और अतिथियों (पाहुन) का सत्कार रूप मनुष्ययज्ञ, इन पांच महायज्ञों का गृहस्थों के लिये विधान किया है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

पञ्चैतान् यो महायज्ञान् न हापयति शक्तितः ॥
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ ७१ ॥

जो गृहस्थ उन पञ्चमहायज्ञों का संभवतः व्यतिक्रम नहीं होने देता उसको

घर में रहने पर भी उन वधस्थानों के हिंसापराध नहीं लगते ॥ ७१ ॥

देवताऽतिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः ॥
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥७२॥

देवता, प्राणी, अतिथि, नौकर-चाकर माता-पिता आदि, और अपने को जो अच्छे २ अन्न आदि से सन्तुष्ट नहीं रखता उसको अपने जीवन के कर्तव्य को न करने के हेतु मृतप्राय समझना चाहिये ॥ ७२ ॥

अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च ॥
ब्राह्म्यं हुतं प्राशितं च पञ्चयज्ञान् प्रचक्षते ॥७३॥

अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्मयहुत और प्राशित, इनको भी पञ्चमहायज्ञ कहते हैं ॥ ७३ ॥

जपोऽहुतो, हुतो होमः, प्रहुतो भौतिको बलिः ॥
ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा, प्राशितं पितृतर्पणम् ॥७४॥

वेद का नित्य जप अर्थात् अध्ययन और अध्यापन, अहुत (ब्रह्मयज्ञ) देवताओं के समर्पण करने के उद्देश्य से नित्य होनेवाला होम, हुत (देवयज्ञ), छोटे २ प्राणियों के रक्षा के उद्देश्य से अन्नदान प्रहुत (भूतयज्ञ), अपने घर पर आये हुये ब्राह्मण आदि अतिथियों का नित्य सत्कार ब्राह्मयहुत (मनुष्ययज्ञ) और पितरों के तृप्ति करने के उद्देश्य से होनेवाला तर्पण तथा प्राशित (पितृयज्ञ) हैं ॥ ७४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दैवे चैवेह कर्मणि ॥
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५ ॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ७६ ॥

गृहस्थ को कम से कम ब्रह्मयज्ञ और देवयज्ञ (वैश्वदेव) अवश्य करने चाहिये क्योंकि, ब्रह्मयज्ञ में तो कोई चर्चा ही नहीं है, और अग्नि में विधिपूर्वक दी गई आहुति सूर्य को मिलती है, उससे वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है और उससे सन्तान उत्पन्न होती हैं, इस प्रकार इस सम्पूर्ण जगत का

उपकार एक देवयज्ञ (वैश्वदेव) करने से होता है ॥७५॥ ७६ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ॥
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ ७७ ॥

जैसे सब प्राणी वायु के सहारे जीवित रहते हैं उसी प्रकार ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीनों आश्रमों के मनुष्य गृहस्थ ही के सहारे से अपने २ आश्रम के कार्य कर सकते हैं ॥ ७७ ॥

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ॥
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्मात् ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ ७८ ॥

जब ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीनों को ज्ञान और अन्न देकर गृहस्थ ही पालन-पोषण कर सकता है तो गृहस्थाश्रम (ही) सब से श्रेष्ठ ठहरा ॥ ७८ ॥

स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ७९ ॥

इसलिये इस लोक में विषय भोग आदि और परलोक में स्वर्ग सुख की इच्छा करने वाले को गृहस्थाश्रम का अवश्य सेवन करना चाहिये जो कि लंपटता के कारण दुर्बलेन्द्रियों पुरुषों से स्वीकार नहीं किया जा सकता ॥ ७९ ॥

ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ॥
आशासते कुटम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥ ८० ॥

ऋषि, पितर, देवता, जीव और अतिथि गृहस्थ ही की आशा रखते हैं इस लिये जानकार को गृहस्थाश्रम का स्वीकार अवश्य करना चाहिये ॥ ८० ॥

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्, होमैर्देवान्, यथाविधि ॥
पितॄन् श्राद्धैश्च नानान्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥८१॥

गृहस्थ को ऋषियों का वेद के अध्ययन और अध्यापन से, देवताओं का होम से, पितरों का श्राद्धों में अनेक प्रकार के अन्नदान से, और जीवों का बलिकर्म से सत्कार करना चाहिये ॥ ८१ ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ॥
पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ८२ ॥

पितरों की तृप्ति चाहने वाले गृहस्थ को तिल, व्रीहि, यव, जल, दूध, मूल या फलों से नित्य श्राद्ध करना चाहिये ॥ ८२ ॥

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थं पाञ्चयज्ञिके ॥
न चैवात्राशयेत् किञ्चिद् वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥८३॥
अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ॥
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च ॥८४॥
कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च ॥
सह द्यावा पृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥ ८५ ॥

पञ्च महायज्ञों में पितृयज्ञ (नित्यश्राद्ध) के लिये एक तो भी ब्राह्मण खिलाना चाहिये, और वैश्वदेव के लिये ब्राह्मण को कुछ भी न खिलावे किन्तु गृह्यअग्नि में पाक किये हुये अन्न से अग्नि, सोम, अग्नीषोम, विश्वेदेव, धन्वन्तरि, कुहू, अनुमति, प्रजापति, द्यावापृथिवी आदि, और सबके अन्त में स्विष्टकृत् इन देवताओं का नित्य होम करना चाहिये ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

एवं सम्यग् हविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ॥
इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥८६ ॥

इस भाँति उत्तम रीति से वैश्वदेव होम करने पर पूर्वदिशा में इन्द्र और उसके अनुचर, दक्षिणदिशा में यम और उसके अनुचर, पश्चिमदिशा में वरुण और उसके अनुचर, और उत्तरदिशा में सोम और उसके अनुचरों को अन्न आदि से बलिदान करे ॥ ८६ ॥

मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि ॥
वनस्पतिभ्य इत्येवं मुशलोलूखले हरेत् ॥ ८७ ॥

द्वार देश में वायु, जल में जलदेवता, और ऊखल-मूसल जहां रक्खे जाते हों वहां वनस्पति देवताओं को बलिदान करे ॥ ८७ ॥

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद् भद्रकाल्यै च पादतः ॥
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥८६॥

ईशान दिशा में श्री, निर्ऋति दिशा में भद्रकाली, और मध्यदेश में ब्रह्मा और वास्तोष्पति को बलिदान करे ॥ ८६ ॥

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ॥
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥६०॥

यदि दिन में बलिहरण (भूतयज्ञ) किया जाय तो विश्वेदेव और दिन में संचार करने वाली देवताओं के आस्मान (अन्तरिक्ष) में और रात्रि में विश्वेदेव और रात्रिचर देवताओं के उद्देश्य से, अन्तरिक्ष (आस्मान) में बलि फेंकना चाहिये ॥ ६० ॥

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ॥
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥ ६१ ॥

सर्वात्मभूति देवता को घर के ऊपर (अर्थात् अगासी पर) बलि दे और अवशिष्ट सब अन्न का पितरों को दक्षिण दिशा में बलि दे दे ॥ ६१ ॥

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ॥
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥ ६२ ॥

फिर दूसरा अन्न आदि हवि लेकर कुत्ते, पतित, चाण्डाल, लूले, लँगड़े आदि, काक, और कृमि-कीटों के लिये जमीन पर धीरे २ बलि देना चाहिये ॥ ६२ ॥

एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ॥
स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्ति पथर्जुना ॥ ६३ ॥

इस प्रकार से जो द्विजाति सब भूतों को प्रतिदिन तृप्त करता है उसको ऋजु (सीधे) मार्ग से प्रकाशमय शाश्वत ब्रह्मस्थान प्राप्त होता है (अर्थात् मोक्ष मिलता है) ॥ ६३ ॥

कृत्वैतद् बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ॥

भिक्षां च भिक्षवे दद्याद् विधिवद् ब्रह्मचारिणे ॥९४॥

इस भाँति बलिहरण (भूतयज्ञ) करने पर पश्चात् अतिथि को अपने पहिले भोजन करावे, और संन्यासी तथा ब्रह्मचारी को भिक्षा दे ॥९४॥

यत् पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद् गुरोः ॥
तत् पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥९५॥

गुरु को यथाविधि गोदान करने से शिष्य को जो उत्तम फल मिलता है, भिक्षा देने से वही फल गृहस्थ भी पाता है ॥ ९५ ॥

भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥
वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥

गृहस्थ शक्ति न होने पर भी थोड़ा तो भी अन्न और जल किसी अच्छे वेदशास्त्र जाननेवाले सत्पात्र ब्राह्मण को अवश्य दिया करे ॥ ९६ ॥

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ॥
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥ ९७ ॥

देवता और पितरों की तृप्ति के उद्देश्य से मूर्ख और निस्तेज ब्राह्मणों को जो कुछ दिया जाता है, उसका फल दाताओं को कुछ भी नहीं होता किन्तु सब व्यर्थ हो जाता है, इसलिये कुपात्र को दान न देना चाहिये ॥ ९७ ॥

विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ॥
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥९८॥

विद्वान् और तपस्वी ब्राह्मणों के मुखाग्नि में होम होने से (अर्थात् सत्पात्रों को दान देने से) बड़ा भारी भी कष्ट या पाप दूर होता है ॥ ९८ ॥

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥

अपने घर जो अतिथि अपने आप आजाय तो उसे बैठने के लिये आसन, जल और अन्न शक्ति के अनुसार सत्कार पूर्वक अवश्य देना चाहिये ॥ ९९ ॥

शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ॥

सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥ १०० ॥

जिसके यहां अतिथि का सत्कार नहीं होता वह चाहे पञ्चाग्नियों की सेवा करता हुआ शिलोञ्छवृत्ति से भी अपना जीवन क्यों न व्यतीत करता हो, उसका सब सुकृत वह अतिथि ले लेता है अर्थात् अत्यन्त दरिद्र होने पर भी अतिथि का कुछ न कुछ सत्कार अवश्य करना ही चाहिये ॥ १०० ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ॥
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥१०१॥

तृण (चटाई, कुशासन आदि), विश्रान्ति के लिये स्थान, जल और मधुर भाषण, इनका तो कम से कम किसी के यहां अभाव नहीं रहता है ॥ १०१ ॥

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ॥
अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते ॥१०२॥

एक रात अपने यहां रहने वाले ब्राह्मण को अतिथि समझना चाहिये, क्योंकि, वह अपने यहां बराबर नहीं रहता ॥ १०२ ॥

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा ॥
उपस्थितं गृहे विद्याद् भार्या यत्राग्नयोऽपि वा ॥१०३॥

जो ब्राह्मण अपने ही गाँव में रहता हो, अपनी बातों में दूसरों को लुभा कर फँसाता हो, या जिसके घर पर भार्या और अग्नि न हों (अर्थात् अकेला ही हो), उसे भोजन के समय उपस्थित होने पर भी अतिथि न समझना चाहिये (अर्थात् अतिथि सत्कार न करना चाहिये) ॥ १०३ ॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ॥
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नाददायिनाम् ॥१०४॥

जो अनजान गृहस्थ लोभ से दूसरों के ही घर भोजन किया करते हैं वे दूसरे जन्म में अन्नदाताओं के घर पशु होते हैं ॥ १०४ ॥

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ॥
काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसन् ॥१०५॥

सूर्य रहते २ सायंकाल में शाम के भोजन के समय या भोजनोत्तर भी आया हुआ अतिथि गृहस्थ के घर विना भोजन किये न रहने पावे (अर्थात् उस समय भी उसे खिलाना चाहिये ॥ १०५ ॥

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम् ॥ १०६ ॥

विना अतिथि को खिलाये वह अन्न गृहस्थ को न खाना चाहिये। अतिथि सत्कार से धन और यश मिलता है, तथा आयुवृद्धि होती है, और मरने पर स्वर्ग प्राप्ति होती है ॥ १०६ ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ॥
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्, हीने हीनं, समे समम् ॥ १०७ ॥

जिस प्रकार के अतिथि अपने यहाँ आवें उनकी योग्यता के अनुसार ही आसन, रहने को स्थान, बिस्तर, साथ २ जाना, आना और खिदमत (सेवा) उत्तम, मध्यम, अधम होने चाहिये ॥ १०७ ॥

वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् ॥
तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ॥ १०८ ॥

वैश्वदेव बलिहरण और अतिथिभोजन होने पर यदि दूसरा कोई आजाय तो गृहस्थ को उसे भी अपनी शक्ति के अनुसार पुनः पाक बना कर खिलाना चाहिये ॥ १०८ ॥

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् ॥
भोजनार्थं हि ते शंसन् वान्ताशीत्युच्यते बुधैः ॥१०९॥

ब्राह्मण को अपने घर भोजन के लिये अपने ही कुल के और गोती न बुलाने चाहिये, क्योंकि, अपने कुल के या गोतियों को बुलाने वाले को लोग 'वान्ताशी' (अर्थात् वमन किये हुये अन्न का भक्षक) कहते हैं ॥ १०९ ॥

न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते ॥
वैश्यशूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गुरुरेव च ॥ ११० ॥

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मित्र, सम्बन्धी और गुरु ये ब्राह्मण के अतिथि ना

हो सकते, तथा क्षत्रिय के वैश्य, शूद्र, मित्र आदि, और वैश्य के शूद्र आदि अतिथि नहीं हो सकते ॥ ११०॥

यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् ॥
भुक्तवत्सूक्तविप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥ १११ ॥

यदि ब्राह्मण के घर पर अतिथि के रूप से क्षत्रिय आजाय तो ब्राह्मण अतिथियों को खिलाने पर उसे भी पेट भर खिला दे ॥ १११ ॥

वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटम्बेऽतिथिधर्मिणौ ॥
भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ॥ ११२ ॥

यदि वैश्य और शूद्र भी ब्राह्मण के घर पर अतिथि रूप से आजावें तो उन्हें भी सत्कार कर अपने नौकरों के साथ भोजन करावे ॥ ११२ ॥

इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् ॥
सत्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥११३॥

इनके अतिरिक्त प्रेम पूर्वक आये हुये अपने मित्रों को अपने साथ भोजन करावे ॥ ११३ ॥

सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः ॥
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥११४॥

विवाहित, कन्या, रोगी और गर्भिणी स्त्रियों को बिना किसी संकोच के अतिथियों के पहिले ही भोजन करा देवे ॥ ११४ ॥

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुङ्क्ते विचक्षणः ॥
स भुञ्जानो न जानाति श्वगृद्ध्रैर्जग्धिमात्मनः॥११५॥

यदि बुद्धिमान् लोग इन लोगों को बिना भोजन कराये पहिले अपने ही खा लेते हैं तो वे नहीं जान सकते कि मरने के बाद उनका मांस कुत्ता खायगा या गिद्ध ? ॥ ११५ ॥

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि ॥

भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥ ११६ ॥

ब्राह्मण, अपने जातिसम्बन्धी, और नौकरों के भोजन करने बाद बचा हुआ अन्न स्त्री और पुरुष को खाना चाहिये ॥ ११६ ॥

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्याश्च देवताः ॥
पूजयित्वा ततः पश्चाद् गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥११७॥

देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर, और गृहदेवताओं के पूजन करने बाद गृहस्थ भोजन करे ॥ ११७ ॥

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ॥
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥ ११८ ॥

जो मनुष्य केवल अपने ही लिये पकाता है वह केवल पाप ही खाता है। इस लिये पञ्चमहायज्ञ करने के बादही भोजन करना चाहिये ॥ ११८ ॥

राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान् ॥
अर्हयेन्मधुपर्केण परिसम्वत्सरात्पुनः ॥ ११९ ॥

राजा, ऋत्विक्, स्नातक, गुरु, जामाता, श्वशुर और मामा; इनकी मधुपर्क से पूजा साल २ के बाद फिर करे ॥ ११९ ॥

राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ ॥
मधुपर्केण संपूज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः ॥ १२० ॥

राजा और स्नातक (श्रोत्रिय) की मधुपर्क से पूजा यज्ञ में ही करनी चाहिये ॥ १२० ॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ॥
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातर्विधीयते ॥ १२१ ॥

पत्नी सायं काल में सिद्ध अन्न का बलिहरण मन्त्र वर्जित करे, क्योंकि वैश्वदेव सायं और प्रातः दोनों समय करना चाहिये ॥ १२१ ॥

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् ॥

पिन्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥१२२॥

अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रतिमास अमावास्या में पहिले पितृयज्ञ करके फिर पिन्डान्वाहार्यक श्राद्ध किया करे ॥ १२२ ॥

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः ॥
तच्चामिषेण कर्तव्यं प्रशस्तेन समं ततः ॥ १२३ ॥

पितरों का जो मासिक श्राद्ध है, उसे बुद्धि मान अन्वाहार्य कहते हैं, उसे उत्तम मांस से पूरी तयारी के साथ करना चाहिये ॥ १२३ ॥

तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः ॥
यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १२४ ॥

उसमें जैसे और जितने ब्राह्मण जिन अन्नों से भोजन कराने चाहिये, और जिनका वर्जन करना चाहिये वह सब आपसे पूर्णतया बतलाता हूँ ॥ १२४ ॥

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्ज्येत विस्तरे ॥ १२५ ॥

दो (ब्राह्मण) देवताओं के और तीन पितरों के उद्देश्य से या दोनों तरफ एक एक ही खिलावे, चाहे बड़ा धनी भी हो, इससे अधिक विस्तार में न करे॥१२५॥

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदः ॥
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥१२६॥

विस्तार में करने से (निमन्त्रितों का) सत्कार, (शास्त्रोक्त) स्थान, समय, शुद्धि, और अच्छे ब्राह्मणों का मिलना, इनमें हानि पहुंचती है, इसलिये विस्तार न करना चाहिये ॥ १२६ ॥

प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये ॥
तस्मिन्युक्तस्यैति नित्यं प्रेतकृत्यैव लौकिकी ॥ १२७॥

अमावास्या के दिन का कर्म पितृकर्म प्रसिद्ध है, उसे करने से पित्र्यकर्म सिद्ध होता है ॥ १२७ ॥

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः ॥

अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥ १२८ ॥

दाता को चाहिये, कि देव और पितरों के लिये जो अन्न है वह श्रोत्रिय को ही दे, जो पूज्यतम ब्राह्मण को दिया जाय उससे बड़ा फल होता है ॥ १२८ ॥

एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ॥
पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान् बहूनपि ॥ १२९ ॥

एक एक भी विद्वान ब्राह्मण दैव और पितृस्थान में भोजन कराने से जो फल होता है वह वेद के न जानने वाले बहुतों को भी भोजन कराने से नहीं होता ॥ १२९ ॥

दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥१३०॥

वेद पारंगत ब्राह्मण की दूर से ही परीक्षा करे वह दैव-पित्र्य अन्नों का पात्र है। दान देने में वह अतिथि कहा है ॥ १३० ॥

सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ।
एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः ॥ १३१ ॥

वेद न जानने वाले दस लक्ष भी जिस (श्राद्ध) में खाते हैं वहां, वेद जानने वाला केवल एकही धर्म से उन सबकी योग्यता रखता है ॥ १३१ ॥

ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च ॥
न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुध्यतः ॥ १३२ ॥

अच्छा विद्वान् ब्राह्मण श्राद्ध में खिलाना चाहिये, क्योंकि, लोहू में भरे दोनों हाथ लोहू से ही शुद्ध नहीं होते हैं (किन्तु जल से) ॥ १३२ ॥

यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान् ॥ १३३ ॥

जिसके घर हव्य कव्यों में मूर्ख ब्राह्मण जितने ग्रास खाता है, उतने ही 'शूलर्ष्टि' नामक तप्त लोह शस्त्र मरने पर उसको मुख में धारण करना पड़ता है ॥ १३३ ॥

ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठास्तथाऽपरे ॥
तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथाऽपरे ॥ १३४ ॥

कुछ ब्राह्मण ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ, ज्ञान और तप उभयनिष्ठ; अथवा कर्मनिष्ठ होते हैं ॥ १३४ ॥

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः ॥
हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥ १३५ ॥

श्राद्ध में ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मण खिलाने का ही उद्योग करना चाहिये, और दैव कर्म में पहिले कहे हुये ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ, ज्ञानतपउभयनिष्ठ और कर्मनिष्ठ; इन चारों में से जो मिल जॉय, उसे खिलाया जा सकता है ॥ १३५ ॥

अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः ॥
अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात् पिता स्याद्वेदपारगः ॥१३६॥
ज्यायांसमनयोर्विद्याद् यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ॥
मन्त्रसंपूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति ॥ १३७ ॥

जिसका बाप मूर्ख हो और वह स्वयं विद्वान् हो, या वह स्वयं मूर्ख है परंतु उसका बाप विद्वान् रहा हो, इन दो में वही श्रेष्ठ है, जिसका बाप विद्वान् हो परंतु वसन्त पूजा में स्वयं विद्वान् जो है उसीका सत्कार हो सकता है ॥१३६॥१३७॥

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ॥
नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद् द्विजम्॥१३८॥

श्राद्ध में अपना मित्र खिलाना न चाहिये, उसकी मैत्री संपादन करनी हो तो वह दूसरा धन उसे दे सकता है। श्राद्ध में उसी ब्राह्मण को खिलावे, जिसको कि, वह अपना मित्र या शत्रु न समझता हो ॥ १३८ ॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ॥
तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च ॥१३९॥

श्राद्ध और दैवकर्मों में जिसके घर मित्र ही खाया करते हैं, उसको उन दैव श्राद्ध कर्मों का फल कुछ भी नहीं मिलता ॥ १३९ ॥

यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः ॥

स स्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः ॥१४०॥
संभोजनी साऽभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः ॥
इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि ॥ १४१ ॥

जो मनुष्य अज्ञानवश श्राद्ध में खिलाकर मैत्री संपादन करता है उस श्राद्ध से मैत्री करने वाले अधम ब्राह्मण को स्वर्ग लोक नहीं प्राप्त होता। क्योंकि, उस भोज को अच्छे ब्राह्मण 'पैशाच भोज' 'पिशाचों का भोजन' कहते हैं, और वह इसी लोक में मैत्री फल देता है, परलोक में फल नहीं दे सकता, जैसे अन्धी गाय एक घर से दूसरे घर नहीं जा सकती ॥१४०॥१४१॥

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ॥
तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥ १४२ ॥

जैसे ऊपर खेत में बीज बोने से कुछ भी फल बोने वाले को नहीं मिलता वैसे ही मूर्ख खिलाने से दाता को कुछ भी फल नहीं होता ॥ १४२ ॥

दातॄन् प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः ॥
विदुषे दक्षिणां दत्त्वा विधिवत् प्रेत्य चेह च ॥ १४३ ॥

विद्वान् को दान देने से दाता और प्रतिग्रहीता, दोनों ऐहिक व पारलौकिक फल पाते हैं ॥ १४३ ॥

कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं, नाभिरूपमपि त्वरिम् ॥
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥ १४४ ॥

विद्वान् ब्राह्मण न मिले तो श्राद्ध में मित्र खिलाना अच्छा, परन्तु शत्रु खिलाना अच्छा नहीं, चाहे वह विद्वान् भी क्यों न हो, क्योंकि, शत्रु ने खाया हुआ हवि निष्फल हो जाता है ॥ १४४ ॥

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् ॥
शाखान्तगमथाध्वर्युं, छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥१४५॥

समग्र वेदाध्यायी ऋग्वेदी, शाखामात्र पढ़े हुये यजुर्वेदी, और सम्पूर्ण वेद पढ़े हुये सामवेदी ब्राह्मण को श्राद्ध में खिलावे ॥ १४५ ॥

एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ॥
पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥१४६॥

इन तीन कहे हुये ब्राह्मणों में से एक ब्राह्मण जिसके घर श्राद्ध में भोजन खाता है उसके सात पुश्त के पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥ १४६ ॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ॥
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ १४७ ॥
मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ॥
दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥१४८॥

जिससे अपना किसी प्रकार का सम्बन्ध न हो ऐसे ही पात्र को श्राद्ध आदि में भोजन कराना मुख्य पक्ष है, और यदि वैसा न मिले तो नाना, मामा, भान्जा, श्वशुर, गुरु, नाती, दमाद, मवसिया भाई, ममेरा भाई, फुफेरा भाई, ऋत्विक् (जो अपने यहाँ सदा होम आदि कराता हो), और याज्य (जिसके यहाँ अपने होम आदि कराते हों), इनमें से किसी को भोजन करावे, परंतु यह गौण पक्ष है ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥
पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ १४९ ॥

देवताओं के उद्देश्य से किये जानेवाले कर्म में ब्राह्मण की विशेष परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है, परंतु, श्राद्ध में अवश्य परीक्षा करही ब्राह्मण निमन्त्रित करना चाहिये ॥ १४९ ॥

ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ॥
तान् हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान् मनुरब्रवीत् ॥ १५० ॥

जो चोर, पतित, नपुंसक और नास्तिक हों वे श्राद्ध आदि के योग्य नहीं हैं ऐसा मनु कहते हैं ॥ १५० ॥

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा ॥

याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ॥१५१॥

जिस ब्राह्मण ने जटा धारण की हो, वेद न पढ़नेवाले मूर्ख, कमजोर, धूर्त और कम्पनियों के याचक, इन्हें श्राद्ध में भोजन न करावे ॥१५१॥

चिकित्सकान् देवलकान् मांसविक्रयिणस्तथा ॥
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥१५२॥

वैद्य, पुजारी, मांसविक्रेता, और बनियाई वृत्ति अर्थात् रोज़गार करनेवाले, इन्हें भी श्राद्धश्रादि में बुलाना न चाहिये ॥ १५२ ॥

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः ॥
प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव, त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा ॥ १५३ ॥
यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः ॥
ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥ १५४ ॥
कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ॥
पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ १५५ ॥
भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ॥
शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ॥ १५६ ॥
अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा॥
ब्राह्मैर्यौनैश्च सम्बन्धैर्संयोगं पतितैर्गतः ॥ १५७ ॥
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ॥
समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥ १५८ ॥
पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ॥
पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥ १५९ ॥

धनुःशराणां कर्ता च यश्चाग्रेदिधिषूपतिः ॥
मित्रध्रुग् द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥
भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा ॥
उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥ १६१ ॥
हस्तिगोऽश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ॥
पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥ १६२ ॥
स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः ॥
गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च ॥ १६३ ॥
श्वक्रीड़ी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च ॥
हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥ १६४ ॥
आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा ॥
कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥ १६५ ॥
औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ॥
प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ १६६ ॥

गांव का दूत, राजा का दूत, जिसके नाखून बिगड़े हों, जिसके काले दांत हों, गुरु के विरुद्ध काम करनेवाला, आहित अग्नियों को त्यागनेवाला, ब्याज बट्टा करनेवाला, क्षयरोगी, गाय भैंस पाल कर उनका रोज़गार करनेवाला, ज्येष्ठ भ्राता के पहिले अपना विवाह करलेनेवाला, किसी देवता आदि को न माननेवाला, ब्रह्मद्वेषी, जिसके पहिले छोटे भ्राता का विवाह हुआ हो, दल (कम्पनी) में रहनेवाला, नाँचनेवाला, परस्त्री के कारण जिसका ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट हुआ हो, शूद्रा (सुरैतिन) रखनेवाला, पुनर्विवाहिता स्त्री से उत्पन्न, काना, जिसके घर जार आता हो, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, वेतन देकर पढ़नेवाला, शूद्र से पढ़नेवाला; शूद्र को पढ़ानेवाला, गाली-गोरा करनेवाला, कुण्ड (पति

रहते जार से उत्पन्न), गोलक (पति मरने पर जार से उत्पन्न), बिना किसी कारण अपने माता पिता, और गुरु को त्यागनेवाला, पतितों के साथ पठन पाठन या विवाह आदि सम्बन्ध करनेवाला, घर में आग लगानेवाला, किसी को जहर देनेवाला, सदा कुण्ड या गोलक ही का अन्न खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, समुद्रगमन (अर्थात् परदेशगमन) करनेवाला, दूसरों की स्तुति से जीवन करनेवाला, तेल का रोजगारी, झूठी गवाही करनेवाला, अपने मा बाप से लड़नेवाला, धूर्त, मद्यपान करनेवाला, कुष्ठी, जिसपर किसी पातक का आरोप हो, दम्भ दिखानेवाला, दूध व घी बेचनेवाला, धनु और बाण बनानेवाला, बड़ी बहिन के पहिले छोटी से विवाह करनेवाला, दोस्तों से दुश्मनी करनेवाला, जुआरी, पुत्र से पढ़नेवाला, जिसको मिरगी आती हो, जिसे गण्डमाला हुई हो, श्वेतकुष्ठवाला, दुष्ट, पागल, अन्धा, वेदनिन्दक, हाथी साँड़ घोड़ा और ऊँट का दमन करनेवाला अर्थात् पीलवानी गाड़ीवानी सहीसी आदि करनेवाला, ज्योतिषी, लाल बुलबुल आदि रखनेवाला, लड़ाई की कवायद सिखानेवाला, नहर खोदनेवाला, बाँध बाँधनेवाला, घर आदि बनानेवाला कारीगर, दूत, किसी से द्रव्य लेकर पेड़ लगानेवाला, कुत्ते पालनेवाला, बाज पक्षी के क्रयविक्रय से जीवन करनेवाला, किसी की कन्या को पथ लगानेवाला, हिंसा करनेवाला, शूद्र की वृत्ति करनेवाला, सङ्घ का याग करानेवाला, आचारहीन, नपुंसक, भिखमंगा, खेती करनेवाला, जिसको पील पैर हुआ हो, निन्द्य, मेषपाल, महिषपाल, पुनर्विवाह करनेवाला और मुर्देफरोस, इन्हे भी श्राद्ध में बुलाना न चाहिये ॥ १५३–१६६ ॥

एतान् विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान् द्विजाधमान्॥
द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ॥ १६७ ॥

जो चाल चलन में खराब होने से अच्छे लोगों के साथ बैठने लायक नहीं हैं ऐसे ऊपर कहे हुये नीच ब्राह्मणों को विद्वान् अपने यहाँ दैव और पित्र्य कर्म में कभी न बुलावे ॥ १६७ ॥

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ॥
तस्मै हव्यं न दातव्यं, न हि भस्मनि हूयते ॥ १६८ ॥

न पढ़नेवाला ब्राह्मण फूस की अग्नि के समान अपने आप निस्तेज हो जाता है इस लिये उसे भोजन कराना न चाहिये, क्योंकि, भस्म में किसी का होम नहीं किया जा सकता है ॥ १६८ ॥

अपाङ्क्तदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः ॥
दैवे हविषि पित्र्ये वा तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १६९ ॥

दैव और पित्र्य कर्म में अपात्र को दान देने से जो अनिष्ट फल होता है वह सब मैं कहता हूँ ॥ १६९ ॥

अव्रतैर्यद् द्विजैर्भुक्तं परिवेत्त्रादिभिस्तथा ॥
अपाङ्क्तेयैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ १७० ॥

वेदाध्ययन के लिये ब्रह्मचर्यव्रत जिन्होंने धारण न किया हो, बड़े भ्राता के पहिले अपना विवाह करलेनेवाले, और दूसरे ऐसे ही अपात्र जो हों, वे जो कुछ खाते हैं उसे राक्षस लोगों से खाने के समान जानना चाहिये ॥ १७० ॥

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥
परिवेत्ता स विज्ञेयः, परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ १७१ ॥

जो ज्येष्ठ भ्राता के पहिले अपना विवाह या अग्निहोत्र करता है वह 'परिवेत्ता', और ज्येष्ठ भ्राता 'परिवित्ति' होता है ॥ १७१ ॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते ॥
सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ १७२ ॥

परिवित्ति, परिवेत्ता, वह कन्या जिस के विवाह होने से परिवेदन दोष उत्पन्न हुआ हो, उस कन्या का दाता और उस विवाह को कराने वाला कर्मकाण्डी, ऐसे ये पाँचों नरक में जाते हैं ॥ १७२ ॥

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ॥
धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥ १७३ ॥

अपने भ्राता के मर जाने पर उसकी स्त्री से सगाई होने पर भी कामवश होकर उस भौजाई से आसक्त होने वाला 'दिधिषूपति' होता है ॥ १७३ ॥

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ ॥
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः ॥१७४॥

पति जीवित रहते पराई स्त्री से उत्पन्न पुत्र 'कुण्ड' और पति मरने पर पराई स्त्री से उत्पन्न पुत्र 'गोलक' होता है ॥ १७४ ॥

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च ॥
दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥ १७५॥

पराई स्त्री से पैदा हुये कुण्ड और गोलक आदि प्राणियों से खाया अन्न दाताओं की हानि करता है ॥ १७५ ॥

अपाङ्क्त्यो यावतः पाङ्क्त्यान् भुञ्जानाननुपश्यति ॥
तावतां न फलं तत्र दाता प्राप्नोति बालिशः ॥१७६॥

पक्तिबाह्य (अर्थात् अपात्र) अपनी पंक्ति में बैठ कर भोजन करने वाले जितनों को देखता है उन सब को खिलाने का फल दाता को नहीं मिलता ॥१७६॥

वीक्ष्यान्धो नवतेः, काणः, षष्टेः, श्वित्री शतस्य तु ॥
पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥ १७७ ॥

अन्धे को भोजन कराने से ९०, काने को ६०, भूरे को १०० और कोढ़ी को १००० को भोजन कराने का फल नष्ट होता है ॥ १७७ ॥

यावतः संस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणान् शूद्रयाजकः ॥
तावतां न भवेद्दातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥ १७८ ॥

शूद्र का याग करने वाले को भोजन कराने से उसकी पंक्ति में बैठ कर जितने ब्राह्मण भोजन कर सकते हों उनके भोजन कराने का फल दाता को नहीं मिलता ॥ १७८ ॥

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात् कृत्वा प्रतिग्रहम् ॥

विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥ १७६ ॥

अच्छा वेद पढ़ा हुआ विद्वान् ब्राह्मण भी यदि शूद्र से याग कराने वाले ब्राह्मण से लोभ वशात् कुछ ले ले तो वह भी जल में कच्चे घड़े के समान थोड़ेही काल में निस्तेज हो ज.त. है ॥ १७६ ॥

सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम् ॥
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वाधुषौ ॥ १८० ॥

दाता दूसरे जन्म में सोम रस बेचने वाले को दान देने से विष्ठाभोजी और वैद्य को देने से पीव और रक्त भोजी होता है। पुजारी या ब्याज बट्टा करने वाले को देने से दाता का वह दान निष्फल हो जाता है ॥ १८० ॥

यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद् भवेत् ॥
भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ १८१ ॥

बनियाई वृत्ति करने वाले सगाई से उत्पन्न ब्राह्मण को जो कुछ दिया जाय उससे न तो इसी लोक में नाम होता है, न परलोक मिलता है किन्तु राखी में किये हुये होम के समान निष्फल हो जाता है ॥ १८१ ॥

इतरेषु त्वपाङ्क्त्येषु यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु ॥
मेदोऽसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ १८२॥

और दूसरे अन्य अपात्र ब्राह्मणों को अन्न देने से वह अन्न दाता के लिये मेद, रक्त, मांस, मज्जा, और अस्थि उत्पन्न करता है (अर्थात् वह दाता दूसरे जन्म में उस योनि में उत्पन्न होता है जहाँ उत्पन्न होने से मेद आदि खाया जाय ॥१८२॥

अपाङ्क्त्योपहता पङ्क्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः ॥
तन्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजाग्र्यान् पङ्क्तिपावनान् १८३

यदि ब्राह्मण पंक्ति अपात्र बैठने के कारण दूषित होजाय तो जिन ब्राह्मणों के बैठने से उसका दोष दूर हो जाता है उन पङ्क्ति के पावन करने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों को कहता हूं ॥ १८३ ॥

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ॥
श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥ १८४॥

चारो वेद पढ़े हुए, छओं वेदाङ्गों को जानने वाले, और जिनके पूर्व पुरुष बराबर विद्वान् ही होते चले आये हों, वे सब पङ्क्ति को पावन करने वाले होते हैं (अर्थात् पात्र हैं) ॥ १८४ ॥

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥
ब्रह्मदेयात्मसन्तानो ज्येष्ठसामग एव च ॥ १८५ ॥
वेदार्थवित् प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ॥
शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥१८६॥

त्रिणाचिकेत नामक वैदिकानुवाक पढ़ने व जानने वाला, अग्निहोत्री, प्रतिदिन त्रिसुपर्ण पढ़ने व जानने वाला, छओं वेदाङ्ग जाननेवाला, ब्राह्म विवाह से विधि युक्त ब्याही हुई स्त्रीका औरस पुत्र, ज्येष्ठ नामक साम का गान करने वाला, वेदार्थ का ज्ञाता और वक्ता, ब्रह्मचारी, एक हजार गोदान जिसने किया हो, और सौ वर्षका, ये सब ब्राह्मण पङ्क्तिपावन (अर्थात् दान के पात्र) हैं ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ॥
निमन्त्रयेत त्र्यवरान् सम्यग् विप्रान् यथोदितान् ॥१८७॥

श्राद्ध से पहिले दिन या उसी दिन पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त ब्राह्मण कम से कम श्राद्ध में भोजन के लिये बुलावे ॥ १८७ ॥

निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत् सदा ॥
न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥१८८॥

श्राद्ध में भोजनार्थ निमन्त्रण स्वीकार करने के बाद उस ब्राह्मण को नियम से रहना चाहिये और ब्रह्मयज्ञ के अतिरिक्त वेदाध्ययन भी न करना चाहिये, उसी प्रकार श्राद्ध करने वाले को भी नियम से रहना चाहिये व उसे वेदाध्ययन भी न करना चाहिये ॥ १८८ ॥

निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ॥
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ १८९ ॥

निमन्त्रण के बाद श्राद्धकर्ता के पितर उन ब्राह्मणों के पास रहते हैं, चलने पर उनके पीछे २ प्राण के समान चलते हैं, और बैठने पर उनके पास बैठ जाते हैं ॥ १८९ ॥

केतितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः ॥
कथंचिदप्यतिक्रामन पापः सूकरतां व्रजेत् ॥ १९० ॥

श्राद्ध में भोजनार्थ निमन्त्रण स्वीकार कर यदि किसी प्रकार वह उस श्राद्ध में न जाय तो वह ब्राह्मण उस पाप से दूसरे जन्म में सूअर होता है ॥ १९० ॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते ॥
दातुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ १९१ ॥

श्राद्ध में भोजनार्थ आमन्त्रण स्वीकार कर, ब्राह्मण यदि सुरैतिन के साथ विषयोपभोग करता है तो उसे श्राद्ध करनेवाले का सारा पाप लगता है ॥ १९१ ॥

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ॥
न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ १९२ ॥

पितर क्रोधरहित, शुद्ध, सदा ब्रह्मचर्य से रहनेवाले, लड़ाई झगड़ा न करने वाले, दया आदि गुणों से युक्त और अनादि देवता हैं, इसलिये श्राद्ध कर्ता और भोक्ता दोनों को ऐसा ही होना चाहिये ॥ १९२ ॥

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ॥
ये च यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान् निबोधत ॥ १९३ ॥

इन सब पितरों की उत्पत्ति जिससे होती है, और जिन २ नियमों से इनकी सेवा करनी पड़ती है उन सब को कहता हूँ ॥ १९३ ॥

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ॥

तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ १९४ ॥

हिरण्यगर्भ के पुत्र मनु भगवान्, उनके मरीचि आदि ऋषि जो पुत्र हैं, और उन सब ऋषियों के पुत्र पितर कहलाते हैं ॥ १९४ ॥

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ॥
अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः ॥१९५॥

विराट् के पुत्र सोमसद आदि साध्यो के पितर हैं, मरीचि ऋषि के पुत्र अग्निष्वात्त आदि देवताओं के पितर प्रसिद्ध हैं ॥ १९५ ॥

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥
सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ १९६ ॥

अत्रि ऋषि के पुत्र बर्हिषद आदि-दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग, राक्षस और सुपर्ण आदि किन्नर, इनके पितर हैं ॥ १९६ ॥

सोमपा नाम विप्राणां, क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥
वैश्यानामाज्यपा नाम, शूद्राणां तु सुकालिनः ॥१९७॥

ब्राह्मणों के पितर सोमप, क्षत्रियों के हविर्भुज, वैश्यों के आज्यप, और शूद्रों के सुकाली आदि हैं ॥ १९७ ॥

सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः ॥
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥ १९८ ॥

सोमप भृगु ऋषि के, हविर्भुज अङ्गिरा ऋषि के, आज्यप पुलस्त्य ऋषि के और सुकाली वसिष्ठ ऋषि के पुत्र हैं ॥ १९८ ॥

अग्निदग्धानग्निदग्धान् काव्यान् बर्हिषदस्तथा ॥
अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत्॥१९९॥

अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, भृगुपुत्र सोमप, बर्हिषद, अग्निष्वात्त और सौम्य इन्हें ब्राह्मणों के ही पितर समझना चाहिये ॥ १९९ ॥

य एते तु गणा मुख्याः पितॄणां परिकीर्तिताः ॥

तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ २०० ॥

पितरों के जो ये मुख्य २ गण कहे गये हैं इनके और भी पुत्र पौत्र अनन्त हैं॥२००॥

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः ॥
देवेभ्यस्तु जगत् सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ २०१ ॥

ऋषियों से पितर, पितरों से देवता और मनुष्य, और देवताओं से यह सब स्थावर जङ्गम जगत् क्रम से उत्पन्न है ॥ २०१ ॥

राजतैर्भाजनैरेषामथो वा राजतान्वितैः ॥
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २०२ ॥

इन कहे हुये पितरों को शुद्ध चान्दी के या मिलावटी चान्दी के पात्रों से यदि जल दिया जाय, तो, वह अक्षय रहता है ॥ २०२ ॥

दैवकार्याद् द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते ॥
दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम् ॥ २०३ ॥

ब्राह्मणों के लिये तो दैवकार्य से बढ़कर पितृकार्य है, क्यों कि, दैवकार्य श्राद्ध का पूर्वाङ्ग कहा गया है ॥ २०३ ॥

तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत् ॥
रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥ २०४ ॥

पितरों के कार्य की रक्षा करनेवाले देवस्थानीय ब्राह्मण को पहिले निमन्त्रित करे। क्योंकि रक्षक के बिना राक्षस श्राद्ध का नाश करते हैं ॥ २०४ ॥

दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् ॥
पित्राद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥२०५॥

दैवकर्म से प्रारम्भ कर दैव कर्म पर ही श्राद्ध समाप्त करे अर्थात् विश्वेदेव देवता का प्रथम आवाहन कर पितरों के विसर्जन के बाद विसर्जन करे। पितरों के कर्म से आरम्भ कर उन्हीं के कर्म पर श्राद्ध समाप्त करनेवाला मय अपने बालबच्चों के शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ २०५ ॥

शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत् ॥
दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ २०६ ॥

श्राद्ध के लिये स्थान गोबर से लीप कर शुद्ध, एकान्त में, और दक्षिण को तरफ नीचा करना चाहिये ॥ २०६ ॥

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि ॥
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ॥ २०७ ॥

स्वाभाविक पवित्र स्थान, नदियों के किनारे, या किसी एकान्त स्थान में श्राद्ध करने से पितर सदा सन्तुष्ट रहते हैं ॥ २०७ ॥

आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक् पृथक् ॥
उपस्पृष्टोदकान् सम्यग् विप्रांस्तानुपवेशयेत् ॥ २०८ ॥

पूर्वोक्त स्थान में अच्छी रीति से कुशासन विछाकर उनपर क्रम से हाथ पैर धोकर शुद्ध निमन्त्रित ब्राह्मण बैठाने चाहियें ॥ २०८ ॥

उपवेश्य तु तान् विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ॥
गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥ २०९ ॥

पवित्र ब्राह्मणों को आसन पर बैठाकर अच्छे २ सुगन्धयुक्त चन्दन और फूल मालाओं से देव और पितरों की क्रम से पूजा करनी चाहिये ॥ २०९ ॥

तेषामुदकमानीय सपवित्रांस्तिलानपि ॥
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥ २१० ॥

उन ब्राह्मणों को अर्घ्य, उदक, पवित्री, तिल आदि देने पर उनसे आज्ञा लेकर उन्हीं ब्राह्मणों के साथ अग्नौकरण (अर्थात् अग्नि में होम) करें ॥ २१० ॥

अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वाऽऽप्यायनमादितः ॥
हविर्दानेन विधिवत् पश्चात् संतर्पयेत् पितॄन् ॥ २११ ॥

अग्नि, सोम और यम को विधि पूर्वक होम से संतुष्ट कर पितृ स्थानीय ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ २११ ॥

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ॥
यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥ २१२ ॥

अग्नि न रहे तो ब्राह्मण के हाथ पर ही होम करे, क्यों कि, विद्वान् मन्त्रदर्शी ब्राह्मण अग्नि और ब्राह्मण को एक ही समझते हैं ॥ २१२ ॥

अक्रोधनान् सुप्रसादान् वदन्त्येतान् पुरातनान् ॥
लोकस्याप्यायने युक्ताञ्छ्राद्धदेवान् द्विजोत्तमान् ॥२१३॥

श्राद्ध में देवता तो ब्राह्मण हा हैं, जिन्हें कभी क्रोध न आता हो, चित्त सदा प्रसन्न रहता हो, लोक को सदा संतुष्ट करते हों, और अवस्था में अधिक ऐसे ब्राह्मण ही को तो श्राद्ध का देवता कहते हैं ॥ २१३ ॥

अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य विक्रमम् ॥
अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ २१४ ॥

अपसव्य होकर (अर्थात् दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत रख कर) अग्नि के चारो ओर उल्टा पानी फेर कर सब होम की क्रिया करे, फिर दाहिने हाथ से भूमि पर जल छिड़के ॥ २१४ ॥

त्रींस्तु तस्माद्धविःशेषात् पिण्डान् कृत्वा समाहितः ॥
औदकेनैव विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥ २१५ ॥

अग्नौकरण से बचे हुए अन्न के तीन पिण्ड बना कर जिस प्रकार प्रतिदिन तर्पण करते हों, उसी क्रम से दक्षिण दिशा की ओर मुख कर स्वस्थ-चित्त से पिण्डदान करें ॥ २१५ ॥

न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् ॥
तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥ २१६ ॥

पिण्डदान की विधि से उत्तम प्रकार पिता पितामह और प्रपितामहों को (हाथ से) पिण्ड देकर उस हाथ को जिन कुशों पर पिण्ड दिये हों, उन्हीं कुशों पर वृद्धप्रपितामह आदि तीन की तृप्ति के उद्देश्य से पोछे अर्थात् हाथ में लगे हुये लेप को छुड़ावे ॥ २१६ ॥

आचम्योदक् परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् ॥

षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात् पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥ २१७ ॥

फिर उत्तराभिमुख आचमन व तीन प्राणायाम कर 'वसन्ताय नमस्तुभ्यं' इस मन्त्र से छओ ऋतुओं को नमस्कार कर दक्षिणाभिमुख 'नमो वः पितरः' इस मन्त्र को कहते २ पिण्डों को (अर्थात् तत्स्थ पितरों को) नमस्कार करे॥२१७॥

उदकं निनयेच्छेपं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ॥

अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः॥२१८॥

पश्चात् पात्र में अवशिष्ट जो जल हो उसे पिण्डों पर धीरे २ समर्पण कर पिण्डदान के क्रम से पहिले दूसरे और तीसरे पिण्ड को सावधान चित्त से सूँघे ॥ २१८ ॥

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः ॥

तेनैव विप्रानासीनान् विधिवत् पूर्वमाशयेत् ॥ २१९ ॥

उन दिये हुये पिण्डों मेंसे थोड़ा भाग पितृस्थानीय ब्राह्मणों को भोजन के पहिले खिलावे ॥ २१९ ॥

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ॥

विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥ २२० ॥

पिता जीवित हो तो पितामह प्रपितामह वृद्धप्रपितामह की तृप्ति के उद्देश्य से श्राद्ध करे, या पितृस्थान में पिता को साक्षात् बैठाकर खिलावे (और अन्य दो स्थान में ब्राह्मण को खिलावे और दो ही पिण्ड भी दे) ॥ २२० ॥

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः ॥

पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत् प्रपितामहम् ॥ २२१ ॥

पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन् मनुः ॥

कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥ २२२ ॥

जिसका पिता मर गया हो और दादा (पितामह) जीवित रहा हो उसे अपने दादा (पितामह) की सम्मति से अपने पिता प्रपितामह और वृद्ध प्रपितामह के नाम से श्राद्ध करना चाहिये, या पितामह को साक्षात् उनके स्थान

में और अन्य दो स्थानों में दो ब्राह्मण बैठाकर श्राद्ध करना चाहिये ॥२२१॥२२२॥

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम् ॥
तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ॥ २२३ ॥

उन पितृस्थान में बैठे हुये ब्राह्मणों के हाथों पर कुशा का पवित्र (दो कुशा) और तिलोदक देकर पहिले कहे हुये उन २ पिण्डों के भाग उनके हस्त पर देना चाहिये ॥ २२३ ॥

पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्धितम् ॥
विप्रान्तिके पितॄन् ध्यायन् शनकैरुपनिक्षिपेत् ॥२२४॥

पश्चात् अपने हाथ के बनाये हुये पात्रों (पत्तलों) को अपने हाथ से उठाकर ब्राह्मणों के आगे पितरों का ध्यान करते हुये धीरे २ रखना चाहिये ॥ २२४ ॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते ॥
तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः ॥ २२५ ॥

जो अन्न आदि पाक वस्तुएँ दोनों हाथों से नहीं लाई जातीं उन्हें दुष्ट असुर छीन कर खा जाते हैं, (इसलिये पाक घर से सब पदार्थ दोनों हाथों से उठा कर ब्राह्मणों के समीप ले आना चाहिये) ॥ २२५ ॥

गुणांश्च सूपशाकाद्यान् पयो दधि घृतं मधु ॥
विन्यसेत् प्रयतः पूर्वं भूमावेव समाहितः ॥ २२६ ॥

तरकारियाँ, चटनी, दाल, शाक, दूध, दही, घी और सहद इत्यादि सब वस्तु पहिले स्वस्थ चित्त से ब्राह्मणों के समीप एकत्र करले ॥ २२६ ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ॥
हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च ॥ २२७ ॥

उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः ॥
परिवेषयेत प्रयतो गुणान् सर्वान् प्रचोदयन् ॥ २२८ ॥

लड्डू, खीर, अनेक प्रकार के मूल और फल, तथा उत्तमोत्तम मांस,

सुगन्धित जल आदि सब वस्तु धीरे २ एकत्र कर लेने पर स्वस्थ चित्त से एक एक के आम्ल, मधुर आदि गुण कह कह कर उन्हें क्रम से ब्राह्मणों के आगे पात्र पर परोसना चाहिये ॥ २२८ ॥

नास्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ॥
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् ॥ २२९ ॥
अस्रं गमयति प्रेतान् कोपोऽरीननृतं शुनः ॥
पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥ २३० ॥

परोसते समय कभी रोदन, क्रोध या असत्य भाषण न करना चाहिये, अन्न को पैर से न छूना चाहिये, और ऊँचे से परोसना भी न चाहिये, क्योंकि, वह अन्न रोदन करने से प्रेत पिशाचों को, क्रोध करने से शत्रुओं को, असत्यभाषण करने से कुत्तों को, पादस्पर्श करने से राक्षसों को और ऊँचे से परोसन से दुष्टों को मिलता है, (पितरों को नहीं मिलता) ॥ २२९ ॥ २३० ॥

यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः ॥
ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात् पितॄणामेतदीप्सितम् ॥२३१॥

बनी हुई वस्तुओं में से जो वस्तु ब्राह्मणों को अपेक्षित हो उसे बिना किसी मत्सर के उन्हें देनी चाहिये, और भोजन के समय परब्रह्म के विषय में कुछ चर्चा करनी चाहिये, क्योंकि पितरों को यही चर्चा प्रिय होती है ॥ २३१ ॥

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥२३२॥

श्राद्ध में भोजन के समय पितृसूक्त आदि वैदिक मन्त्र, धर्मशास्त्र, सौपर्ण मैत्रावरुण आदि आख्यान, महाभारत आदि इतिहास, भागवत आदि पुराण और श्रीसूक्त शिवसङ्कल्प आदि ब्राह्मणों से सुनाने चाहिये ॥ २३२ ॥

हर्षयेद् ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः ॥
अन्नाद्येनासकृच्चैतान् गुणैश्च परिचोदयेत् ॥ २३३ ॥

स्वयं सन्तुष्ट चित्त होकर मधुर भाषणादि से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे, और हर एक पदार्थ की पुनः पुनः प्रशंसा कर के धीरे धीरे ब्राह्मणों को खिलावे ॥ २३३ ॥

व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ॥
कुतपं चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥ २३४ ॥
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥
त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ २३५ ॥

चाहे नाती ब्रह्मचर्य आश्रम में भी क्यों न हो, उसे श्राद्ध में अवश्य भोजन करावे, ब्राह्मणों को बैठने के लिये गलीचा अवश्य दे, और ज़मीन पर तिल छोड़े, क्योंकि, श्राद्ध में नाती, गलीचा, और तिल ये तीन ही तो अत्यन्त पवित्र हैं। और शुद्धता, क्रोध न आने देना, और शीघ्रता न करना, इन तीनों की भी श्राद्ध में बड़ी प्रशंसा की गई है ॥ २३४ ॥ २३५ ॥

अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद् भुञ्जीरंस्ते च वाग्यताः ॥
न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् ॥ २३६ ॥

ब्राह्मणों को सब बनी हुईं गरमागरम चीजें चुपचाप बिना बोले ही भक्षण करनी चाहिये, और यजमान के यह पूछने पर भी कि पदार्थ कैसे स्वादिष्ट बने हैं ? कुछ कहना न चाहिये ॥ २३६ ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ॥
पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ २३७ ॥

जब तक अन्न गरम रहता है, ब्राह्मण बिना बोले खाते हैं, और पदार्थों की प्रशंसा नहीं की जाती, तभी तक वह पितरों को मिलता है ॥ २३७ ॥

यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद् भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ॥
सोपानत्कश्च यद् भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥२३८॥

माथे पर पगड़ी या साफा पहिने, दक्षिणाभिमुख और जूता पहिन कर जो खाया जाता है वह राक्षसों को पहुँचता है, (पितरों को नहीं) ॥ २३८ ॥

चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च ॥
रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ॥२३९॥

भोजन करते हुये ब्राह्मणों को चाण्डाल, सूअर, मुर्गा, कुत्ता, रजस्वला स्त्री, और नपुंसक मनुष्य देखने न पावें ॥ २३९ ॥

होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते ॥
दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम् ॥ २४० ॥

होम करते, दान देते या लेते, भोजन करते, दर्श पौर्णमास आदि दैव कर्म करते, और श्राद्ध करते समय यदि ब्राह्मणों को चाण्डाल आदि देख लें तो वह कर्म निष्फल हो जाता है ॥ २४० ॥

घ्राणेन सूकरो हन्ति, पक्षवातेन कुक्कुटः ॥
श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनावरवर्णजः ॥२४१॥

जिस अन्न को सूअर सूँघ ले, मुर्गे के पंखों की हवा लगे, कुत्ता देख ले, या चाण्डाल स्पर्श कर ले, उस अन्न से किया हुआ श्राद्ध विफल होता है ॥ २४१ ॥

खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि वा भवेत् ॥
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः ॥ २४२ ॥

लंगड़ा, काना, नौकर, और जिसे कोई अङ्ग कम या अधिक हो, इन्हें भी श्राद्ध करते समय वहाँ से हटा देना चाहिये ॥ २४२ ॥

ब्राह्मणं भिक्षुकं वाऽपि भोजनार्थमुपस्थितम् ॥
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥ २४३ ॥

यदि ब्राह्मण या संन्यासी अतिथि श्राद्ध में आजाय तो उनका भी श्राद्ध में ब्राह्मणों की आज्ञा से अन्न आदि देकर सत्कार कर सकते हैं ॥ २४३ ॥

सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा ॥
समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन् भुवि ॥ २४४ ॥

सब बनी हुई पाक की वस्तुओं को एक पात्र में लेकर उसमें जल भर कर ब्राह्मणों का भोजन होने पर उनके पात्र के आगे जमीन में कुशा पर 'विकिर' देना चाहिये ॥ २४४ ॥

असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ॥
उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ॥ २४५ ॥

मरने पर पातित्य आदि के कारण जिनको दाह संस्कार न हुआ हो और जिन्होंने बिना अपराध अपनी साध्वी स्त्रियों का त्याग किया हो ऐसे अपने कुल के दुष्ट मृत पुरुषों को कुशों पर दिया हुआ विकिर और ब्राह्मणों के पत्तलों पर बचा जूठा भाग मिलता है ॥ २४५ ॥

उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ॥
दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ २४६ ॥

श्राद्ध में जमीन पर पड़े हुए जूठे भाग पर सीधे २ नौकरों का भाग मन्वादि कहते हैं अर्थात् उसे नौकरों को देना चाहिये ॥ २४६ ॥

आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ॥
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ २४७ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य, इनके मरने पर जब तक उनका (१) सपिण्डन न हो तब तक उनके श्राद्ध में विश्वेदेव देवता के बिना ही केवल पितृस्थान में ब्राह्मणों को खिलावे और उसी एक का पिण्ड करे ॥ २४७ ॥

सहपिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः ॥
अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥ २४८ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य का विधियुक्त सपिण्डन होने पर पुत्रों को (२) पार्वणविधि से उनका श्राद्ध करना चाहिये ॥२४८॥

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ॥

---

(१) जिस श्राद्ध में मरे हुए का पिण्ड उसके तीन पितरों के पिण्ड में मिलाया जाता है उसे सपिण्डन कहते हैं। २ तीन पुरुषों के उद्देश्य से जिस श्राद्ध में तीन पिण्ड दिये जाते हैं उस श्राद्ध को पार्वण कहते हैं।

स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥ २४९ ॥

जो मूर्ख श्राद्ध होने के बाद श्राद्धका जूठा शूद्र को खाने के लिये देता है, वह 'कालसूत्र' नामक नरक में जाकर उलटा (नीचे मूड़ी ऊपर टाँग) टँगता है ॥ २४९ ॥

श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तदहर्योऽधिगच्छति ॥
तस्याः पुरीषे तन्मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ २५० ॥

जो ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन कर उसी दिन यदि स्त्री के साथ विषयोपभोग करता है, तो, उसके पितरों को एक महीने तक उसी के विष्ठा में वास करना पड़ता है ॥ २५० ॥

पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ॥
आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति ॥ २५१ ॥

ब्राह्मणों का भोजन हो जाने पर उन्हें 'खूब अच्छी तरह से तो आपने भोजन किया ?' ऐसा पूछने पर वे जब कहें कि 'हाँ, हम तृप्त हो गये' तब उनके हाथ धुला कर 'भो अभिरम्यताम्' 'महाराज ! अब आप अपने घर जा सकते हैं' ऐसा कह कर उन्हें जाने की सम्मति दे ॥ २५१ ॥

स्वधाऽस्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥
स्वधाकारः परा ह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ २५२ ॥

श्राद्ध करनेवाले यजमान की अपने २ घर जाने की संमति मिलने के बाद ब्राह्मण उसे 'स्वधाऽस्तु' 'तेरा कल्याण हो' ऐसा आशीर्वाद दें, क्योंकि श्राद्ध में 'स्वधा' शब्द ही सब से बढ़ कर आशीर्वाद होता है ॥ २५२ ॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ॥
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥ २५३ ॥

जब भोजन कर चुके हुये ब्राह्मणों से उनके भोजन से अवशिष्ट सब अन्न को कहना चाहिये और फिर वे ब्राह्मण उस अन्न को जो कुछ करने कहें वैसाही उस यजमान को करना चाहिये ॥ २५३ ॥

पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं, गोष्ठे तु सुश्रुतम् ॥
संपन्नमित्यभ्युदये, दैवे रुचितमित्यपि ॥ २५४ ॥

'प्रेम से तो खाया ?' ऐसा श्राद्ध में, 'भली भाँति तो सुना ?' ऐसा बात चीत में, 'ठीक तो हुआ ?' ऐसा मङ्गल कार्य में, और 'आपको पसन्द तो हुआ ?' ऐसा दैवकर्म में ब्राह्मणों से पूछना चाहिये ॥ २५४ ॥

अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसंपादनं तिलाः ॥
सृष्टिमृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥ २५५ ॥

दिन के पांच हिस्सों में से तीसरा हिस्सा, दर्भ, शुद्ध गृह, तिल, खूब परोसना, उत्तम पाक बनाना, और श्रेष्ठ (पंक्तिपावन पात्र) ब्राह्मण, ये श्राद्ध की सर्वोत्तम वस्तुएँ हैं ॥ २५५ ॥

दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः ॥
पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसंपदः ॥ २५६ ॥

दर्भों की पवित्री, दिन का पहिला हिस्सा, हविष्य अन्न (२५७) और पूर्व श्लोक में कहे हुये पवित्र गृह, ब्राह्मण, पाक, परिवेषण आदि, ये दैवकर्म की सर्वोत्तम वस्तुएँ हैं ॥ २५६ ॥

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ॥
अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥ २५७ ॥

बिना बोये ही जो अन्न आप से आप उत्पन्न होते हैं, साँवा, तिन्नी आदि, दूध, सोमरस, ताजा मांस, और जो कृति से न बनाये जाते हों ऐसे सैन्धव आदि नमक, ये ही तो स्वाभाविक हवि है ॥ २५७ ॥

विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः ॥
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् याचेतेमान् वरान् पितॄन् २५८

दातारो नोऽभिवर्धन्तां, वेदाः, सन्ततिरेव च ॥
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु धेयं च नोऽस्त्विति ॥ २५९ ॥

श्राद्ध के ब्राह्मण जब घर जाने को तैय्यार हों, तब दक्षिण दिशा की ओर

देखते सावधान चित्त से दूसरी कोई बात चीत न करते शुद्ध होकर उनसे ये वर मॉग ले, कि, हमारे दाता, वेद और सन्तति (बाल बच्चों) की बढती होती रहे, हमारी श्रद्धा कम न हो, और हमे दान देने के लिये द्रव्य बहुत रहे ॥ २५८ ॥ २५९ ॥

एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् ॥
गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ॥ २६० ॥

इस भाँति श्राद्ध कर पितरों से वरदान मॉगने के बाद उन पिण्डों को गौ, ब्राह्मण, या बकरे को खिलावे, अग्नि में जला दे, या जल में फेंक दे ॥ २६० ॥

पिण्डनिर्वपणं केचित् पुरस्तादेव कुर्वते ॥
वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥ २६१ ॥

कोई लोग ब्राह्मण भोजन के पहिले ही पिण्ड दान करते हैं, और उन पिण्डों को पक्षियों को खिलाते हैं, उनका अग्नि में दाह कर देते हैं, या जल में प्रक्षेप करते हैं ॥ २६१ ॥

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ॥
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात् सम्यक् सुतार्थिनी ॥ २६२ ॥

पति की सेवा ही जिसका सर्वोत्तम व्रत है ऐसी पतिव्रता स्त्री को यदि पुत्र की कामना हो तो वह भली भॉति पितरों के पिण्ड की पूजा कर उनमें से दूसरा अपने ससुर के उद्देश्य से दिया हुआ पिण्ड भक्षण करे ॥ २६२ ॥

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ॥
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्त्विकं धार्मिकं तथा ॥ २६३ ॥

उस पिण्ड के भक्षण करने से उस स्त्री को दीर्घायु, कीर्ति और बुद्धि से युक्त, धनी, सन्तति जिसे उत्पन्न होने वाली हो, सात्त्विक और धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न होता है ॥ २६३ ॥

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत् ॥
ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा बान्धवानपि भोजयेत् ॥ २६४ ॥

पिण्ड विसर्जन करने के बाद हाथ धोकर आचमन करे, और अपने सब गोत्रज और बन्धु बान्धवों को भोजन करावे ॥ २६४ ॥

उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ॥
ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ २६५ ॥

जब तक ब्राह्मण अपने २ घर न जाँय तब तक उच्छिष्ट (जूठे) पात्रों (पत्तलों) को न हटावे (अर्थात् उनके जाने के बाद जूठा निकाले) और फिर प्रतिदिन के पञ्चमहायज्ञ करे, यही तो धर्म है ॥ २६५ ॥

हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्याय कल्पते ॥
पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २६६ ॥

अब, जिस अन्न के भोजन कराने से पितरों को बहुत काल तक तृप्ति होती हैं उसे कहता हूं ॥ २६६ ॥

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा ॥
दत्तेन मासं तृप्यन्ति विधिवत् पितरो नृणाम् ॥ २६७ ॥

तिल, धान, जव, उड़द, जल, मूल, और फल को भलि भाँति भोजन कराने से मनुष्यों के पितर एक मास तक तृप्त रहते हैं ॥ २६७ ॥

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन, त्रीन् मासान् हारिणेन तु ॥
औरभ्रेणाऽथ चतुरः, शाकुनेनाथ पञ्च वै ॥ २६८ ॥
षण्मासान् छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै ॥
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु ॥ २६९ ॥
दश मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः ॥
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ॥ २७० ॥
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ॥
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ २७१ ॥

मत्स्य के मांस से दो मास, हिरन के मांस से तीन मास , मेढ़े के मांस से

चार मास, पक्षियों के मांस से पाँच मास, बकरे के मांस से छ मास, चितकबरे हिरन के मांस से सात मास, काले मृग के मांस से आठ मास, रुरु मृग (बारहसिंघा) के मांस से नव मांस, सूअर और भैंसे के मांस से दस मास, खरगोश और कछुए के मास से ग्यारह मास, गौ के दूध और खीर से एक वर्ष, और सफेद, और पुराने बकरे के मांस से बारह वर्ष तक पितर तृप्त रहते हैं॥२६८॥२६९॥२७०॥२७१॥

कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ॥
आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥२७२॥

करेमू का शाक कांटे दार (रोहू) मछली, गैंडा और लाल बकरे का मांस, शहद, और सब प्रकार के साँवा तिन्नी आदि ऋषियों के अन्न, इनसे सैकड़ों वर्ष तक पितर तृप्त रहते हैं ॥ २७२ ॥

यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् ॥
तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च ॥ २७३ ॥

वर्षा ऋतु (अर्थात् भाद्रपद कृष्णपक्ष) की त्रयोदशी मघा नक्षत्र से युक्त हो, तो उस दिन शहद से युक्त जो ही पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मण को खिलाया जाय उससे पितरों की सदा के लिये तृप्ति होती है ॥ २७३ ॥

अपि नः स कुले जायाद् यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ॥
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥२७४॥

क्योंकि, पितर सदा यह चाहते हैं कि हमारे कुल में ऐसा कोई पुरुष उत्पन्न हो, जो भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी और हस्तिच्छाय योग के दिन घी और शहद से मिश्रित खीर हमें अवश्य खिलाया करे ॥ २७४ ॥

यद् यद् ददाति विधिवत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥
तत्तत्पितृणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥ २७५ ॥

जो जो वस्तुएँ श्रद्धा पूर्वक भलीभाँति दी जाती हैं उन से पितृलोक में पितरों को सदा के लिये बहुत तृप्ति रहती है ॥ २७५ ॥

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥

श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ॥ २७६ ॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी छोड़ कर दशमी से अमावास्या तक की तिथियाँ श्राद्ध के लिये जितनी अच्छी हैं उतनी और कोई तिथियाँ अच्छी नहीं हैं॥२७६॥

युक्षु कुर्वन् दिनर्क्षेषु सर्वान् कामान् समश्नुते ॥
अयुक्षु तु पितॄन्सर्वान् प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम्॥२७७॥

सम तिथि और नक्षत्रों (द्वितीया, चतुर्थी आदि तिथियाँ, और भरणी, रोहिणी आदि दूसरे, चौथे, छठवें नक्षत्रों) के दिन श्राद्ध करने से सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं, और विषम तिथि और नक्षत्रों (प्रतिपदा, तृतीया आदि तिथियाँ, और अश्विनी, कृत्तिका आदि पहिले, तीसरे, पाँचवें आदि नक्षत्रों) के दिन श्राद्ध करने से बहुत सन्तति (बाल-बच्चे) होती है ॥ २७७ ॥

यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ॥
तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥२७८॥

जैसे श्राद्ध के लिये शुक्लपक्ष से कृष्णपक्ष श्रेष्ठ है, वैसे ही पूर्वाह्न (अर्थात् दिन के पहिले भाग से) अपराह्न (दिन का तीसरा भाग) श्रेष्ठ होता है ॥२७८॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ॥
पित्र्यमानिधनात् कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥२७९॥

दहिने कन्धे पर जनेऊ रखकर, आलस छोड़कर, हाथ में कुश लेकर, जिन्दगी रहने तक विधिपूर्वक भली भाँति श्राद्ध करना चाहिये ॥ २७९ ॥

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा ॥
सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥ २८० ॥

रात्रि में श्राद्ध न करना चाहिये, क्योंकि, वह राक्षसों के काम करने के लिये कही गई है। ऐसे ही साँझ-सवेरे की दोनों सन्धियों में और सूर्योदय के समय भी श्राद्ध करना न चाहिये ॥ २८० ॥

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ॥

हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहम् ॥ २८१ ॥

पूर्वोक्त विधि से श्राद्ध एक वर्ष में कम से कम हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षा तीन ऋतुओं में अर्थात् मकर संक्रान्ति, अक्षय तृतीया और पितृपक्ष इन तीन समय तो अवश्य करना ही चाहिये, और पञ्चमहायज्ञों में का नित्यश्राद्ध तो प्रतिदिन ही करना चाहिये ॥ २८१ ॥

न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते ॥
न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥२८२॥

श्राद्ध में अग्नौकरण होम लौकिक अग्नि में न करना चाहिये, (किन्तु जिसने श्रौत या स्मार्त अग्न्याधान न किया हो उसे ब्राह्मण के हाथ पर करने को पहिले कह दिया है)। अग्निहोत्री को वार्षिक श्राद्ध (वर्सी) छोड़कर दूसरा कोई श्राद्ध सिवाय अमावास्या के, अन्य दिन न करना चाहिये ॥ २८२ ॥

यदेव तर्पयत्यद्भिः पितॄन् स्नात्वा द्विजोत्तमः ॥
तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ २८३ ॥

ब्राह्मण यदि पञ्चमहायज्ञों में का नित्यश्राद्ध न कर सके तो स्नान करते ही जल से पितरों का तर्पण किया करे, उससे भी नित्यश्राद्ध का सब फल उसे मिल सकता है ॥ २८३ ॥

वसून् वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् ॥
प्रपितामहांस्तथाऽऽदित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी ॥२८४॥

वसुओं को पितर, रुद्रों को पितामह, और आदित्यों को प्रपितामह कहते हैं, ऐसी सनातन श्रुति है। (अर्थात् पितरों का वसुरूप से, पितामह का रुद्र रूप से, और प्रपितामह का आदित्य रूप से श्राद्ध में ध्यान करना चाहिये ॥ २८४ ॥

विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं वाऽमृतभोजनः ।
विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथाऽमृतम् ॥ २८५ ॥

'विघस' ब्राह्मण खाने बाद अवशिष्ट (बचा हुआ) अन्न, और 'अमृत' यज्ञ से अवशिष्ट अन्न कहलाता है, इन्हें ही सदा भक्षण करना चाहिये ॥२८५॥

एतद्वोऽभिहितं सर्वं विधानं पाञ्चयज्ञिकम् ॥
द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥ २८६ ॥

इति श्रीमनुस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥

यह सब पञ्चमहायज्ञ की विधि आप से अब तक कही, अब ब्राह्मण को कैसे रहना चाहिये सो सुनिये ॥ २८६ ॥

इति श्रीदाक्षिणात्यकुलावतंससिद्धेश्वरतनूज नेने-गोपालकृतमनुस्मृति-भाषाप्रकाशे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

* चतुर्थोऽध्यायः *

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ॥
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥

ब्राह्मण को ज्योतिषशास्त्र से अपनी आयु का निश्चय कर उसमें से चौथाई आयु होने तक गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्यव्रत (वेदाध्ययन) करना चाहिये, और आयु के दूसरे भाग में विवाह कर गृहस्थाश्रम में रहना चाहिये ॥ १ ॥

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ॥
या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ २ ॥

यदि किसी प्रकार की आपत्ति न हो तो ब्राह्मण को, जिसमें किसी प्रकार की प्राणियों की हानि न हो सकती हो, या हो भी तो बहुत ही कम, ऐसी वृत्ति से अपना जीवन बिताना चाहिये ॥ २ ॥

यात्रामात्रप्रसिध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ॥
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम् ॥ ३ ॥

जिनका शास्त्र में निषेध न किया हो ऐसे अपने २ ऋत आदि (अ. ४ श्लो. ४) कर्मों से शरीर को कष्ट न देते, अपने और कुटुम्ब के निर्वाह भर के लिये धन का सञ्चय अवश्य करना चाहिये ॥ ३ ॥

ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ॥
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ ४ ॥

ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत, और सत्यानृत वृत्ति से निर्वाह करना चाहिये परंतु कभी श्ववृत्ति से न करना चाहिये ॥ ४ ॥

ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ॥
मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥
सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ॥

सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत ॥ ६ ॥

ऋत-उञ्छ (अन्न के खेत या बाजार में पड़े हुए दाने एक २ उठाना), और शिल (खेत से अन्न के बालके बाल उठाना), अमृत अयाचितवृत्ति, मृत भिक्षा-वृत्ति, प्रमृत खेती, और सत्यानृत रोज़गार है, इनसे या ब्याज बट्टे से अपना जीवन व्यतीत करे, किन्तु नौकरी श्ववृत्ति है, इसलिये नौकरी कभी न करनी चाहिये ॥ ५ ॥६॥

कुशूलधान्यको वा स्यात् कुम्भीधान्यक एव वा ॥
त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ ७ ॥

गृहस्थ को उतना धान्य संचित कर रखना चाहिये, जितने से एक वर्ष, छः महिने, तीन दिन या एक दिन का भली भाँति निर्वाह हो ॥ ७ ॥

चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ॥
ज्यायान् परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥ ८ ॥

एक साल, छः महीने, तीन दिन और एक दिन के निर्वाह भर धान्य सञ्चित करनेवाले चारों गृहस्थों में उत्तरोत्तर (अर्थात् एक सालभर का धान्य संचय करनेवाले से छः महीने तक का धान्य संचय करनेवाला, उससे तीन दिन का धान्य संचय करनेवाला और उससे दिन भर का धान्य सञ्चय करनेवाला) श्रेष्ठ और लोगों पर अपना प्रभाव डालनेवाला होता है ॥ ८ ॥

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते ॥
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ९ ॥

इन गृहस्थों में से कोई उञ्छ-शिल, अयाचित, भिक्षा, खेती, रोज़गार और ब्याज बट्टा, इन छहों कर्मों से, कोई याजन, अध्यापन, और प्रतिग्रह, इन तीन से, कोई याजन और अध्यापन दो से, और कोई केवल अध्यापन ही से अपना जीवन व्यतीत करता है ॥ ९ ॥

वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ॥
इष्टीः पार्वायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥ १० ॥

शिल और उञ्छवृत्ति से रहनेवाले को केवल प्रतिदिन का अग्निहोत्र होम, पर्व और अयन समाप्ति में होनेवाली 'दर्श' 'पूर्णमास' और 'आग्रयण' इष्टियाँ करनी चाहिये ॥ १० ॥

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन ॥
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम् ॥ ११ ॥

हँसी, ठट्ठा, मसखरे आदि से अपना जीवन निर्वाह कभी न करना चाहिये, किन्तु कुटिलता और धूर्तता न करते हुए शुद्ध ब्राह्मण की वृत्ति से रहना चाहिये ॥ ११ ॥

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ॥
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥

सुख चाहनेवाले को बहुत सन्तोष कर नियम से रहना चाहियें, क्योंकि सन्तोष से सुख और असन्तोष से दुःख होता है ॥ १२ ॥

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ॥
स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥ १३ ॥

इन कही हुई वृत्तियों में से किसी भी वृत्ति से जीवन व्यतीत करनेवाले गृहस्थ ब्राह्मण, यश और आयु की वृद्धि और स्वर्ग की प्राप्ति के लिये इन वक्ष्यमाण व्रतों (नियमों) का पालन करे ॥ १३ ॥

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥
तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१४॥

वेद और शास्त्र में कहे हुये अपने कर्म को आलस्य छोड़कर शक्ति के अनुसार करने से उसकी सद्गति होती है ॥ १४ ॥

नेहेतार्थान् प्रसङ्गेन न विरुद्धेन कर्मणा ॥
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥ १५ ॥

जिसमें लोग आसक्त हो जाते हैं ऐसे गाने बजाने के काम से, शास्त्र निषिद्ध-शूद्र को याग कराना इत्यादि कर्मों से, धन रहने पर, या संकट काल में भी पतित आदि से धन न लेना चाहिये ॥ १५ ॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ॥
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्तयेत् ॥ १६ ॥

जान बूझ कर किसी भी इन्द्रिय के विषयोपभोग में आसक्त न होना चाहिये। यदि किसी प्रकार किसी विषय की शौक़ हो जाय, तो उसे रोकने की मन से चेष्टा करनी चाहिये ॥ १६ ॥

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥
यथातथाऽध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१७॥

पठन-पाठन के लिये हानिकारक जितने काम हों, सबों को छोड़ दे, क्योंकि, गृहस्थ चाहे जिस प्रकार से हो पढ़ाता रहे, तभी तो कृतकृत्य होता है ॥ १७ ॥

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ॥
वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन् विचरेदिह ॥ १८ ॥

अवस्था, कर्म, धन, विद्या, और देश, इनके अनुकूल चाल-चलन, बात-चीत, और चतुराई करनी चाहिये ॥ १८ ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धान्यानि च हितानि च ॥
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥१६॥

ज्ञान को बढ़ानेवाले व्याकरण, न्याय, मीमांसा, स्मृति, पुराण आदि, धन को देनेवाली 'बार्हस्पत्य' "शुक्र" 'चाणक्य' आदि नीतियाँ; शरीर-को स्वास्थ्य देनेवाले वैद्यक ज्योतिष आदि, और वेदार्थ का बोध करानेवाले निरुक्त प्रातिशाख्य आदि को सदा देखते व मनन करते रहना चाहिये ॥ १६ ॥

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ॥
तथा तथा विजानाति, विज्ञानं चास्य रोचते ॥२०॥

पुरुष ज्यों ज्यों शास्त्र को देखता है त्यों त्यों उसे अधिक ज्ञान होने लगता है और उसे वैज्ञानिक बातें अच्छी मालूम होने लगती हैं ॥ २० ॥

नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ २१ ॥
ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ॥

गृहस्थ को जहाँ तक हो सके, ब्रह्मयज्ञ (वेदाध्ययन), वैश्वदेव, बलिहरण, अतिथिसत्कार, और पितृयज्ञ (नित्यश्राद्ध या तर्पण), इन पञ्च महायज्ञों के करने में नागा न करना चाहिये ॥ २१ ॥

एतानेके महायज्ञान् यज्ञशास्त्रविदो जनाः ॥
अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ॥ २२ ॥

बाह्य और आन्तर यज्ञानुष्ठान जाननेवाले ज्ञानी लोग पञ्चज्ञानेन्द्रियों में उनके २ विषयों का उपभोग न करने से आहुति देकर पञ्चमहायज्ञों के फल प्राप्त कर लेते हैं ॥ २२ ॥

वाच्येके जह्वति प्राणं, प्राणे वाचं च सर्वदा ॥
वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृतिमक्षयाम् ॥ २३ ॥

'वागिन्द्रिय और प्राण के निरोध करने से सदा के लिये यज्ञ का फल मिलेगा,' ऐसा जान कर कोई योगी मौन और प्राणायाम ही सदा किया करते हैं ॥ २३ ॥

ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतैर्मखैः सदा ॥
दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥ २४ ॥

ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थ को ज्ञान से ही सब यज्ञ आदि क्रिया हो सकती हैं, इस लिये प्रतिदिन होनेवाले पञ्चमहायज्ञ और पक्ष पक्ष में होनेवाली 'दर्श' और 'पूर्णमास' इष्टियाँ, इनका फल वे ब्रह्मज्ञान ही से संपादन कर लेते हैं ॥ २४ ॥

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ॥
दर्शेन चार्धमासन्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥ २५ ॥
सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या, तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ॥
पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥

गृहस्थ को प्रातः सायं दोनों समय अग्निहोत्र, पक्ष २ में दर्श और पूर्णमास इष्टियाँ, धान की नई फसल तैय्यार हो जाने पर (अर्थात् अगहन में) आग्रयणेष्टि (जिसमें नये धान ही का होम होता है), चार २ महीने में चातुर्मास्य

याग, छु २ महीनों पर अग्नीषोम याग (जिसमें पशु के अङ्गों का होम होता है), और साल साल पर ज्योतिष्टोम यज्ञ, अवश्य करना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान् द्विजः ॥
नवान्नमद्यान् मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ २७॥
नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुहव्येन चाग्नयः ॥
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्धिनः ॥२८॥

अग्निहोत्री को, यदि बहुत सालों तक जीवित रहने की इच्छा हो, तो बिना आग्रयणेष्टि किये नये अन्न, और बिना अग्नीषोमीय पशुयाग किये मांस का भक्षण न करना चाहिये; क्योंकि, अग्नियों को नवीन अन्न और पशु का मांस मिलने की अत्यन्त चाहना होने से, उन्हें, यदि वह नहीं मिलता, तो, वे अग्निहोत्री के प्राण ही को भक्षण करना चाहने लगते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ॥
नास्य कश्चिद्वसेद् गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥२६॥

अतिथि को, गृहस्थ के घर यदि बैठने के लिये आसन, भोजन, सोने को बिस्तर, पीने को जल, मूल और फल उसकी शक्ति के अनुसार न मिले, तो उसके घर न रहना चाहिये ॥ २६ ॥

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् बैडालव्रतिकान् शठान् ॥
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥३०॥

पाखण्डी, अनाचारी, विडालव्रती[1], धूर्त, वेद शास्त्र विरुद्ध तर्क करने वाले, बकवृत्ति[2] करनेवाले, इनका बातचीत से भी सत्कार न करना चाहिये ॥ ३० ॥

वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिनः ॥
पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥

विद्यास्नातक (जो ब्रह्मचारी व्रत की समाप्ति के पहिले ही गुरुकुल से घर

---

१ विडालव्रत चौथे अध्याय के १९५ श्लोक में लिखा है। २ बकवृत्ति चौथे अध्याय के १९६ श्लोक में लिखा है।

जाता है), व्रतस्नातक (जो ब्रह्मचारी व्रत समाप्त होते ही वेदाध्ययन की समाप्ति के पहिले गुरुकुल से घर जाता है), और विद्या, व्रत, उभयस्नातक (वेदाध्ययन, और व्रत, दोनों समाप्त कर गुरुकुल से घर जाता है), ऐसे गृहस्थाश्रमी वैदिकों का दैव और पित्र्य (श्राद्ध) कर्म में अवश्य सत्कार करना चाहिये ॥ ३१ ॥

शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना ॥
संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ ३२ ॥

गृहस्थ, जितना देने से कुटुम्बियों को कष्ट न हो, उतना अन्न ब्रह्मचारी, संन्यासी, आदि जो कभी रसोई नहीं बनाते उन्हें, और सब जीव जन्तुओं को अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा थोड़ा दे दे ॥ ३२ ॥

राजतो धनमन्विच्छेत् संसीदन् स्नातकः क्षुधा ॥
याज्यान्तेवासिनोर्वाऽपि न त्वन्यत इति स्थितिः ॥३३॥

स्नातक को यदि खाने पीने का कष्ट होने लगे तो राजा, यजमान, और शिष्य, इनसे धन लेना चाहिये, दूसरे से नहीं ॥ ३३ ॥

न सीदेत् स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथञ्चन ॥
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥३४॥

गृहस्थ को कभी खाने पीने का कष्ट न भोगना चाहिये, और शक्ति हो तो पुराना और मैला वस्त्र भी न पहिरना चाहिये ॥ ३४ ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ॥
स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥ ३५ ॥

गृहस्थ सिर और दाढ़ी की हजामत अवश्य बनवाया करे, नाखून कटाया करे, सफेद वस्त्र पहिने, शुद्धता से रहे, वेदाध्ययन करे, और सदा अपना हित करने में लगा रहे ॥ ३५ ॥

वैणवीं धारयेद् यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम् ॥
यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ ३६ ॥

बांस की छड़ी, जलका पात्र, (गले में) जनेऊ, कुश, और कानों में सोने के

अच्छे कुण्डल धारण करे ॥ ३६॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन ॥
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यनभसो गतम् ॥ ३७ ॥

गृहस्थ को उदय, अस्त और ग्रहण के समय सारा सूर्य कभी न देखना चाहिये, जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब और आसमान के बीचो बीच जब सूर्य आ जाय तो उस समय भी उसे न देखना चाहिये ॥ ३७ ॥

न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति ॥
न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ॥ ३८ ॥

शास्त्र का सिद्धान्त है, कि, बछड़े के पगहे को लाँघना न चाहिये, वृष्टि में दौड़ना न चाहिये, और जल में अपनी छाया देखनी न चाहिये ॥ ३८ ॥

मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ॥
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥ ३९ ॥

चलते समय यदि रास्ते में मिट्टी की ढेर, गौ, देवता, ब्राह्मण, घी, शहद, चौराह, और प्रसिद्ध वृक्ष मिलें, तो उन्हें अपनी दाहिनी ओर करके आगे जाना चाहिये ॥ ३९ ॥

नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने ॥
समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४० ॥

कामदेव से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी स्त्री के साथ रजस्वला दशा में विषयोपभोग अथवा एक ही बिस्तर पर निद्रा न करनी चाहिये ॥४०॥

रजसाऽभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ॥
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥ ४१ ॥

रजस्वला स्त्री से विषयोपभोग करनेवाले मनुष्य की बुद्धि, तेज, बल, नेत्र, और आयु, क्षीण हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् ॥
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥ ४२ ॥

रजस्वला स्त्री से विषयोपभोग न करनेवाले मनुष्य की बुद्धि, तेज, बल, दृष्टि, और आयु बढ़ते हैं ॥ ४२ ॥

नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् ॥
क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम् ॥४३॥
नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम् ॥
न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥४४॥

एक पात्र में स्त्री, और आप, दोनों को एक साथ न खाना चाहिये, जिस समय स्त्री भोजन करती हो, छींकती हो, जमुहाई लेती हो, सुख से बैठी हो, आँखों में काजल डालती हो, शरीर में तेल आदि को लगाती हो, स्तन आदि अंङ्गों पर से वस्त्र हट गया हो, और प्रसूत होती हो, उस समय उसे तेजस्वी होने की इच्छा करने वाले ब्राह्मण को न देखना चाहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥ ४५ ॥

एक ही वस्त्र पहन कर भोजन न करना; विना वस्त्र के स्नान; रास्ते, राखी और गोठे में लघुशङ्का और शौच कभी न करना चाहिये ॥ ४५ ॥

न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ॥
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥ ४६ ॥
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः ॥
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥ ४७ ॥
वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः ॥
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ ४८ ॥

जोड़ा हुआ खेत, जल, चिता (मुर्दा जलाने के लिये काष्ठ रचे जाते हैं), पहाड़, पुराना टूटा-फूटा मन्दिर, वल्मीक (बाम्बी), और छोटे २ जन्तुओं के बिल, इनमें; चलते २; खड़े २, नदी के किनारे, पहाड़ के चोटी (शिखर) पर, हवा की रुख पर, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल और गायें, इन्हें देखते हुए, कभी लघुशङ्का

और शौच न करना चाहिये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

तिरस्कृत्योच्चरेत् काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना ॥
नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥ ४९ ॥

भूमि पर शुष्क लकड़ी, मिट्टी का ढेला, पत्ते, या घास आदि रख कर उसके ऊपर बिना बोले शरीर को वस्त्र से ढाँक कर और सिर में वस्त्र लपेट कर लघुशङ्का और शौच करना चाहिये ॥ ४९ ॥

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च यथा दिवा ॥५०॥

दिन और साँझ सबेरे उत्तर मुँह, और रात्रि में दक्षिण मुँह लघुशङ्का और शौच करे ॥ ५० ॥

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥
यथासुखमुखः कुर्यात् प्राणबाधाभयेषु च ॥ ५१ ॥

ब्राह्मण, किसी पेड़ आदि की छाया, अन्धकार, और जान जोखिमी में, रात हो चाहे दिन, उस समय जिसी किसी तरफ मुँह कर लघुशङ्का और शौच कर सकता है ॥ ५१ ॥

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान् ॥
प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ ५२ ॥

लघुशङ्का और शौच अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, ब्राह्मण और गौ के सामने उन्हें न देखते भी करने से , तथा हवा की रुख पर करने से बुद्धि नष्ट हो जाती है ॥ ५२ ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् ॥
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ, न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ५३ ॥

अग्नि को मुख से साक्षात् न फूंकना चाहिये, (किन्तु फुँकनी पंखा आदि से), नङ्गी स्त्री को (विषयोपभोग के बिना) देखना, मूत्र विष्ठा आदि मलों का अग्नि में फेंकना, और अग्नि पर पैर सेंकना निषिद्ध है ॥५३ ॥

अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलङ्घयेत् ॥

न चैनं पादतः कुर्यात् न प्राणाबाधमाचरेत् ॥ ५४ ॥

अग्नि को अपनी खटिया पलङ्ग आदि के नीचे रखना, लाँघना, और निद्रा के समय पैर की ओर रखना न चाहिये, और जिस से किसी के जीवन में कष्ट प्राप्त हो, ऐसा भी कोई काम न करना चाहिये ॥ ५४ ॥

नाश्नीयात् सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ॥
न चैव प्रलिखेद् भूमिं नात्मनोपहरेत् स्रजम् ॥ ५५ ॥

सन्ध्या के समय खाना, चलना, और सोना न चाहिये, जमीन पर लकड़ी काँटा आदि से खीचना न चाहिये, और अपने ही से अपने गले की माला उतारनी न चाहिये ॥ ५५ ॥

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ॥
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ ५६ ॥

मूत्र, विष्ठा, थूँक, या ये जिन में लगे हो ऐसे वस्त्र आदि, लोहू, जहर, इन्हें जल में फेकना न चाहिये ॥ ५६ ॥

नैकः स्वपेच्छून्यगेहे शयानं न प्रबोधयेत् ॥
नोदक्ययाऽभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ॥ ५७ ॥

सूने घर में अकेला न सोवे, सोये हुये को न जगावे, रजस्वला से न बोले और बिना वरणी के यज्ञ करने न जाय, (किन्तु दर्शन के लिये जा सकता है) ॥ ५७ ॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

अग्नि के घर में, गौके गोठे में, ब्राह्मणों के समीप, और पढ़ते तथा भोजन करते समय दाहिने हाथ को वस्त्र के बाहर रखना चाहिये ॥ ५८ ॥

न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ॥
न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद् बुधः ॥ ५९ ॥

जल या दूध पीती हुई गौ को न हाँके या न दूसरे को कहे, आसमान में इन्द्र-धनु को देख कर दूसरे को न दिखलावे ॥ ५९ ॥

नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ॥
नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥ ६० ॥
न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते ॥
न पाषण्डिजनाक्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥ ६१ ॥

जहाँ दुष्ट नास्तिक आदि, या रोग बहुत हों, उस गाँव और पहाड़ में बहुत न रहा करे, और अकेला रास्ते में कभी न चले, शूद्र के राज्य में; और जिसके आस पास नास्तिक ही लोग रहते हों, जहाँ पाखण्डी लोग रहते हों, और जहाँ डोम चमार आदि नीच जाति से कष्ट पहुँचता हो, ऐसे स्थान पर कभी वास न करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥

न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत् ॥
नातिप्रगे नातिसायं न सायं प्रातराशितः ॥ ६२ ॥

जिसका सत्त्व निकाल लिया गया हो, उसे न खाना चाहिये, अधिक न खाना चाहिये, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय न खाना चाहिये, और दिन में यदि खूब भोजन किया हो तो शाम को न खाना चाहिये ॥ ६२ ॥

न कुर्वीत वृथा चेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत् ॥
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान् न जातु स्यात्कुतूहली ॥६३॥

व्यर्थ का काम (जिसमें कोई हानि लाभ न हो) न करना चाहिये, हाथ के अञ्जुलि से पानी न पीना चाहिये, पलथी पर लेकर लड्डू आदि को न खाना चाहिये, और बिना मतलब के किसी बात को जानने की इच्छा न करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ॥
नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥ ६४ ॥

नाँचना, गाना, बजाना, ताल ठोकना, घोम् मारना और शौक से गदहा आदि की बोली बोलना उचित नहीं है ॥ ६४ ॥

न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने ॥

न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते ॥ ६५ ॥

कांसे के वर्तन में कभी पैर न धोना चाहिये, फूटे, या जिस से मन में घृणा आती हो ऐसे पात्र में भोजन न करना चाहिये ॥ ६५ ॥

उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥
उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥ ६६ ॥

दूसरे के पहने हुये जूते, वस्त्र, जनेऊ, अलङ्कार (गहने), और माला को पहनना न चाहिये, और दूसरे की सुराही (करवा) से जल न पीना चाहिये ॥ ६६ ॥

नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैर्न च क्षुद्व्याधिपीडितैः ॥
न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालधिविरूपितैः ॥ ६७ ॥

मस्त (बिगड़ैल); क्षुधा या रोग से पीड़ित, सींग, और जिनके खुर टूटे हों और नेत्र फूटे हों; और जिनका रोंवा बिगड़ गया हो, ऐसे बैलों की गाड़ी से यात्रा न करनी चाहिये ॥ ६७ ॥

विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः ॥
वर्णरूपोपसम्पन्नैः प्रतोदेनातुदन् भृशम् ॥ ६८ ॥

सीधे, शीघ्र चलनेवाले, उत्तम लक्षणों से युक्त, और जिनका रङ्ग तथा रूप उत्तम हो, ऐसे बैलों की गाड़ी से उन्हें बहुत चाबुक न मारते हुये यात्रा करनी चाहिये ॥ ६८ ॥

बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम् ॥
न छिन्द्यात् नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥६९॥

सूर्योदय के समय का कोमल घाम और मुर्दे के धुँवे से दूर रहना चाहिये. फटे टूटे आसन पर न बैठना चाहिये, अपने नाखून और केश अपने हाथों से न काटना चाहिये, और दाँतों से नाखून न उचाटने चाहिये ॥ ६९ ॥

न मृल्लोष्ठं न मृद्नीयान्न छिन्द्यात् करजैस्तृणम् ॥
न कर्म निष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ॥ ७० ॥

मिट्टी के ढेले का मर्दन न करना, चाहिये, नाखूनों से घास न तोड़ना चाहिये, और जिस से कोई लाभ या परिणाम में सुख न हो उस काम को न करना चाहिये ॥ ७० ॥

लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ॥
स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ॥ ७१ ॥

ढेले का चूर करनेवाला, नाखून से घास तोड़नेवाला, अपने नाखून को दाँत से उचाटनेवाला, दूसरों के झूठे सच्चे दोषों को कहनेवाला और गन्दा रहनेवाला, ये बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ ७१ ॥

न विगर्ह्य कथां कुर्याद् बहिर्माल्यं न धारयेत् ॥
गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥ ७२ ॥

हठात् किसी बात को न कहना चाहिये, अपने हाथ से माला (सब का देख पड़े) ऐसी न पहिननी चाहिये, और बैल के पीठ पर सवारी करना तो बहुत ही निन्द्य है ॥ ७२ ॥

अद्वारेण च नातीयाद्ग्रामं वा वेश्म वावृतम् ॥
रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ७३ ॥

किसी गाँव या घर में बिना फाटक या दरवाजे के दूसरी ओर से न जाना चाहिये, और रात्रि में पेड़ या मूल से दूर ही रहना चाहिये ॥ ७३ ॥

नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत् ॥
शयनस्थोऽपि भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने ॥७४॥

कभी पाँसे या कवड़ियों से जुवा न खेले, अपने जूते अपने हाथ से न ले जाय, बिस्तर पर बैठ कर, हाथ में लेकर और आसन पर रख कर कभी न खाना चाहिये ॥ ७४ ॥

सर्वं च तिलसम्बद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ॥
न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥७५॥

तिल की बनी हुई कोई भी चीज सूर्यास्त के बाद न खाय, नङ्गे न सोवे, और जूठे हाथ या मुँह कहीं न जाय ॥७५॥

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ॥
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥

पैर धोकर ओदेही पैर से भोजन करना चाहिये, और पैर पोंछ कर सोना चाहिये, ओदे पैर से भोजन करने से बहुत आयु बढ़ती है ॥ ७६ ॥

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रपद्येत कर्हिचित् ॥
न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥ ७७ ॥

जिस स्थान को पहले कभी न देखा हो, वहाँ कभी असावधानी न करनी चाहिये (किन्तु सावधानता से जाना चाहिये), अपने मल मूत्र को देखना न चाहिये, और हाथों से तैर कर नदी के पार जाना न चाहिये ॥ ७७ ॥

अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः ॥
न कार्पासास्थि न तुषान् दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥७८॥

बहुत साल जीने की इच्छा करनेवाला बाल, राखी, खपड़े, बिनौले, और भूसी, इनकी ढेर पर न चढ़े ॥ ७८ ॥

न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुल्कसैः ॥
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ ७९ ॥

पतित, डोम चमार आदि चाण्डाल, पुल्कस, मूर्ख, धन आदि से उन्मत्त, और धोबी आदि नीच, इनके पास न बैठना चाहिये ॥ ७९ ॥

न शूद्राय मतिं दद्यात् नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥
न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥

शूद्र को न तो राय दे, न जूठा, और न होम से बची कोई वस्तु उसे धर्म का उपदेश न करे और न उसे कोई व्रत कहे ॥ ८० ॥

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् ॥
सोऽसंवृतं नाम तमः सह तेनैव मज्जति ॥ ८१ ॥

जो ब्राह्मण शूद्र को धर्म और व्रत कहता है, उसे, जहाँ गहिरा अन्धकार

होता है, ऐसे नरक में उस शूद्र के साथ रहना पड़ता है॥ ८१ ॥

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ॥
न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥ ८२ ॥

दोनों हाथों को मिला कर सिर न खुजलावे, जूठे से सिर का स्पर्श न करे, और बिना सिर भिगोये के स्नान न करे ॥ ८२ ॥

केशग्रहान् प्रहारांश्च शिरस्येतान् विवर्जयेत् ॥
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ॥८३॥

किसी का झोंटा पकड़ कर उसे सिर में न मारे, और सिर में तेल लगा कर अपने किसी अङ्ग को न छूवे ॥ ८३ ॥

न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः ॥
सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीवताम् ॥ ८४ ॥

क्षत्रिय के सिवाय अन्यजातीय राजा, कसाई, तेली, कलवार, और रंडियों का दलाल, इन से दान कभी न ले ॥ ८४ ॥

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ॥
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥ ८५ ॥

तेली दस कसाईयों के, कलवार दस तेलियों के, और राजा दस कलवारों के बराबर होते हैं ॥ ८५ ॥

दशसूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ॥
तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥ ८६ ॥

जो कसाई एक हज़ार कसाईखानों का मालिक होता है, (अर्थात् एक हजार कसाईखानों में पशुओं को बराबर कटवाते रहता है) उसके बराबर राजा होता है, इसलिये राजा से दान लेने में घोर पातक है ॥ ८६ ॥

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥
स पर्यायेण यातीमान् नरकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥
नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥ ८८ ॥
सञ्जीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ॥
संहातं च सकाकोलं कुड्मलं प्रतिमूर्तिकम् ॥ ८९ ॥
लोहशङ्कुमृजीपं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम् ॥
असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च ॥ ९० ॥

जो ब्राह्मण शास्त्र विरुद्ध काम करनेवाले, और लोभी राजा से दान लेता है, उसे, तामिस्र (अन्धेरी कोठडी), अन्धतामिस्र (गहिरा अँधेरा जहाँ होता है), महारौरव, रौरव, नरक, कालसूत्र (जहाँ सदा फाँसी पर लटकाया जाता है), महानरक, सञ्जीवन (जान मार कर पुन. २ जिलाया जाता है), महावीचि (जिस जल में बडा भारी हलरा होता है), तपन (जहाँ गरमी होती है), संप्रतापन (जहाँ शरीर जलाया जाता है), संहात, सकाकोल, कुड्मल, प्रतिमूर्ति, लोहशङ्कु (जहाँ लोहे के काँटे गड़ते हैं), ऋजीष, पन्था (जहाँ सदा चलना ही पड़ता है), शाल्मलीनदी, असिपत्रवन (जहाँ चारों ओर तलवारे लगतीं हो) और लोहदारक (जहाँ लोहे की पुतली से संभोग करना पड़ता हो) ऐसे २१ नरक में क्रम से जाकर वहाँ का दुःख भोगना पड़ता है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥
न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणः ॥ ९१ ॥

'राजा से दान लेने से नरकों में जाना पड़ता है' इस बात को जानने वाले विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ मोक्ष को चाहने वाले ब्राह्मण राजा से दान नहीं लेते ॥ ९१ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ॥
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ ९२ ॥

प्रभात (प्रात.काल ३–४ बजे के) समय उठ कर भगवन्नामस्मरण करे और फिर उस दिन अमुक समय अमुक धर्म कार्य, अमुक समय अमुक धन संपादन का

काम, उनसे होनेवाले शरीर के कष्ट, इन सबों को विचारे और फिर वृह्मकर्म करने का विचार करे ॥ ९२ ॥

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ॥
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥ ९३ ॥

फिर बिस्तर से उठ कर आवश्यक शौच, मुखमार्जन, स्नान आदि को कर सूर्योदय तक, और इसी प्रकार सायंकाल में तारे उगने तक सन्ध्या और जप करता रहे ॥ ९३ ॥

ऋषयो दीर्घसन्ध्यात्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ ९४ ॥

ऋषि लोगों की स्नान सन्ध्या अधिक होने से, उन्हें, बहुत आयु, बुद्धि, यश, नाम, और वृह्मतेज मिलते हैं, इसलिये सबों को स्नान सन्ध्या खूब अधिक करनी चाहिये ॥ ९४ ॥

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाऽप्युपाकृत्य यथाविधि ॥
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान् ॥९५॥

श्रावण या भाद्रपद की पूर्णमासी के दिन वैदिक विधि से श्रावणी (उपाकर्म) कर साढ़ेचार महीने तक बराबर वेदाध्ययन करे ॥ ९५ ॥

पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद् बहिरुत्सर्जनं द्विजः ॥
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥ ९६ ॥

जिसने श्रावणशुक्ल पौर्णमासी के दिन उपाकर्मविधि की हो, वह साढ़ेचार महीने के बाद जिस दिन पुष्यनक्षत्र आवे, उस दिन, और जिसने भाद्रपद शुक्ल पौर्णमासी के दिन उपाकर्मविधि की हो, वह माघ कृष्ण प्रतिपत् के दिन प्रातःकाल घर या गाँव से बाहर जाकर उत्सर्जन विधि को करे ॥ ९६ ॥

यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः ॥
विरमेत् पक्षिणीं रात्रिं तदेवैकमहर्निशम् ॥ ९७ ॥

इस प्रकार शास्त्रोक्तविधि से घर या गाँव के बाहर वेदोत्सर्जन विधि करने के बाद डेढ़ दिन या उसी दिन अनध्याय करे ॥ ९७ ॥

अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् ॥
वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षे तु संपठेत् ॥ ९८ ॥

वेदोत्सर्जन करने के बाद वेद शुक्लपक्ष में, और सब वेदाङ्ग (कल्पसूत्र, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष,) कृष्ण पक्ष में नियम से पढ़ा करे ॥ ९८ ॥

नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ ॥
न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥९९॥

गुन गुना कर, और शूद्रों के समीप में वेदाध्ययन न करे, और रात्रि के अन्त में पढ़ कर यदि थक जाय तो भी फिर न सोवे ॥ ९९ ॥

यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् ॥
ब्रह्म छन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तो ह्यनापदि ॥ १०० ॥

इस कहे हुये प्रकार से ब्राह्मण को प्रतिदिन संहिता पढ़नी चाहिये, और यदि किसी प्रकार की आपत्ति न हो तो 'संहिता' और 'ब्राह्मण' दोनों को पढ़ना चाहिये ॥ १०० ॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् ॥
अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥१०१॥

विधिपूर्वक पढ़नेवाले, या शिष्यों को पढ़ानेवाले को इन अनध्यायों (जो आगे कहे जावेंगे) के दिन अवश्य पठन पाठन बन्द रखना चाहिये ॥ १०१ ॥

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ, दिवा पांसुसमूहने ॥
एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥ १०२ ॥

पठन पाठन करनेवाले विद्वान् वर्षाऋतु में रात्रि में यदि हवा जोर से चलने लगे कि सिवाय हवा के दूसरा कुछ भी न सुन पड़े, और दिन में यदि आंधी चलने लगे, तो उस समय अनध्याय (छुट्टी) करने कहते हैं ॥ १०२ ॥

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे ॥
आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥ १०३ ॥

वृष्टिमें यदि बिजली की कड़कड़ाहट होती हो, और उल्कापात होता हो तो वर्षाऋतु में ही उस समय अनध्याय करना मनु ने कहा है ॥ १०४ ॥

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥
एतानाकालिकान् विद्यादनध्यायानृतावपि ॥ १०५ ॥

किसी प्रकार की एकाएक, आस्मान में भारी आवाज होने लगे, भूकंप होने लगे और सूर्य चन्द्र और ताराओं का मण्डल पड़ा हो, तो उस समय चाहे कोई ऋतु क्यों न हो, अनध्याय करना चाहिये ॥ १०५ ॥

प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिःस्वने ॥
सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥ १०६ ॥

होम के लिये अग्नि को प्रदीप्त करने पर यदि केवल बिजली की कड़कड़ाहट हो (वृष्टि न हो), तो प्रातःकाल से शाम को तारा उगने तक और शाम से सुबह सूर्योदय तक अनध्याय करना चाहिये ॥ १०६ ॥

नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ॥
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥ १०७ ॥

वेदाध्ययन से पुण्य को चाहने वालों को गांव, नगर और दुर्गन्ध की जगह सदा अनध्याय करना चाहिये, (गांव के बाहर उपवन आदि एकान्त और स्वच्छ स्थान में ही उन्हें पढ़ना चाहिये ॥ १०७ ॥

अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ ॥
अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥ १०८ ॥

गांव में मृत्यु होने पर, शूद्र के समीप, और लोगों के रोते समय अनध्याय रहे ॥ १०८ ॥

उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने ॥
उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसाऽपि न चिन्तयेत् ॥ १०९ ॥

जल में, आधी रात में, लघुशङ्का या शौच करते ही, जूठे से, और श्राद्ध का भोजन करने से मन में भी वेद का विचार न करे ॥ १०९ ॥

प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् ॥

त्र्यहं न कीर्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ ११० ॥

किसी के घर ग्यारही में भोजन का निमन्त्रण लेने से, राजा के घर बालक उत्पन्न होने से, और चन्द्र सूर्य ग्रहण होने से तीन दिन अनध्याय करना चाहिये ॥ ११० ॥

यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति ॥
विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥ १११ ॥

जब तक ग्यारहो में किये हुये भोजन की महक या चिकनई न छूटे तब तक विद्वान् ब्राह्मण को वेदाध्ययन न करना चाहिये ॥ १११ ॥

शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ॥
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ ११२ ॥

सोवे हुये, टाँग पसार कर, ठेहुनिया कर, और मांस तथा सूतकियों का अन्न खा कर पढ़ना न चाहिये ।.११२॥

नीहारे बाणशब्दे च सन्ध्ययोरेव चोभयोः ॥
अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥ ११३ ॥

गर्दा में, बाण की आवाज आती हो तो, साँझ, सवेरे, अमावस, चतुर्दशी पौर्णमासी और अष्टमी के दिन अनध्याय करना चाहिये ॥ ११३ ॥

अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी ॥
ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥ ११४ ॥

पठन पाठन अमावास्या को करने से गुरु, और चतुर्दशी को करने से शिष्य की हानि होती है, अष्टमी और पूर्णमासी को पढ़ने से पढ़ा हुआ भूल जाता है, इसी लिये उन दिनों में न पढ़ना चाहिये ॥ ११४ ॥

पांशुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा ॥
श्वखरोष्ट्रे च रुवति पङ्क्तौ च न पठेद्द्विजः ॥ ११५ ॥

धूल उड़ती हो, आग लगी हो, सियार कुत्ते गदहे और ऊँट चिल्लाते हों और सियार कुत्तों गदहों और ऊँटों की पङ्क्ति में बैठ कर पढ़ना

न चाहिये ॥ ११५ ॥

नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ॥
वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ ११६ ॥

श्मशान और गाँव के समीप, गोठे में, जिस वस्त्र को पहिन कर स्त्री से संभोग किया हो उसे पहिन कर, और श्राद्ध का भोजन कर पढ़ना न चाहिये ॥ ११६ ॥

प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् ॥
तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः ॥११७

श्राद्ध में गौ घोड़ा आदि जानवर और वस्त्र आदि वस्तुओं का हाथ पर दान लेकर भी पढ़ना न चाहिये, क्योंकि, हाथ ही तो ब्राह्मण का मुख अर्थात् दान लेने का मुख्य साधन है ॥ ११७ ॥

चौरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते ॥
आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥ ११८ ॥

जिस गांव में चोरी बहुत होती है, जहां आग लगने से हुल्लड़ मची हो, और कि ताज्जुब की बात के समय, पढ़ना न चाहिये ॥ ११८ ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ॥
अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥ ११९ ॥

वेद का उपाकर्म और उत्सर्जन कर्म करने पर तीन दिन, अष्टकाश्राद्ध करने पर उसी दिन और ऋतुओं के अन्तिम दिन अर्थात् सब प्रतिपदा को अनध्याय करना चाहिये ॥ ११९ ॥

नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् ॥
न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः ॥ १२० ॥
न विवाहे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे ॥
न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके ॥ १२१॥
अतिथिं चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम् ॥

रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥१२२॥

सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन ॥

वेदस्याधीत्य वाप्यन्तमारण्यकमधीत्य च ॥ १२३ ॥

घोड़ा, पेड़, हाथी, नाव, गदहा, ऊँट, इन पर चढ़े हुये, ऊसर भूमि पर, किसी गाड़ी पालकी आदि सवारी पर चढ़े हुये, व्याह शादी, लड़ाई झगड़ा, सेना और युद्ध में, भोजन करते ही, अजीर्ण और वमन (छांट) होने पर, सूतक में, अपने घर पाहुन आने से विना उसे कहे, बहुत अधिक हवा चलने से, अपने शरीर से लोहू निकलने पर, शस्त्र का घाव लगने से, और वेद का अन्तिम अध्याय या आरण्यक पढ़ने पर अनध्याय करना चाहिये ॥१२०॥१२१॥१२२॥१२३॥

ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः ॥

सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥१२४॥

सामवेद पढ़ कर ऋग्वेद और यजुर्वेद को न पढ़ना चाहिये, क्योंकि, ऋग्वेद की देवता इन्द्रादि, यजुर्वेद की देवता ऋषि, और सामवेद की देवता पितर हैं, इसलिये सामवेद के शब्द अशुद्ध हैं ॥ १२४ ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ॥

क्रमतः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते ॥ १२५ ॥

'सामवेद पढ़ने के बाद ऋग्वेद और यजुर्वेद पढ़ना न चाहिये' इसे जानने वाले विद्वान् ब्राह्मण प्रतिदिन ऋग्वेद यजुर्वेद, और सामवेद के सारभूत प्रणव, व्याहृति और सावित्री, इनका क्रम से अभ्यास कर पश्चात् वेदाध्ययन करते हैं ॥ १२५ ॥

पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः ॥

अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् ॥ १२६ ॥

पठन पाठन के समय यदि गुरु और शिष्य के बीच में से गौ महिष आदि पशु, मेंढक, बिल्ली, कुत्ता, [illegible] और मूस, इन में से कोई चला जाय, तो उस दिन अनध्याय करना चाहिये ॥ १२६ ॥

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः ॥

स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचिं द्विजः ॥१२७॥

ब्राह्मण, यदि पढ़ने का स्थान और आप स्वयं अशुद्ध हो जाँय, तो, इन दो अनध्यायों का सदा अवश्य पालन किया करे ॥ १२७ ॥

अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ॥

ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ १२८ ॥

स्नातक को अमावास्या, अष्टमी, पौर्णमासी, और चतुर्दशी के दिन ऋतुकाल में भी स्त्री से संभोग न करना चाहिये (किन्तु ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये) ॥ १२८ ॥

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ॥

न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ १२९ ॥

भोजन करते ही, बीमारी में, आधी रात, प्रतिदिन बहुत कपड़े पहिन कर और अनजान तालाब या बावली में स्नान न करना चाहिये ॥ १२९ ॥

देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा ॥

नाक्रामेत्कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥ १३० ॥

देवता, गुरु (बड़े लोग), राजा, स्नातक, आचार्य, पिङ्गल, यज्ञ में दीक्षा जिसने ली हो, और चाण्डाल आदि, इनकी छाया में जान कर न जाना चाहिये ॥ १३० ॥

मध्यन्दिनेऽर्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् ॥

सन्ध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥ १३१ ॥

मध्यान्ह, आधी रात, श्राद्ध में मांस आदि भोजन कर. और साँझ सवेरे चौमुहानी पर न ठहरना चाहिये ॥ १३१ ॥

उद्वर्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च ॥

श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः ॥ १३२ ॥

तेल अपटन आदि से छुड़ाया हुआ शरीर का मल (लिज्भी), स्नान का जल, मल : मूत्र, लोहू, कफ़, थूक, और कय, इन पर जान कर खड़ा न

रहे ॥ १३२ ॥

वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः ॥
अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम् ॥ १३३ ॥

शत्रु, उसका साथी, नास्तिक, और चोर इनकी हाँजी हाँजी न करे और पराई स्त्री से संभोग न करे ॥ १३३ ॥

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ॥
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ १३४ ॥

पराई स्त्री के साथ संभोग करने से पुरुष की आयु जितनी कम होती है उतनी और किसी दुष्कर्म से कम नहीं होती ॥ १३४ ॥

क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम् ॥
नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥ १३५ ॥

यदि अपनी उन्नति की इच्छा हो, तो क्षत्रिय, साँप और विद्वान् ब्राह्मण को अपने से दुबले होने पर भी कभी अपमानित न करे ॥ १३५ ॥

एतत् त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ॥
तस्मादेतत्त्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥ १३६ ॥

इन तीनों का अपमान करने से ये सर्वनाश कर डालते हैं, इस लिये बुद्धिमान् इन्हें कभी अपमानित न करे ॥ १३६ ॥

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ॥
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥१३७॥

कहे हुये रीति से उद्योग करने पर भी यदि धन सम्पत्ति न मिले तो खिन्न न होना चाहिये बलिक उसे दुर्लभ न जान कर और भी उद्योग मरने तक सतत करना चाहिये ॥ १३७ ॥

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ॥
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ १३८ ॥

सत्य बोले. और प्रिय बोले, सत्य भी यदि अप्रिय हो, तो, उसे न कहे, और

प्रिय भी झूँठ न कहे, यही तो सनातन धर्म है ॥ १३८ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत् ॥
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित्सह ॥१३९॥

अभद्र को भी भद्र ही कहे, और भद्र को तो भद्र कहे ही (अर्थात् कभी अभद्र न कहे). किसी के साथ व्यर्थ दुश्मनी और झगड़ा न करे ॥ १३९ ॥

नातिकल्यं नातिसायं नातिमध्यन्दिने स्थिते ॥
नाज्ञातेन समं गच्छेन्नैको न वृषलैः सह ॥ १४० ॥

बहुत सवेरे, ठीक सायंकाल या दोपहर अनजान के और शूद्रों के साथ अकेला न जाय ॥ १४० ॥

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् ॥
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ १४१ ॥

जिसे कोई अङ्ग कम या अधिक है, विद्या नहीं है, अवस्था में अधिक (बड़ा), कुरूप, दरिद्री और हीन जाति का, इन्हें कभी न झिटकारे ॥ १४१ ॥

न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ॥
न चापि पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान् दिवि ॥१४२॥

हाथ और मुँह जूठा हो तो, लघुशङ्का शौच आदि के बाद बिना हाथ पैर धोये गौ, ब्राह्मण और अग्नि को स्पर्श न करे, और आस्मान में चन्द्र, सूर्य और ताराओं को न देखे ॥ १४२ ॥

स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानपस्पृशेत् ॥
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ॥ १४३ ॥

यदि गौ, ब्राह्मण, और अग्नि को अशुद्ध दशा में स्पर्श कर ले, तो, उसे हाथ पैर धोकर आँख, कान, नाक, मुँह, सिर, हृदय, स्कन्ध, पलथी, पैर, और नाभि, इन्हें अपने हाथसे जल लगा कर प्राणायाम करे ॥ १४३ ॥

अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः ॥
रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ॥ १४४ ॥

बिना कष्ट और निमित्त के अपने नाक कान मुँह आँख गुदा बगल के बाल और भाँट इन्हें न छूवे ॥ १४४ ॥

मङ्गलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ॥
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ॥ १४५ ॥

तिलक आदि का धारण, गुरु सेवा आदि सदाचार, बाहर और भीतर की सफाई, इन्द्रिय निग्रह, जप, और अग्नि में होम हमेशा किया करे ॥ १४५ ॥

मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम् ॥
जपतां जुव्हतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥ १४६ ॥

सदा तिलक धारी, गुरु जनों का सेवक, बाहर भीतर साफ, जप और हवन करनेवाला, इन्हे कभी कष्ट नहीं होता ॥ १४६ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ॥
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ १४७ ॥

आलस्य को दूर कर ठीक समय पर वेद ही का अध्ययन करना चाहिये, क्योंकि, ब्राह्मण का मुख्य कर्त्तव्य वेदाध्ययन ही है, और सब गौण है ॥ १४७ ॥

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ॥
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥१४८॥

सदा वेदाध्ययन, बाह्याभ्यन्तर शुद्धि और तपस्या, करता रहे और किसी से द्वेष न करे तो उसे पूर्वजन्म की बतें याद आती है ॥ १४८ ॥

पौर्विकीं संस्मरञ्जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः ॥
ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नते ॥१४९॥

पूर्वजन्म की याद आने से वैराग्य आने पर भी पुनः वेद ही का अध्ययन करता रहे, क्योंकि, सदा वेदाध्ययन करने से मोक्ष मिलता है ॥ १४९ ॥

सावित्राञ्छान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः ॥
पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥ १५० ॥

प्रति अमावस और पौर्णमासी के दिन सावित्री देवता के उद्देश्य से हवन,

और अनिष्ट निवृत्ति के लिये शान्ति होम. अगहन के बाद की तीन कृष्णपक्षों की अष्टमी के दिन अष्टकाश्राद्ध, और नवमी के दिन अन्वष्टकाश्राद्ध अवश्य किया करे ॥ १५० ॥

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ॥
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत् ॥ १५१ ॥

लघुशङ्का, हाथ पैर धोना, जूठा अन्न फेंकना, और स्त्री संभोग, ये सब अग्नि के साथ से दूर करने चाहिये ॥ १५१ ॥

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ॥
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥ १५२ ॥

शौच, मुखमार्जन, दन्तधावन, स्नान, तिलक, देवतापूजन, इन्हें प्रातः) काल ही में करना चाहिये ॥ १५२ ॥

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ॥
ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥ १५३ ॥

मंदिरों में की देवताओं, तपस्वी ब्राह्मणों, राजा, और गुरुजनों का दर्शन अमावस पुनवाँसी को किया करे ॥ १५३ ॥

अभिवादयेद् वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ॥
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ १५४ ॥

गुरुजन घर आने से पहिले उनके पैर पड़कर फिर उन्हे बैठने के लिये आसन देकर हाथ जोडकर सेवा के लिये खड़ा रहे और वे जब जाने लगें तब उनके पीछे २ थोड़ी दूर तक जाय ॥ १५४ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ् निबद्धं स्वेषु कर्मसु ॥
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ १५५ ॥

वेद और शास्त्र में कहे हुये अपने अध्ययन अध्यापन आदि कर्मों के साथ सम्बन्ध रखने वाले धर्मजनक सदाचार का भी आलस्य छोड़ कर अनुष्ठान किया करे ॥ १५५ ॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ॥
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १५६ ॥

सदाचार से आयु, अच्छी सन्तान और अटूट धन मिलते हैं, और सदाचार असगुन का नाश कर देता है ॥ १५६ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ १५७ ॥

अनाचारी मनुष्य की लोक में निन्दा होती है, उसे दुःख और रोग भोगना पड़ता है और उसकी आयु कम हो जाती है ॥ १५७ ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ॥
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १५८ ॥

कोई अच्छा लक्षण न होने पर भी यदि सदाचार संपन्न और श्रद्धालु हो और दूसरे से द्वेष न करता हो, तो ,वह सौ वर्ष जीवित रहता है ॥ ५८॥

यद् यत् परवशं कर्म तत्तद् यत्नेन वर्जयेत् ॥
यद् यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १५९ ॥

जो जो पराधीन काम हो, उसे अवश्य छोड़ दे, और जो अपने आधीन हो उसे अवश्य करे ॥ १५९ ॥

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ॥
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६० ॥

जो पराधीन है सो सब दुःखदायी होता है, और स्वतन्त्र सब कामों से सुख होता है । इसी को तो सुख और दुःख का साधारण लक्षण जानना चाहिये ॥ १६० ॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात् परितोषोऽन्तरात्मनः ॥
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥ १६१ ॥

जिसके करने से अपने चित्त को सन्तोष हो उसे अवश्य करे. और जिसके करने से चित्त को दुःख हो उसे न करे ॥ १६१ ॥

आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् ॥
न हिंस्याद् ब्राह्मणान् गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥१६२॥

आचार्य, व्यास, पिता, माता, गुरु, ब्राह्मण, गौ, और सब जाति के तपस्वी, इन्हें कष्ट कभी न दे ॥ १६२ ॥

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ॥
द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ॥१६३॥

नास्तिकता, वेद की निन्दा, देवताओं की निन्दा, द्वेष, ढोंग, गर्व, क्रोध, और तीक्ष्णता को कभी न करे ॥ १६३ ॥

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैव निपातयेत् ॥
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थं ताडयेत्तु तौ ॥ १६४ ॥

मारने के लिये सिवाय पुत्र और शिष्य के दूसरे पर लाठी न उगारे, और न मारे, किन्तु पुत्र और शिष्य को शिक्षा देने के लिये मार सकते हैं ॥ १६४ ॥

ब्राह्मणायावगुर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ॥
शतं वर्षाणि तामिस्रे नरके परिवर्तते ॥ १६५ ॥

मारने के लिये ब्राह्मण पर लाठी केवल उगारने से भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को सैकड़ों वर्षों तक अन्धियाला नरक वास भोगना पड़ता है ॥ १६५ ॥

ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् ॥
एकविंशतिमाजातीः पापयोनिषु जायते ॥ १६६ ॥

यदि ब्राह्मण को जान बूझ कर तृण से भी मारे तो, २१ दुष्टयोनियों में जन्म लेना पड़ता है ॥ १६६ ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगङ्गतः ॥
दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ १६७ ॥

अपने ही ब्राह्मण की खुचुर निकाल कर उसके शरीर से, (वह न लड़ने पर भी), यदि लोहू बहावे, तो उस मूर्खता से उसे मरने पर बड़ा भारी दुःख भोगना पड़ता है ॥ १६७ ॥

शोणितं यावतः पांसून् संगृह्णाति महीतलात् ॥
तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥ १६८ ॥

ब्राह्मण के शरीर से बहाया हुआ लोहू जमीन की धूलि के जितने कणों को भिगोता है उतने वर्षों तक उस मारनेवाले दुष्ट को परलोक में सियार, कुत्ता, आदि क्रूर जानवर थोड़ा २ खाया करते हैं ॥ १६८ ॥

न कदाचिद् द्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि ॥
न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्स्रावयेदसृक् ॥ १६९ ॥

इसलिये ब्राह्मण को कभी न धमकावे, उसके शरीर में एक तृण भी न लगावे, और न उसके शरीर से लोहू बहावे ॥ १६९ ॥

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ॥
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥ १७० ॥

जो अधर्माचरण करता है, जो असत्य ही से धन संपादन करता है, और सदा हिंसा करने ही में जिसका मन रहता है, उसे लोक में कभी सुख नहीं होता ॥ १७० ॥

न सीदन्नपि धर्मेण मनो धर्मे निवेशयेत् ॥
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन् विपर्ययम् ॥१७१॥

धर्माचरण करते २ दारिद्र्य से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी धर्म में मन लगाये रहना चाहिये, क्योंकि, अधर्माचरण करनेवाले पापियों का शीघ्र नाश होते दिखलाई पड़ता है ॥ १७१ ॥

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ॥
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ १७२ ॥

जैसे गौ लेते ही दूध, मोट चलाना आदि लाभ उससे होने लगता है तैसे अधर्म करतेही उसका शुभ फल नहीं मिलता, किन्तु जैसे बीज बोने बाद धीरे २ जमीन की पैदावारी से लाभ होनेलगता है तैसे धीरे २ यह पाप उसे जड़ मूल से नष्ट करता है ॥ १७२ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ॥

न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥ १७३ ॥

बुरे कर्मका फल यदि अपने को न मिले, तो लड़कों को, उन्हे भी न मिला तो पोतों को अवश्य भोगना ही पड़ता है, वह एक दम निष्फल कभी नहीं हो सकता ॥ १७३ ॥

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ॥
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ १७४ ॥

बुरे कर्म से कुछ समय तक बढ़ती होती है, नौकर चाकर, गौ, घोड़ा गाड़ी आदि भी उसे हो जाते हैं, और शत्रुको जीत भी लेता है, परन्तु अन्त में वह मय बाल बच्चों और धन दौलत के जड़ मूल से नष्ट हो जाता है ॥ १७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत् सदा ॥
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ १७५ ॥

सदा सचाई, अच्छे कामों, सदाचार, और सफाई में आसक्त रहे, और सत्यभाषण करते हुए, किसीको कष्ट न देते, जितना मिले उतने ही में सन्तोष कर छात्रों को उनकी योग्यता के अनुसार अध्यापन किया करे ॥ १७५ ॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ १७६ ॥

यदि धर्म के विरुद्ध धन मिलता हो या कामनाएँ सिद्ध होती हों, तो उन्हें त्यागना ही चाहिये, और उस धर्म कार्य को भी त्यागना चाहिये जिससे अन्त में कष्ट और अपयश मिलने की सम्भावना हो ॥ १७६ ॥

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ॥
न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ॥ १७७ ॥

वृथा किसी वस्तु को हाथ में न ले, वृथा घूमने न जाय, पराई स्त्री की ओर कुदृष्टि से न देखे, किसी की निन्दा न करे, गाली आदि न बके, और किसी के हानि का काम न करे न इच्छा करे किन्तु सिधाई से रहे ॥ १७७ ॥

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ॥
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥ १७८ ॥

जैसी चाल चलन अपने माता पिता और पुरुखों की हो, वैसे ही आप स्वयं भी चले, उससे उसकी कभी हानि न होगी ॥ १७८ ॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ॥
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥ १७९ ॥
मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ॥
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥ १८० ॥

ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, पाहुन, आश्रित, बालक, वृद्ध, बीमार, वैद्य, गोती, सम्बन्धी, बान्धव (मामा, मवसी और फूफा की सन्तान), माता, पिता, बहिन, पतोहू, भाई, बेटा, भार्या, कन्या, और नौकर चाकर, इनसे कभी झगड़ा न करे ॥ १७९ ॥ १८० ॥

एतैर्विवादान् संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
एभिर्जितैश्च जयति सर्वाल्लोकानिमान् गृही ॥१८१॥

इनके साथ झगड़ा न करने से अनजान से भये हुये सब पाप दूर हो जाते हैं, इनके साथ झगड़े में गम खाने से वह ब्रह्म आदि लोकों (जो अब कहे जावेंगे) को जीत लेता है ॥१८१॥

आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः ॥
अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ॥१८२॥
यामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः ॥
सम्बन्धिनो ह्यपां लोके पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥ १८३ ॥
आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकृशातुराः ॥
भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ॥१८४॥
छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ॥
तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासंज्वरः सदा ॥ १८५ ॥

आचार्य ब्रह्मलोक का मालिक है, पिता प्रजापति लोकका पाहुन इन्द्रलोकका,

ऋत्विक् देवलोक के, वह्नि पतोह्नु आदि अप्सरालोक के, बान्धव विश्वेदेव-लोक के, सम्बन्धी वरुणलोक के, माता और मामा भूलोक के, बालक, वृद्ध, कमज़ोर, और बीमार अन्तरिक्ष लोक के मालिक हैं, बड़ा भाई पिता के समान है, भार्या और पुत्र तो अपनी ही आत्मा है, नौकर चाकर अपनी छाया है, और कन्या अत्यन्त कृपापात्र है अर्थात् कन्या पर सदा दया ही करते रहना चाहिये, इसलिये इनके बिगड़ने पर भी शान्ति से सब उनकी बातों को सह लेना चाहिये ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ॥
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ १८६ ॥

दान लेने का सामर्थ्य रहने पर भी जहाँ तक बने उसका मौका न आने दे क्योंकि, दान लेने से ब्राह्मतेज शीघ्रही कम हो जाता है ॥ १८६ ॥

न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे ॥
प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ॥ १८७ ॥

खाने को न रहने पर भी, विना वस्तुओं के लेने की विधि जाने, दान न लेना चाहिये ॥ १८७ ॥

हिरण्यभूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम् ॥
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् ॥ १८८ ॥

दान लेने की विधि न जानने पर भी सुवर्ण, भूमि, घोड़ा, गौ, अन्न, वस्त्र, तिल, और घी दान ले, तो, वह अग्नि में काष्ठ के समान भस्म हो जाता है॥१८८॥

हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ॥
अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ॥१८९॥

सुवर्ण और अन्न दान लेने से आयु क्षीण होती है, भूमि और गौ दान लेने से शरीर क्षीण होता है, घोड़ा दान लेने से आँखें नष्ट होती हैं, वस्त्र दान लेने से चमड़े में रोग होते हैं, घी दान लेने से कान्ति नष्ट होती हैं, और तिल दान लेने से सन्तान नष्ट होती है ॥ १८९ ॥

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥१९०॥

जो तपस्या और वेदाध्ययन नहीं करता वह यदि दान लेने लगे, तो, पत्थर की लौकी से तैरनेवाला उसी के साथ जैसे जल में डूबता है, तैसे वह भी उसी पाप के साथ नरक में जाता है ॥ १९० ॥

तस्मादविद्वान् बिभियाद् यस्मात्तस्मात् प्रतिग्रहात् ॥
स्वल्पकेनाप्यविद्वान् हि पङ्के गौरिव सीदति ॥ १९१ ॥

इस लिये मूर्ख को चाहे जिस किसी वस्तु के दान लेने से डरना चाहिये, क्योंकि थोड़े भी कीच में जैसे गौ फँसती है, तैसे थोड़ा भी पाप होने से मूर्ख को नरक में जाना पड़ता है ॥१९१॥

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैड़ालव्रतिके द्विजे ॥
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥ १९२ ॥

बिडालव्रत और बकव्रत करनेवाले, और मूर्ख ब्राह्मण को जल भी दान न देना चाहिये ॥ १९२ ॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाऽप्यर्जितं धनम् ॥
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ १९३ ॥

सन्मार्ग से कमाया हुआ भी धन यदि वैड़ालव्रतिक, बकव्रतिक, और मूर्ख इन्हें दान दिया जाय, तो उससे दाता और प्रतिग्रहीता (दान लेनेवाला) दोनों को नरकवास भोगना पड़ता है ॥ १९३ ॥

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ॥
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ १९४ ॥

जैसे पत्थर की लौकी से तैरनेवाला मय लौकी के जल में डूबता है तैसे ही ये दोनों दाता और प्रतिग्रहीता साथ ही साथ नरक में जाते हैं ॥ १९४ ॥

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोभदम्भकः ॥
वैड़ालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १९५ ॥

जिसने दिखौआ धर्म कार्य कर धर्म का झण्डा खड़ा किया हो (अर्थात् आप और दूसरों से सर्वत्र अपने धर्म कार्य की प्रसिद्धि करा दी हो), सदा दूसरों के धन की इच्छा करनेवाला, कूटनीति से चलनेवाला, ढोंगी, क्रूर और सबकी निन्दा करनेवाला ब्राह्मण 'बैडालव्रतिक' कहलाता है ॥ १९५ ॥

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ॥
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ १९६ ॥

नम्रता दिखलाने के लिये सदा नीचे देखता हो, क्रूर, मतलबी, धूर्त, और दिखौआ नम्र ब्राह्मण 'बकव्रती' कहलाता है ॥ १९६ ॥

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ॥
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥ १९७ ॥

बकव्रती और वैड़ालव्रती ब्राह्मणों को उन पापों के हेतु गाढ़ अन्धियारे नरक में वास करना पड़ता है ॥ १९७ ॥

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥ १९८ ॥

पाप छुड़ाने के लिये प्रायश्चित्त व्रत को धर्म कार्य के वहाने न करे, पाप छिपा कर व्रत करने से स्त्रियों और शूद्रों को न लुभावे ॥१९८ ॥

प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥
छद्मना चरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ॥ १९९ ॥

ऐसे २ ब्राह्मणों की इस लोक, और पर लोक, दोनों जगह निन्दा होती है, और जो कुछ किसी वहाने से धर्मकार्य किया जाता है उस का फल राक्षस ले लेते हैं, (अर्थात् उन्हें नहीं मिलता) ॥ १९९ ॥

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति ॥
स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते ॥ २०० ॥

ब्रह्मचारी न रहते यदि उसके वेष से जीवन निर्वाह करे, तो ब्रह्मचारियों का सब पाप इसे लगता है, और इसे कुक्कुर, सियार आदि योनि में जन्म लेना पड़ता है ॥ २०० ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ॥
निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥२०१॥

दूसरे की बौली में कभी स्नान न करना चाहिये, क्योंकि, दूसरे

की बौली में स्नान करने से उन के बनवाने वालों के सब पाप इसे लगते हैं ॥ २०१ ॥

यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च ॥
अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥ २०२ ॥

दूसरे के गाड़ी, बिस्तर, आसन, कुँआ, बाग, और घर का बिना उसके दिये ही यदि उपभोग करने लगे, तो, इनके स्वामी का चौथाई पाप इसे लगता है ॥ २०२ ॥

नदीषु देवखातेषु तड़ागेषु सरःसु च ॥
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥२०३॥

नदियों में, तीर्थों में, बड़े बड़े तलावों में, गड़हियों में, या झरने पर सदा स्नान करना चाहिये । २०३ ॥

यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः ॥
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥२०४॥

ब्रह्मचर्य, दया, क्षान्ति (शम), सत्य, अकल्कता (दम्भ न करना), अहिंसा अस्तेय, माधुर्य, और दम, इन यमों का सदा पालन करना चाहिये, स्नान, मौन, उपवास, याग, अध्ययन, इन्द्रिय निग्रह, गुरुसेवा, शौच (सफाई), अक्रोध, और अप्रमाद, इन नियमों का कदाचित् न भी पालन करे तो चल सकता है, बिना यमों के पालन किये केवल नियमों के पालन करनेवाले को दोष लगता है ॥ २०४ ॥

नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा ॥
स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित् ॥२०५॥

मूर्ख, गांव के पुरोहित, स्त्री, और नपुंसक से जो यज्ञ, याग, होम करवाये जाते हैं, उनमें ब्राह्मण को कभी भोजन न करना चाहिये ॥ २०५ ॥

अश्लीकमेतत्साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः ॥
प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ २०६ ॥

जिस कर्म में मूर्ख आदि याजक (ऋत्विक्) होते हैं, उसमें शिष्ट लोगों की

और देवताओं को प्रतिकूलता होती है ॥ २०६ ॥

मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन ॥
केशकीटावपन्नं च पदा स्पृष्टं च कामतः ॥ २०७ ॥
भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया ॥
पतत्त्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च ॥ २०८ ॥
गवा चान्नमुपाघ्रातं घुष्टान्नं च विशेषतः ॥
गणान्नं गणिकान्नं च विदुषां च जुगुप्सितम् ॥ २०९ ॥
स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च ॥
दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ॥ २१० ॥
अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च ॥
शुक्तं पर्युषितं चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥ २११ ॥
चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः ॥
उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्तमनिर्दशम् ॥ २१२ ॥
अनर्चितं वृथामांसमवीरायाश्च योषितः ॥
द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् ॥ २१३ ॥
पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा ॥
शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ २१४ ॥
कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च ॥
सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ २१५ ॥
श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च ॥
रञ्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ २१६ ॥

मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ॥
अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च २१७ ॥

नशे में चूर, क्रोधी, और रोगी, इनका अन्न, जिस अन्न में बाल और कीड़े पड़े हों, जिसे किसी ने पैर लगाया हो, पतित ने देखा हुआ, रजस्वला से छू गया हुआ, पक्षियों ने चाटा, कुत्ते से छू गया, गौने सूंघा, जिसमें घून लगी हो, ऐसा अन्न, बहुतों का और रण्डियों का अन्न, जिस अन्न से विद्वानों को घृणा आती हो; चोर, गानेवाला, बढ़ई, ब्याज बट्टा करनेवाला, जिसने यज्ञ की दीक्षा ली हो, कंजूस, कैदी, अपराधी, नपुंसक, छिनारे स्त्री, और ढोंगी, इनका अन्न, खट्टापन आया हुआ, बासी, शूद्रका, और जूठा, वैद्य, सिकार करनेवाला, क्रूर, जूठा खानेवाला और उग्र, इनका अन्नः जो सवरी के लिये बनाया हो, पंक्ति से किसी के उठजाने पर, दस दिन के भीतर सवरी का, और अपमान से मिला हुआ अन्न, किसी धार्मिक कार्य के उद्देश्य के विना माँस, बालविधवा, शत्रु; नगर, और पतित का अन्न; जिस पर किसी ने छींक दिया हो, उसे, आड़ में दूसरों की निन्दा करनेवाले, असत्य बोलनेवाले, यज्ञका फल बेचनेवाले, नट, दर्जी, कृतघ्न, लोहार, निषाद, नाटकी, सोनार, वेण (बांस की पंखी आदि बनाने वाले 'धुरुड़'), शस्त्र बेचने वाले, सिकार के लिये कुत्ते पालनेवाले, कलवार, धोबी, रङ्गारी, और कसाई का अन्न, जिसके घर चोरी से या खुले आम जार आता हो, और जो सर्वदा स्त्रीके वश हो, उसका अन्न; सूतकियों का अन्न, और जिस अन्न को खाने से संतोष न होता हो, उसे कभी खाना न चाहिये ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ ॥ २१० ॥ २११ ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ २१४ ॥ २१५ ॥ २१६ ॥ २१७ ॥

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥
आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥ २१८ ॥
कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ॥
गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥ २१९ ॥

राजा का अन्न खाने से तेज, शूद्र के अन्न से ब्रह्मतेज (अध्ययन से बढ़ी हुई बुद्धि), सोनारके अन्नसे आयु, और चमार के अन्न से यश, रसोई करनेवाला, पेसराज, बढ़ई आदि कारीगरों के अन्न से सन्तान, और धोबी के अन्न से बल नष्ट होता है, और एक ही समय बहुतों का अन्न खाने से स्वर्गादि उत्तमलोक

से गिर जाता है, अर्थात् अन्य सत्कार्य का फल नष्ट होता है॥ २१८॥ २१६॥

पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ॥
विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥२२०॥

वैद्य का अन्न पीप, छिनार स्त्री का अन्न वीर्य, ब्याज बट्टा करनेवाले का अन्न मल मूत्र, और शस्त्र बेचनेवाले का अन्न थूक आदि के समान है॥२२०॥

य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्तिताः ॥
तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ २२१ ॥

राजा आदि से अतिरिक्त जो अभोज्यान्न (जिनका अन्न निषिद्ध) पहिले क्रम से कहे हैं, उनके अन्न को विद्वान् लोग चमड़े, हड्डियों और बालों के समान कहते हैं॥ २२१ ॥

भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम् ॥
मत्या भुक्त्वा चरेत् कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च ॥ २२२ ॥

इनमें से किसी का अनजान से यदि अन्न खा ले, तो तीन दिन उपवास करना चाहिये, जान कर खा ले, तो एक कृच्छ्रव्रत प्रायश्चित्त करना चाहिये, और वीर्य और मल मूत्र का भक्षण करने पर भी एक कृच्छ्रव्रत प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २२२ ॥

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ॥
आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥ २२३ ॥

विद्वान् को शूद्र का पक्का अन्न नहीं खाना चाहिये, क्योंकि उसे पञ्चमहायज्ञ करने का अधिकार नहीं है। यदि दूसरे से न मिले तो केवल एक दिन के जीवन भर का कच्चा अन्न (सीधा) वह ले सकता है॥ २२३ ॥

श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः ॥
मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥२२४॥

देवताओं ने बड़े विचार करने पर यह निर्णय किया है, कि, विद्वान् भी यदि कञ्जूस है, और ब्याज बट्टा करनेवाला बड़ा दाता भी है, परंतु दोनों का अन्न बराबर है॥ २२४ ॥

तान् प्रजापतिरागत्य मा कृध्वं विषमं समम् ॥
श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ॥ २२५ ॥

उन देवताओं के समीप आकर ब्रह्मा ने उनसे कहा कि जो वास्तव में बराबर नहीं है उसे सम मत करिये, क्योंकि, ब्याज बट्टा करनेवाले दाता का भी अन्न यदि वह श्रद्धा से दे तो पवित्र ही है, जो अश्रद्धा से दे वही केवल निषिद्ध है ॥२२५॥

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥ २२६ ॥

गृहस्थ को दर्श आदि इष्टि और कुँवा, पोखरा तलाव आदि को आलस छोड कर बनवाना चाहिये, क्योंकि सन्मार्ग से कमाये हुए धन से इन्हें श्रद्धापूर्वक करने से अक्षय फल (मोक्ष) मिलता है ॥२२६॥

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् ॥
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥ २२७ ॥

कोई विद्वान् पात्र अपने यहाँ आ जाय तो ऊपर कहे हुए इष्टापूर्तों में से किसी न किसी का प्रसंग निकाल कर बड़े सन्तोष से उसे कुछ दान अवश्य दे ॥ २२७ ॥

यत्किञ्चिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया ॥
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥ २२८ ॥

किसी के मांगने पर न झिझकते उसे कुछ न कुछ अपनी शक्ति के अनुसार देना चाहिये, क्योंकि कदाचित् कोई ऐसे महात्मा भी आ सकते हैं जो सब कष्ट से एक ही समय उद्धार कर दें ॥ २२८ ॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ २२९ ॥

जल दान से तृप्ति, अन्न दान से सदा सुख, तिल दान से अच्छी सन्तान, और दीप दान से नेत्र दृष्टि होती है ॥ २२९ ॥

भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ॥
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ २३० ॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ॥
अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥ २३१ ॥
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ॥
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् ॥२३२॥

भूमि दान करने से भूमि, सुवर्णदान से बहुत आयु, घर दान देने से बड़े बड़े महल, चाँदी दान देने से रूप, वस्त्र दान से चन्द्रलोक में वास, घोड़ा दान देने से अश्विलोक में वास, वृष दान से बहुत धन, गोदान से सूर्यलोक में बास, सवारी और शय्या दान से स्त्री, किसी को अभय दान देने से अधिकार, धान्य देने से सदा सुख, वेद दान अर्थात् पढ़ाने से ब्रह्मरूपता मिलते हैं ॥२३०॥२३१॥२३२॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ॥
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ २३३ ॥

जल अन्न गौ भूमि वस्त्र तिल सुवर्ण और घृत इन सब दानों से ब्रह्मदान (वेदाध्यापन) श्रेष्ठ है ॥ २३३ ॥

येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ॥
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥ २३४ ॥

जो जो दान जिसकी जिसकी अभिलाषा से देता है, उसे दूसरे जन्म में वही २ मिलता है ॥ २३४ ॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च ॥
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥ २३५ ॥

जो सत्कार से दान देता है और जो सत्कार ही से दान लेता है, उन दोनों को स्वर्ग में वास मिलता है, और जो अपमान से दान देता है और जो अपमान होने पर भी दान लेता है उन दोनों को नरक में वास करना पड़ता है ॥ २३५ ॥

न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम् ॥
नार्तोऽप्यपवदेद्विप्रान् न दत्त्वा परिकीर्तयेत् ॥ २३६ ॥

किसी तपस्या को करने पर 'कैसे इस कठिन तपस्या को मैंने किया'

ऐसा आश्चर्य न करे, याग करने पर झूठ न बोले, ब्राह्मणों से सताये जाने पर भी उनकी निन्दा न करे, दान देने पर उसको सबसे कहते न फिरे ॥२३६॥

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ॥ २३७ ॥

झूठ बोलने से यज्ञ, आश्चर्य करने से तपस्या, और कहते फिरने से दान निष्फल होजाते हैं, और ब्राह्मणों की निन्दा करने से आयु कम होती है ॥२३७॥

धर्मं शनैः संचिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः ॥
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २३८ ॥

जैसे चूंटियाँ धीरे २ बाम्बी को बड़ा बनाती हैं तैसे ही परलोक में सुख मिलने के लिये किसी जीव को कष्ट न देते धीरे धीरे धर्म कार्य कर पुण्य बढ़ावे ॥ २३८ ॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ॥
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २३९ ॥

मरने पर माता, पिता, पुत्र, भार्या, और गोती कोई भी सहायता नहीं करते, किन्तु केवल धर्म सहायक रह जाता है ॥ २३९ ॥

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २४० ॥

अकेले ही को उत्पन्न होना पड़ता है, अकेले ही को मरना पड़ता है, अकेले ही को सुख भोगना पड़ता है, और अकेले ही को दुःख भोगना पड़ता है ॥ २४० ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ॥
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ २४१ ॥

मरते ही उस शरीर को लकड़ी और ढेले के समान भूमि पर फेंक कर इष्ट मित्र सब मुंह फेर कर चले जाते हैं, एक केवल धर्म ही उसके साथ २ जाता है ॥२४१॥

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः ॥
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ २४२ ॥

इस लिये परलोक में सहायता मिलने के लिये सदा धीरे२ धर्म का संपादन करना चाहिये, धर्म की सहायता से गाढ़ अन्धियारे नरक से भी तर जाता है॥२४२॥

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ॥
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥ २४३ ॥

सदा धर्माचरण करनेवाले से यदि कोई पाप कर्म हो जाय और उसका वह कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों से नाश कर दे, तो धर्म उस तेजस्वी मनुष्य को मरते ही ब्रह्मरूपता (मोक्ष) दिलाता है ॥ २४३ ॥

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बधानाचरेत्सह ॥
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत ॥ २४४ ॥

कुल की उन्नति करने की इच्छा करनेवाले को अपनेसे अच्छे २ बड़े लोगों से (मैत्री खानपान आदि) सम्बन्धकरना चाहिये, और नीच व छोटे लोगों का सम्बन्ध त्यागना चाहिये ॥ २६४ ॥

उत्तमानुत्तमान् गच्छन् हीनान् हीनांश्च वर्जयन् ॥
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ २४५ ॥

अच्छे अच्छे और बड़े बड़े लोगों से सम्बन्ध करनेवाले और नीच तथा छोटे लोगों का सम्बन्ध त्यागनेवाले ब्राह्मण की उन्नति होती है, और इससे उलटा करनेवाला (बड़े बड़े और अच्छे अच्छे लोगों का सम्बन्ध त्यागनेवाला और नीच तथा छोटे लोगों से सम्बन्ध रखनेवाला) ब्राह्मण कुछ दिन में शूद्र के समान होजाता है ॥ २६५ ॥

दृढ़कारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ॥
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत स्वर्गं तथाव्रतः ॥ २४६ ॥

जो दृढ़ सुकृत सम्पादन करनेवाला, दयालु, शीत और उष्ण को सहन करने वाला, दुष्टों की सङ्गति त्यागनेवाला, हिंसा न करनेवाला और नियमों का पालन करनेवाला हो, उसे इन्द्रियनिग्रह और दान धर्म करने से स्वर्ग प्राप्ति होती है ॥२४६॥

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ॥
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् ॥ २४७ ॥

लकड़ी, जल, मूल, फल, बिना मांगे जो अन्न मिले, शहत और अभय दक्षिणा, इन्हें चाहे जिससे ले सकता है ॥ २४७॥

आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ॥
मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ २४८ ॥

स्वयं या दूसरे के द्वारा न मांगने पर भी यदि कुछ धन सामने लिया कर कोई रख दे, और दे दे, तो, बड़े दुष्ट से भी ऐसा दान ब्राह्मण ले सकता है ॥२४८॥

नाश्नन्ति पितरस्तस्य दश वर्षाणि पञ्च च ॥
न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ २४९ ॥

जो ब्राह्मण ऊपर कहे रीति से मिलनेवाले दान को नहीं लेता, पन्द्रह वर्षों तक उसके पितर श्राद्ध में भोजन नहीं करते और अग्नि हव्य नहीं लेता (अर्थात् उसने किया हुआ श्राद्ध और होम व्यर्थ होजाते हैं ॥ २४९ ॥

शय्यां गृहान् कुशान् गन्धानपः पुष्पं मणीन् दधि ॥
धाना मत्स्यान् पयो मांसं शाकं चैव न निर्नुदेत् ॥२५०॥

शय्या, घर, कुश, चन्दन, जल, फूल, हीरा आदि रत्न, दहि, चवैना, मछली, दूध, मांस, और तरकारी, इन्हें यदि कोई देने लगे, तो, अस्वीकार न करना चाहिये ॥ २५० ॥

गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन् देवताऽतिथीन् ॥
सर्वतःप्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत स्वयं ततः ॥ २५१ ॥

बड़े लोग, भार्या, पुत्र, नौकर चाकर आदियों का क्षुधा आदि कष्टों से उद्धार करने की इच्छा करने वाला, देवता और अतिथियों की पूजा और सत्कार करने वाला ब्राह्मण यदि दान मिले हुए द्रव्य से आप खाय तो, सब से प्रतिग्रह कर सकता है ॥ २५१ ॥

गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्गृहे वसन् ॥
आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन् गृह्णीयात् साधुतः सदा ॥२५२॥

बड़े लोगों (माता पिता आदि) के मरने पर, या उनसे पृथक् होने पर अपनी जीविका के लिए सदा अच्छे लोगों से ही दान लेना चाहिये ॥ २५२ ॥

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥२५३॥

ब्राह्मण आगे आध हिस्सा लेकर खेती करने वाला, वंश परम्परा से जिसके साथ मैत्री हो, अहीर, नाई (हजाम), और जो अपने को सेवक कहे, इनका अन्न भोजन कर सकता है ॥ २५३ ॥

यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं च चिकीर्षितम् ॥
यथा चोपचरेदेनं तथाऽऽत्मानं निवेदयेत ॥ २५४ ॥

सेवक कहलाने वाला शूद्र अपना कुल जाति आदि को, जो काम और जैसे करने की इच्छा हो, उसको (ठीक २) बतला दे ॥ २५४ ॥

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ॥
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ॥ २५५ ॥

कोई नौकर अपने खास जाति कुल नाम और गांव को छिपा कर सज्जनों से यदि अन्यही बतलावे, तो, वह अपनी आत्माको चुरानेवाला चोर लोक में महा पापी होता है ॥ २५५ ॥

वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ॥
तां तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २५६ ॥

सब वस्तुएं शब्द में ही वाच्यत्व सम्बन्ध से रहती हैं, शब्द का मूल वाणी है, और शब्द वाणी ही से निकलते हैं, इसलिये जो वाणी की चोरी करता है वह सबकी चोरी किये समान ही है ॥ २५६ ॥

महर्षिपितृदेवानां गत्वानृण्यं यथाविधि ॥
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः ॥ २५७ ॥

पहिले कही हुई रीति से देवता, पितर, और ऋषियों का ऋण (कर्ज) पञ्च महायज्ञ आदि से दूर (फेड़) कर सब गृहस्थी का बोझ पुत्रपर सौंप कर उ[illegible] हो घर में वास करे ॥ २५७ ॥

एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते [illegible]
एकाकी चिन्तय[illegible] [illegible]तमात्मनः ॥
[illegible] [illegible]ना हि परं श्रेयोऽधिग[illegible]

एकान्तमें अकेले अपने हित (ब्रह्म)का चिन्तन करे, एकान्त में अकेला ब्रह्मचिन्तन करनेवाला मुक्त होजाता है ॥२५८॥

एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती ॥
स्नातकव्रतकल्पश्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥ २५९ ॥

अब तक ब्राह्मण गृहस्थ की सदा के लिये जीविका, और सत्त्वगुण बढ़ाने वाले कल्याणकारी स्नातक के नियम बतलाये ॥ २५९ ॥

अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन् वेदशास्त्रवित् ॥
व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ॥ २६० ॥

इति मनुस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः ।

वेद शास्त्र को जानने वाला विद्वान् इस प्रकार की चाल चलन से रहे, तो, पाप का नाश होकर उसे सदा के लिये मोक्ष मिलता है ॥ २६० ॥

इति श्रीमनुस्मृतिभाषाप्रकाशे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान् स्नातकस्य यथोदितान् ॥
इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभवं भृगुम् ॥ १ ॥
एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥
कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥ २ ॥

भृगुऋषि ने स्नातक गृहस्थ के कहे आचार को सुनकर ऋषियों ने उन महात्मा, तेज से उत्पन्न, भृगुजी को यह कहा, कि, महाराज ! आपने कहे अनुसार ठीक २ अपने २ धर्मों का आचरण करनेवाले विद्वान् ब्राह्मणों का भी पूर्ण आयु होने के पहिले मृत्यु कैसे होता है ? ॥ १ ॥ २ ॥

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन् मानवो भृगुः ॥
श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ॥ ३ ॥

उन महात्मा भृगुजी ने उन ऋषियों से कहा कि जिस दोष से विद्वान् ब्राह्मण भी अल्पायु होते हैं, उसे सुनिये ! ॥ ३ ॥

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ॥
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ॥ ४ ॥

वेदाध्ययन, और अपने अपने धर्मों का आचरण, न करने से, आलस्य, और दुष्ट अन्न भक्षण करने से ब्राह्मणों की मृत्यु होती है ॥ ४ ॥

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ॥
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च ॥ ५ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों को लहशुन, गाजर, प्याज, कुकुरौन्धे की साग और मल मूत्र में उत्पन्न वस्तु खाना न चाहिये ॥ ५ ॥

लोहितान् वृक्षनिर्यासान् वृश्चनप्रभवांस्तथा ॥
शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

पेड़ों का लाल गोंद और दूध, शेलु, और नई बियाई हुई गौ के दूध की यर्फी

कभी भक्षण न करना चाहिये ॥ ६ ॥

वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च ॥
अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च ॥ ७ ॥

विना किसी देवताओं के उद्देश्य के अपने ही लिये बनायी तिल और चावल की खिचड़ी, लपसी, खीर, और मालपुवा, यज्ञ याग के विना मांस, देवताओं के भोग के लिये बने हुए पक्वान्न, और होम के हवि, इन्हें कभी न खाना चाहिये ॥ ७ ॥

अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमेकशफं तथा ॥
आविकं सन्धिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ॥ ८ ॥

दस दिन में की वियाई गौ, ऊँट, घोड़ा, गदहा भेड़ी, जो बदौने उठी और जिसका बछड़ा मर गया हो, इसका दूध पीना न चाहिये ॥ ८ ॥

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना ॥
स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥ ९ ॥

किसी भी जंगली जानवर का, भैंस के अतिरिक्त पशुओं का, और किसी औरत का दूध पीना न चाहिये, और कोई भी वासी वस्तु का भक्षण करना न चाहिये ॥ ९ ॥

दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसम्भवम् ॥
यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ १० ॥

वासी वस्तुओं में दही और उसको बनी हुई अन्य वस्तु खा सकते हैं और फूल, मूल, और फलों की रसीली वस्तुएँ भी वासी खा सकते हैं ॥ १० ॥

क्रव्यादाञ्छकुनान् सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिनः ॥
अनिर्दिष्टांश्चैकशफांष्टिट्टिभं च विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

मुर्दा खानेवाले सब पक्षी, गाँव में रहनेवाले गोला कबूतर आदि पक्षी, एक खुर के जानवर गदहा आदि, जिनका कि वेद ने किसी यज्ञ याग में उपयोग करने नहीं कहा है, और टिट्टिभ, इन्हें न खाना चाहिये ॥ ११ ॥

कलविङ्कं प्लवं हंसं चक्राङ्गं ग्रामकुक्कुटम् ॥
सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुकसारिके ॥ १२ ॥
प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्किरान् ॥
निमञ्जतश्च मत्स्यादान् शौनं वल्लूरमेव च ॥ १३ ॥
बकं चैव बलाकां च काकोलं खञ्जरीटकम् ॥
मत्स्यादान् विड्वराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥ १४ ॥

चिड़िया, कोल पक्षी हंस, चकवा, मुर्गा, सारस, रज्जुवाल, काला कौवा, सुग्गा, मैना, लकड़फोड़वा, बगुला, कोयष्टिकपक्षी, नाखूनों से फाड़ कर खानेवाले पक्षी, गोताखोर पक्षी, इनका मांस, कुत्ते का मांस, सूखा मांस, बक, स्त्रीजाति के बक, कौवा, तय्यर, मछली खाने वाले दूसरे पानी के जानवर, मल मूत्र का भक्षक सुअर, और सब जाति की मछलियों का मांस कभी न खाना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते ॥
मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान् मत्स्यान् विवर्जयेत् ॥१५॥

जो जिसका मांस खाता है वह उसके मांस का भक्षक कहलाता है, मत्स्य के मांस को खानेवाला सर्वमांस भक्षक।कहलाता है, इसलिये मत्स्य का मांस न खाने की विशेष सावधानी रखनी चाहिये ॥ १५ ॥

पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः ॥
राजीवान् सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः ॥ १६ ॥

पाठीन (जिसे बहुत दांत होते हैं) रोहू और राजीव जाति की मछलियाँ, घड़ियाल, और काँटेदार मछली, इन्हें देवपितृकार्य में खिलाने को कहने के कारण उन्हीं कार्यों में निमन्त्रित ब्राह्मण खा सकते हैं, (यजमान नहीं) ॥ १६ ॥

न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ॥
भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान् सर्वान् पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥

जो जानवर सदा अकेले ही घूमा करते हैं सांप आदि, भक्ष्य में के

रहने पर भी यदि उनका नाम जाति आदि ज्ञात न हो ऐसे पशु और पक्षी, तथा पाँच पाँच नाखूनवाले बन्दर आदि को भक्षण न करना चाहिये ॥ १७ ॥

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ॥
भक्ष्यान् पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥ १८ ॥

पाँच नाखूनवाले प्राणियों में सेधा, काटेदार पक्षी, गिरगिटान, गेण्डा, कछुआ, और खरगोश, इनका और ऊँट को छोड़कर दूसरे (जिन्हें एक ही ओर ऊपर या नीचे दान्त होते हैं) जानवरों का मांस खाने योग्य होता है ॥ १८ ॥

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ॥
पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद् द्विजः ॥१९॥

कुकुरौन्धा शहरी सुअर, लहशुन, मुर्गा, प्याज और गाजर, इन्हें जान कर खाने से ब्राह्मण पतित होता है ॥ १९ ॥

अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥
यतिचान्द्रायणं वाऽपि शेषेषूपवसेदहः ॥ २० ॥

१९ वें श्लोक में कहे कुकुरौन्धा आदि छमें से किसी का अनजान से भक्षण किया जाय तो [1] कृच्छ्र सान्तपन, या [2] यतिचान्द्रायण व्रत प्रायश्चित्त करना चाहिये, और इसके पहिले कहे लाल गोंद आदि वस्तुओं का अनजान से ही भक्षण किया हो, तो, तीन दिन उपवास करना चाहिये ॥ २० ॥

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥
अज्ञातभुक्तशुध्द्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥ २१ ॥

'अनजान' से कदाचित् निषिद्ध वस्तु भक्षण कर ली गई होगी, इस हेतु प्रतिवर्ष १ कृच्छ्र तो ब्राह्मण को प्रायश्चित्त करना ही चाहिये, और यदि जानकर कोई वस्तु खा ली हो, तो अवश्य ही १ कृच्छ्र प्रायश्चित्त प्रतिवर्ष करना चाहिये ॥२१॥

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः ॥

१—कृच्छ्र सान्तपनव्रत ११ अध्याय २१२ श्लोक में स्पष्ट है । २ यतिचान्द्रायण ११ अध्याय २१७ श्लोक में स्पष्ट है ।

भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत् पुरा ॥ २२ ॥

ब्राह्मण यज्ञ और अपने माता पिता आदि पोष्यवर्गों का पोषण करने के लिये उन प्राणियों की हिंसा कर सकता है जिसका भक्षण शास्त्र में निषिद्ध न हो, अगस्त्य ऋषि पहिले कभी कभी ऐसा किया करते थे ॥ २२ ॥

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् ॥
पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥ २३ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रियों के यज्ञों में पहिले बराबर भक्ष्य पशु और पक्षियों के मांस के पुरोडाश हुआ करते थे ॥ २३ ॥

यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् ॥
तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत् ॥ २४ ॥

घी या तेल से बनी हुई वस्तु, खीर आदि, और होम का शेष, इन्हें बासी होने पर भी खा सकते हैं, यदि इनमें किसी प्रकार का दोष उत्पन्न न हुआ हो ॥ २४ ॥

चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः ॥
यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया ॥ २५ ॥

जव, गेहूँ, और दूध की घी या तेल के विना बनी हुई वस्तुओं को बहुत दिन बीतने पर भी ब्राह्मण खा सकते हैं ॥ २५ ॥

एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशेषतः ॥
मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने ॥ २६ ॥

अब तक ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों को क्या खाना चाहिये, यह कहा, अब मांस के भक्षण की विधि कहता हूँ ॥ २६ ॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ॥
यथाविधिं नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥ २७ ॥

ब्राह्मण को मांस खाने की इच्छा हो तो वह, यज्ञ याग आदि कर्मों में जिसका मन्त्रों से जल छिड़क कर प्रोक्षण संस्कार किया गया हो,

श्राद्ध में, मधुपर्क में, और क्षुधा से प्राण निकला जाता हो उस समय, मांस को खा सकता है ॥ २७ ॥

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत् ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ २८ ॥

ब्रह्माजी ने पशु पक्षी आदि जङ्गम, और जव गेहूँ आदि स्थावर सब वस्तुओं को प्राणियों के खाने ही के लिये बनाया है, इसलिये जीव अपने प्राण की रक्षा के लिये तो सब वस्तु खा सकता है ॥ २८ ॥

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः ॥
अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः ॥ २९ ॥

धान चावल आदि जीवों का भक्ष्य है, जीवों में भी हरिण आदि पशु सेर भालु मनुष्य आदि जीवों के भक्ष्य है, जिन्हें हाथ नहीं होते ऐसे जीव हाथवाले अर्थात् मनुष्यों के भक्ष्य हैं, और डरपोक बलवान् शूरों के भक्ष्य हैं ॥ २९ ॥

नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान् प्राणिनोऽहन्यहन्यपि ॥
धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च ॥ ३० ॥

अपने अपने भक्ष्य को प्रतिदिन भी खाने में दोष नहीं है, क्योंकि, भक्ष्य और भक्षक, दोनों को ब्रह्माजी ने ही उत्पन्न किया है ॥ ३० ॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः ॥
अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३१ ॥

यज्ञ ही में मांस भक्षण करना यह देवताओं का काम है, और चाहे जिस समय मांस भक्षण करना राक्षसों का काम है ॥ ३१ ॥

क्रीत्वा स्वयं वाऽप्युत्पाद्य परोपकृतमेव वा ॥
देवान् पितॄंश्चार्चयित्वा खादन् मांसं न दुष्यति ॥ ३२ ॥

मोल खरीदे हुए, स्वयं बनाये हुए, और दूसरे ने दिये हुए मांस को देवता और पितरों को समर्पण कर यदि खाय, तो, दोष नहीं लगता ॥ ३२ ॥

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः ॥
जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः ॥ ३३ ॥

मांस खाने की विधि जाननेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य को बिना किसी आपत्ति के विधि रहित मांस भक्षण न करना चाहिये ॥ ३३ ॥

न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः ॥
यादृशं भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः ॥ ३४ ॥

विना किसी देवता या पितरों के उद्देश्य के, व्यर्थ मांस खानेवाले को जितना पाप परलोक में भोगना पड़ता है, उतना तो पैसे की लालच से खास मारनेवाले को भी नहीं पड़ता ॥ ३४ ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः ॥
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥ ३५ ॥

श्राद्ध या मधुपर्क में निमन्त्रित ब्राह्मण जो मांस नहीं खाता, उसे मरने पर २१ जन्म बराबर पशु योनि में उत्पन्न होना पड़ता है ॥ ३५ ॥

असंस्कृतान् पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदाचन ॥
मन्त्रैस्तु संस्कृतानद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः ॥ ३६ ॥

जिन पशुओं का मन्त्रपूर्वक यज्ञ में संस्कार न हुआ हो, उन्हें ब्राह्मण को कभी न खाना चाहिये, किन्तु संस्कारों से संस्कृत पशुओं का मांस अपने कुल की पुरानी रीति के अनुसार खाना चाहिये ॥ ३६ ॥

कुर्याद् घृतपशुं सङ्गे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा ॥
न त्वेव तु वृथा हन्तुं पशुमिच्छेत् कदाचन ॥ ३७ ॥

पशुओं के भक्षण में प्रीति हो, तो, घी या पिसान का पशु बनाकर भक्षण क्रिया करे परंतु वृथा पशु मारने की कभी इच्छा न करे ॥ ३७ ॥

यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो ह मारणम् ॥
वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥ ३८ ॥

देवता या पितरों के उद्देश्य के बिना केवल अपने ही लिये जो पशु हिंसा

करता है, उसे मृतपशु को जितने रोम हों, उतने जन्म और मरण का कष्ट भोगना पड़ता है ॥ ३८ ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥
यज्ञश्च भूत्यै सर्वस्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥

ब्रह्माजी ने स्वयं यज्ञ ही के लिये पशुओं को उत्पन्न किया है, और यज्ञ से इस सम्पूर्ण जगत् का कल्याण होता है, इस हेतु यज्ञ के लिये की हुई हिंसा में कोई दोष नहीं है ॥ ३९ ॥

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा ॥
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥४०॥

यज्ञ के लिये नष्ट जव, धान आदि ओषधी, पशु, वृक्ष, मत्स्य आदि जानवर, और पक्षी, को दूसरा उत्तम जन्म मिलता है ॥ ४० ॥

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ॥
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥

मधुपर्क, यज्ञ, दैवकर्म, और श्राद्ध, इन्हीं कामों के लिये पशु की हिंसा करे, इनमें अन्य किसी अपने या दूसरे के लिये कभी पशु की हिंसा न करे यह मनु की आज्ञा है ॥ ४१ ॥

एष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः ॥
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥

वेद और शास्त्र का ज्ञाता विद्वान् द्विज मधुपर्क, यज्ञ, देवकर्म और श्राद्ध में पशु हिंसा करे, तो, वह उस मरे पशु, और अपने को सद्गति दिलाता है ॥४२॥

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान् द्विजः ॥
नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥ ४३ ॥

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, और वानप्रस्थ, वेद में न कही हुई हिंसा आपत्तिकाल में भी न करे ॥ ४३ ॥

या वेदविहिता हिंसा नियताऽस्मिंश्चराचरे ॥
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ ४४ ॥

स्थावर वृक्ष आदि, और जङ्गम पशु आदिकी वैदिक हिंसाका अहिंसा ही समझना चाहिये, क्योंकि, वेदही से तो धर्म निकला है ॥ ४४ ॥

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ॥
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य अपने सुख के लिये गरीब विचारे जीवोंको हत्या करता है, वह जीते ही मरे समान है, और उसे कहीं सुख नहीं मिलता ॥ ४५ ॥

यो बन्धनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति ॥
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥

[जो] प्राणियों को बान्धने या मारने का कष्ट देना नहीं चाहता किन्तु सबके हित की इच्छा करता है, उसे बहुत सुख मिलता है ॥ ४६ ॥

यद् ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च ॥
तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥ ४७ ॥

जो कभी किसी की हिंसा नहीं करता, उसको, वह जिसे विचारता है, करता है, और जिसमें मन लगाता है, उस सब में विना परिश्रम के सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ४७ ॥

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ ४८ ॥

विना प्राणियों की हिंसा किये मांस कहीं उत्पन्न नहीं होता, और प्राणियों की हिंसा से स्वर्ग सुख नहीं मिल सकता, इस हेतु मांस भक्षण ही का वर्जन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ॥
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ४९ ॥

मांस की उत्पत्ति शुक्रशोणित आदि घृणित पदार्थों से होती है, और उसके लिये प्राणियों की हिंसा और बन्धन करना पड़ता है, यह देख कर सभी मांस के भक्षण का वर्जन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत् ॥

स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ॥५०॥

जैसे पिशाच, विधि के विना ही मांस भक्षण करता है, तैसे जो मांस भक्षण नहीं करता उस पर लोगों की प्रीति होती है, और उसे कभी रोग नहीं होते ॥५०॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ॥
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ ५१ ॥

हिंसा करने की संमति देनेवाला, कैंची आदि शस्त्रों से एक एक अङ्ग काटकर पृथक् करनेवाला, वध करनेवाला, मांस खरीदनेवाला, वेचनेवाला, पकानेवाला, और भक्षण करनेवाला, ये सभी घातक अर्थात् हिंसा करने के दोषभागी होते हैं, इस लिये समति, अङ्गच्छेदन, वध, क्रय, विक्रय, पाचन और भक्षण कुछ भी न करना चाहिये ॥ ५१ ॥

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ॥
अनभ्यर्च्य पितॄन् देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥५२॥

देवता और पितरों को अर्पण किये विना ही जो अपने शरीर को मोटा करने के लिये दूसरेके मांस का भक्षण करना चाहता है उससे अधिक पाप करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ५२ ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ॥
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥५३॥

जो सौ वर्ष तक बराबर प्रतिवर्ष अश्वमेध याग करता है, और जो कभी मांस भक्षण नहीं करता, उन दोनों का पुण्य समान ही है ॥ ५३ ॥

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ॥
न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ ५४ ॥

जो फल मांस न खाने से होता है, वह, पवित्र फल, मूल, सॉवा आदि ऋषियों का अन्न भक्षण करने से भी नहीं होता ॥ ५४ ॥

मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ॥
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५५ ॥

जिसका मांस यहां मैं खा रहा हूँ, वह परलोक में मुझे भक्षण करेगा, इस

लिये मांस का विद्वानों ने 'मांस' यह नाम कहा है ॥ ५५ ॥

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ॥
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ५६ ॥

मांस भक्षण, मद्यपान, और विषयोपभोग, यदि शास्त्रोक्त विधि से किया जाय तो किसी को दोष नहीं लगता, क्योंकि, प्राणियों की इनमें प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है, परन्तु यदि इनका वर्जन किया जाय, तो, बड़ा भारी फल होता है, इसलिये इनका वर्जन ही करना चाहिये ॥ ५६ ॥

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ॥
चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥ ५७ ॥

अब, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अनुलोम जाति, प्रतिलोम जाति, इन सब का क्रम से ठीक २ आशौच (छूत) और वस्तु की शुद्धि की विधि कहता हूँ ॥ ५७ ॥

दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूड़े च संस्थिते ॥
अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥ ५८ ॥

दान्त आने पर, उसके बाद, मुण्डन, और यज्ञोपवीत संस्कार होने पर, और शूद्र आदि का विवाह संस्कार होने पर यदि मरजाय, तो, उसके नाती और गोती सबको आशौच लगता है ॥ ५८ ॥

दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥
अर्वाक् संचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव च ॥ ५९ ॥

किसी के मरने से उसके सपिण्डों को (गोतियों को) दस दिन, चार दिन, तीन दिन, और एक दिन आशौच लगता है ॥ ५९ ॥

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥

---

(१) एक दिन आशौच उसी को लगता है, जो कि, विद्वान् और अग्निहोत्री होता है, केवल विद्वान् या केवल अग्निहोत्री को तीन दिन, अग्निहोत्री न हो और विद्या भी न हो किन्तु केवल स्मार्ताग्नि ही हो, उसे ४ दिन, और जो अत्यन्त मूर्ख हो, उसे दस दिन आशौच लगता है, ऐसी व्यवस्था है, परन्तु इस कलियुग में दस ही दिन सब को आशौच लगता है ।

समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ६० ॥

अपने से ऊपर के सात पुरुष और नीचे के सात पुरुष इस प्रकार १५ पुरुष सापिण्ड्य रहता है सात २ के आगे सापिण्ड्य नहीं रहता, समानोदकभाव तो जब तक अपने कुल के मनुष्य का जन्म और नाम ज्ञात हो तब तक रहता है (क्योंकि, सात २ पुरुष तक पिण्ड और पिण्ड लेप, और उसके आगे जन्म और नाम का जहाँ तक पता चले, वहाँ तक जल दिया जाता है ॥ ६० ॥

यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥
जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणं शुद्धिमिच्छताम् ॥ ६१ ॥

जिन्हे खूब शुद्धि की इच्छा हो, उन्हे, मरने पर जैसा दस दिन का आशौच कहा है, वैसेही अपने कुल में किसी की उत्पत्ति होने से भी दस दिन आशौच का पालन करना चाहिये ॥ ६१ ॥

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ॥
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ ६२ ॥

मरण निमित्त आशोच (छूत) सब गोतियों को समान होता है, और जन्म निमित्त आशौच (छूत) केवल माता और पिता ही को लगता है, उसमें भी माता को दस दिनका पूर्ण आशौच लगता है और पिता का स्नान करने से छूट जाता है ॥ ६२ ॥

निरस्य तु पमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुध्यति ॥
वैजिकादभिसम्बन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् ॥ ६३ ॥

विषयोपभोग के विना भी यदि इच्छा से अपना वीर्यपात करे, तो, उसको स्नान से शुद्धि होती है, तब उसी वीर्य से यदि बालक उत्पन्न हो, तो, तीन दिन आशौच लगना ही चाहिये ॥ ६३ ॥

अन्हा चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ॥
शवस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ॥ ६४ ॥

जो दूर के भी गोती शव (मुर्दे) को स्पर्श करते हैं, उन्हे दस दिन तक आशौच लगता है, और जल देनेवाले अर्थात् १५ पुरुष के आगे के लोगों को ३ दिन

आशौच लगता है ॥ ६४ ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ॥
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥ ६५ ॥

गुरु के मरने पर उसकी क्रिया यदि शिष्य करे, तो, उसे भी उनके गोतियों के समान ही दस दिन का आशौच लगता है, और ग्यारहवें दिन शुद्धि होती है ॥ ६५ ॥

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति ॥
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ६६ ॥

चार मास तक के गर्भ का यदि स्राव हो तो, तीन मास तक ३ दिन, और चतुर्थ मास में चार दिन का अशौच उस स्त्री को लगता है, और रजस्वला स्त्री को रज निकलना बन्द होने तक अर्थात् तीन दिन तक आशौच (छूत), और चतुर्थ दिन में छूत न रहने पर भी दैव पित्र्य कार्यमें अनधिकार रहता है, और पाँचवे दिन स्नान करने से शुद्धि होती है ॥ ६६ ॥

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ॥
निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६७ ॥

जिन बालकों का मूड़न न हुआ हो, उनके मरने से गोतियों को एक दिन छूत लगती है, और मूड़न होने पर ३ दिन छूत लगती है ॥ ६७ ॥

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ॥
अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचनादृते ॥ ६८ ॥
नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया ॥
अरण्ये काष्ठवत्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥ ६९ ॥

दो वर्ष की अवस्था तक का बालक मरने से उसका शरीर गोतियों को गाँव के बाहर पवित्र भूमि में माला फूल वस्त्र आदि चढ़ा कर गाड़ देना चाहिये, न उसकी दाहक्रिया करनी चाहिये, न उसे तिलाञ्जलि देना चाहिये, किन्तु उसे जङ्गल में लकड़ी के समान फेंक कर ३ दिन आशौच मानना चाहिये ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ॥
जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥ ७० ॥

३ वर्ष तक के बालक की किसी प्रकार की क्रिया (दाह तिलाञ्जलि आदि) न करनी चाहिये, अथवा जिसे दान्त आगये हों, या जिस बालक का नाम करण हो गया हो उसकी क्रिया गोती कर सकते हैं ॥ ७० ॥

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ॥
जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ७१ ॥

सहाध्यायी (साथ पढ़नेवाला) मरने से १ दिन छूत लगती है, और समानोदक को बालक उत्पन्न होने से तीन दिन केवल कर्मानधिकार रहता है ॥७१॥

स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ॥
यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति तु सनाभयः ॥ ७२ ॥

विवाहके पूर्व में वाग्दानके पश्चात् कन्या मरनेसे उसके पतिके गोतियों को ३ दिन और पिताके गोतियोंको ३ दिन छूत लगती है ॥ ७२ ॥

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम् ॥
मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥७३॥

आशौचियों को अनोना और मांस रहित भोजन करना चाहिये, तीन दिन तक नदी आदि में गोता लगा कर स्नान करना चाहिये, और अकेले पृथक् शय्या पर सोना चाहिये ॥ ७३ ॥

सन्निधावेष वै कल्पः शावाशौचस्य कीर्तितः ॥
असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः सम्बन्धिबान्धवैः ॥ ७४ ॥

अभी तक कहे हुये आशौच को एक ही गांव में जन्म मरण हो तो समझना चाहिये, और दूर गांव में जन्म और मरण होने से नाती गोतियों को लगनेवाले आशौच की विधि अब कहता हूँ ॥ ७४ ॥

विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ॥
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥

कहीं बाहर जाकर गोती मरने से दस दिन के पूर्व यदि ज्ञात हो, तो, ज्ञात

नेके समय से उसके मरण से दस दिन तकके वाकी दिन आशौच लगता है ॥७५॥

अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥
संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति ॥ ७६ ॥

यदि दस दिन होने के वाद ज्ञात हो, तो, ३ दिन आशौच लगता है, और १ वर्ष के वाद ज्ञात होने से केवल स्नान से शुद्धि होती है ॥ ७६ ॥

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ॥
सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥ ७७ ॥

दस दिन होने के वाद यदि किसी गोती का मरण या जन्म ज्ञात हो, तो, सचैल (पहिने हुए वस्त्रों को लिये हुए) स्नान करने से शुद्धि होती है ॥ ७७ ॥

बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते ॥
सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुध्यति ॥ ७८ ॥

वालक (जिसे दाँत न आये हों) वहुत दूर देश में गोती, और सात पुरुष के आगे के मनुष्य के मरने की खवर यदि उनके २ आशौच के दिन वीतने के वाद मिले, तो, सचैल स्नान करने से उसी समय शुद्धि होती है ॥ ७८ ॥

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ॥
तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥७९॥

किसी गोती के दस दिन में ही दूसरे गोती का जन्म या मरण हो, तो पहिले जन्मे या मरे हुए ही के दस दिनों से दूसरे के जन्म और मरण के आशौच की भी निवृत्ति होजाती है ॥ ७९ ॥

त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ॥
तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥ ८० ॥

आचार्य मरने से शिष्य को ३ दिन, आचार्य के पुत्र और भार्या मरने से १ दिन आशौच लगता है ॥ ८० ॥

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥

मातुले पक्षिणीरात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥ ८१ ॥

पड़ोसी विद्वान् के मरने से तीन दिन, मामा, शिष्य, ऋत्विक् और ममेरे फुफेरे और मवसेरे भाई के मरनेसे पक्षिणी[1] आशौच लगता है ॥ ८१ ॥

प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ॥
अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ॥ ८२ ॥

अपने देश का राजा, मूर्ख घर में, और गुरु मरने पर दिन में मरण होने से सायंकाल तारों के उदय तक, और रात्रि में मरण होने से प्रातःकाल सूर्योदय तक, आशौच लगता है ॥ ८२ ॥

शुध्येद्विप्रो दशाहेन, द्वादशाहेन भूमिपः ॥
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ ८३ ॥

उपनयन या विवाह संस्कार होने के बाद मरे तो ब्राह्मण की दस दिन, क्षत्रिय की बारह दिन, वैश्य की पन्द्रह दिन, और शूद्र की १ महीने (३० दिन) के बाद शुद्धि होती है ॥ ८३ ॥

न वर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः ॥
न च तत्कर्म कुर्वाणः स नाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥८४॥

जिसके लिये जितने दिन आशौच कहा है उसको उससे अधिक आशौच विश्रान्ति की इच्छा से न मानना चाहिये, और आशौच रहने पर भी सायंप्रातः अग्निहोत्र होम करना न रोके, क्योंकि, अग्निहोत्र होम करते समय पुत्र आदि किसी भी गोती को आशौच नहीं रहता ॥ ८४ ॥

दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा ॥
शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति ॥ ८५ ॥

चाण्डाल, रजस्वला, पतित (जो अपने जाति से बाहर किया गया है),

---

(१) नोट—रात्रि में मरने से वह रात और दूसरी दिनरात, और दिन में मरने से वह दिनरात और दूसरा केवल दिन पक्षिणी है। परन्तु उस दिन उपवास करने ही से रात्रि में शुद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं।

सवरी, और मुर्दे को, तथा इन्हें जिसने छुआ हो, उसे छूने पर स्नानसे शुद्धि होती है ॥ ८५ ॥

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने ॥
सौरान् मन्त्रान यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः ॥ ८६ ॥

आचमन प्राणायाम आदि शुद्धि की विधि से शुद्ध होकर किसी सत्कार्य करते समय चाण्डाल आदि अशुद्धों का दर्शन होजाय, तो " उदुत्यं जातवेदसम् " इत्यादि सूर्य के मन्त्र, और " पवमानः सुवर्जनः " इत्यादि शुद्धि के सूक्तोंका जप करने से शुद्धि होती है ॥ ८६ ॥

नारं स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ॥
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥ ८७ ॥

ब्राह्मण प्रेमवश यदि मनुष्य की हड्डी को स्पर्श करे तो स्नान से उसकी शुद्धि होती है, और विना प्रेम के एकाएक छू जाय, तो, केवल आचमन, गौ को स्पर्श, और सूर्य का दर्शन, करने ही से शुद्धि होजाती है ॥ ८७ ॥

आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् ॥
समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥ ८८ ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त होने तक किसी की अन्त्येष्टि (क्रिया) न करे, और समाप्त होने पर ब्रह्मचर्य दशा में यदि कोई अपना सपिण्ड (गोती) मरा हो, तो तीन दिन आशौच का पालन करे ॥ ८८ ॥

वृथासङ्करजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ॥
आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया ॥ ८९ ॥
पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः ॥
गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥ ९० ॥

जाति से बहिष्कृत होने से जिनका जीवन व्यर्थ हो गया हो, हीन जाति के पुरुष से उच्च जाति की स्त्री में जिसका जन्म हो, झूठे ही संन्यासी का वेष जिन्होंने धारण किया हो, और जिन्होंने आत्महत्या करली हो, उनकी क्रिया न करनी चाहिये, पाखण्ड करनेवाली, स्वेच्छाचारी, गर्भपात करानेवाली,

पति से द्वेष करनेवाली, और मद्यपान करनेवाली स्त्रियों की भी क्रिया न करनी चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ॥
निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥ ९१ ॥

आचार्य, उपाध्याय, पिता, माता, और गुरु इनकी क्रिया करने पर भी ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य व्रत नष्ट नहीं होता ॥ ९१ ॥

दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ॥
पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥ ९२ ॥

शूद्रका शव गांवके दक्षिण द्वारसे, वैश्यका पश्चिम, क्षत्रियका उत्तर, और ब्राह्मणका पूर्व द्वार से (श्मशान में) ले जाना चाहिये ॥ ९२ ॥

न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ॥
ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥ ९३ ॥

राजा, ब्रह्मचारी, सदा चान्द्रायण आदि व्रत करनेवाले, और याग में जिनको दीक्षा हुई हो, उन्हें अपने २ काम करते समय आशौच (छूत) नहीं लगता, क्योंकि, स्वर्ग सुख की सदा इच्छा करने से वे सदा ब्रह्मरूप (अर्थात् निष्पाप) रहते हैं ॥ ९३ ॥

राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते ॥
प्रजानां परिरक्षार्थमासनं चात्रकारणम् ॥ ९४ ॥

राजगद्दी पर बैठे हुये राजाकी किसी भी गोती के मरने पर उसी समय शुद्धि होती है, क्योंकि, राजगद्दी से ही प्रजाओं की रक्षा और पालन पोषण हुआ करता है ॥ ९४ ॥

डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ॥
गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥

बिना राजा के होनेवाले युद्ध में, बिजली से, राजा की आज्ञा से, और गौ और ब्राह्मण की रक्षा के लिये, मरे हुये मनुष्य का आशौच केवल उसी समय रहता है, और राजा जिसके शुद्ध होने की इच्छा करता है उसकी उसी समय

शुद्धि होती है ॥ ९५ ॥

सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ॥
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ ९६ ॥

क्योंकि, राजा सोम (चन्द्र), अग्नि, सूर्य, वायु, इन्द्र, कुबेर, वरुण, और यम, इन आठ लोकपालों के शरीर को धारण करता है, (अर्थात् राजा इन्हीं का स्वरूप है) ॥ ९६ ॥

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचं विधीयते ॥
शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥ ९७ ॥

राजा सब लोकपालों का रूप रहने से, उसे बिलकुल आशौच नहीं लगता, क्योंकि, लोकपालों से शुद्धि की उत्पत्ति और अशुद्धि का नाश होते हैं ॥ ९७ ॥

उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च ॥
सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथा शौचमिति स्थितिः ॥ ९८ ॥

लड़ाई में तलवार आदि शस्त्रों से पीठ न दिखलाते हुये मरने से, उसे उसी समय ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ का फल मिलता है, और उसके गोतियों की उसी समय आशौच निवृत्ति (शुद्धि) होती है ॥ ९८ ॥

विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम् ॥
वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥ ९९ ॥

सपिण्ड की क्रिया करनेके बाद ब्राह्मण, जल का, क्षत्रिय घोड़ा और शस्त्र का, वैश्य बैलों की लगाम और जुवा का, और शूद्र लाठी का स्पर्श करने से शुद्ध होता है ॥ ९९ ॥

एतद्वोऽभिहितं शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः! ॥
असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ! ॥ १०० ॥

अभी तक आप लोगों से मैने गोतियों के मरने से लगनेवाला आशौच कहा, अब नातेदार और रिश्तेदारों के मरने से लगनेवाले आशौच की विधि सुनियेगा ॥ १०० ॥

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धवत् ॥
विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥१०१॥
यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुध्यति ॥
अनदन्नन्नमन्हैव न चेत्तस्मिन् गृहे वसेत् ॥ १०२ ॥

जिसका अपने से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है, उसकी, और अपने माता के भाई बन्दों की अन्त्येष्टि क्रिया करने से तीन दिनके बाद शुद्धि होती है यदि आशौच में उन्हीं का अन्न खाय, तो, दस दिन के बाद और न उनका अन्न खाता हो, और न उनके घर रहता हो, तो एकही दिन से शुद्धि होती है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ॥
स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति॥१०३॥

जाति के या परजाति के मुर्दे के साथ इच्छा से श्मशान तक जाने से सचैल स्नान, अग्नि का स्पर्श, और घी का प्राशन करने से शुद्धि होती है ॥ १०३ ॥

न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत् ॥
अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥१०४ ॥

ब्राह्मणों के रहते ब्राह्मण का मुर्दा श्मशान में शूद्र को न ले जाने दे, क्योंकि, शूद्र के स्पर्श से दूषित होने से उस शरीर की अग्नि में आहुति (होम) पड़ने पर भी उसे स्वर्ग नहीं मिल सकता ॥ १०४ ॥

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपाञ्जनम् ॥
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥१०५॥

ज्ञान, तपस्या, अग्नि, आहार, मिट्टी, मन, जल, गृह आदि का लीपना, पोतना, वायु, यज्ञ, याग, सूर्य, और काल, ये सब मनुष्योंकी शुद्धि को करने वाले हैं ॥ १०५ ॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ॥
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः॥ १०६ ॥

सब शुद्धियों में धन की शुद्धि (अर्थात् किसी का भी पैसा अपनी ओर बाकी न रहने देना) सब से बढ़ कर है, क्योंकि, वही तो शुद्ध है, जिसको किसी का ऋण न हो, न कि केवल मिट्टी और जल से बाहर की सफाई रखने वाला और दूसरों का देनदार ॥ १०६ ॥

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ॥
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥ १०७ ॥

विद्वानों की क्षमा से, बुरे काम करनेवालोंको दान से, गुप्तपापियों की जप से, और वैदिकों की तपस्या से चित्त शुद्धि होती है ॥ १०७ ॥

मृत्तोयैः शुध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुध्यति ॥
रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥ १०८ ॥

मल मूत्र आदि अपवित्र वस्तु जिस पात्र आदि में लगी हो, उसकी मिट्टी और जल से, नदी की वेग से बहनेसे, कामवासना होने से जिसका मन व्यभिचार में प्रवृत्त हुआ हो, उस स्त्री की रजस्वला होनेसे, और ब्राह्मण की संन्यासाश्रम लेनेसे शुद्धि होती है ॥ १०८ ॥

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ॥
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥१०९॥

शरीरकी जलसे, मनकी सचाईसे, चित्तकी विद्या और तपस्यासे, और बुद्धि की ज्ञानसे शुद्धि होती है ॥ १०९ ॥

एष शौचस्य वः प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः ॥
नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् ॥११०॥

शरीरकी शुद्धिकी यह विधि आपसे मैंने कही, अब नानाप्रकारकी वस्तुओंकी शुद्धिका निर्णय सुनिये ! ॥ ११० ॥

तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ॥
भस्मनाऽद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ १११ ॥

सोना आदि धातु, हीरा आदि रत्न, और सब प्रकारके पत्थरोंकी वस्तुएँ, इनकी शुद्धि राखी, जल, और मिट्टीसे विद्वानोंने कही है ॥ १११ ॥

निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति ॥
अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥ ११२ ॥

जिसमें किसी का लेप न लगा हो, ऐसा सोने, चाँदी और पत्थर का पात्र, तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले शङ्ख सीप आदि जलसे शुद्ध होते हैं ॥ ११२ ॥

अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्बभौ ॥
तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः ॥ ११३ ॥

सोने और चाँदीकी उत्पत्ति जल और अग्निके संयोगसे होती है, इसीलिये उनकी शुद्धि उन्हींके उत्पादकोंसे करना अधिक अच्छा है ॥ ११३ ॥

ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च ॥
शौचं यथार्हं कर्त्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥ ११४ ॥

ताम्बा, लोहा, काँसा, पीतल, राँगा, और सीसा, इनके पात्रों की शुद्धि राखी, खटाई, और जल, इनमें जिसकी जिससे अच्छी होती हो, उससे करनी चाहिये ॥ ११४ ॥

द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् ॥
प्रोक्षणं संहतानां च दारवाणां च तक्षणम् ॥ ११५ ॥
मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥
चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ ११६ ॥

तरल पतली वस्तुओंको दो पात्रोंमें गटपट करनेसे, शय्या आदिकी जल से छींटेसे, काठकी वस्तुओंको बसुले से थोडा २ छील देनेसे, यज्ञ के पात्रों को हाथ से पोंछ देने से, और चमस आदि ग्रहों की खँगारने से शुद्धि होती है ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥
स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥ ११७ ॥

[illegible] स्रुक, स्रुवा, और सूप, गाड़ी, मूसल, [illegible] ॥ ११७ ॥

अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् ॥
प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ ११८ ॥

कच्चा अन्न, और वस्त्र बहुल हो, तो, जल के छींटा से, और थोड़ा हो, तो, धो देने से शुद्धि होती है ॥ ११८ ॥

चेलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ॥
शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥ ११९ ॥

चमड़ेकी, और बांस आदिसे बनी हुई वस्तुओंकी वस्त्रकी रीतिसे और शाक, मूल, और फलों की धान्य की रीति से शुद्धि होती है ॥ ११९ ॥

कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः ॥
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपः ॥ १२० ॥

रेशम, और ऊन के वस्त्र की सज्जी मिट्टी से, गलीचा की रीठियों के चूर्ण से, अंशुपट्टोंकी विल्वफलोंसे, और वल्कलोंकी सफेद सरसोंके पिष्टसे शुद्धि होती है ॥ १२० ॥

क्षौमवच्छङ्खशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ॥
शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥ १२१ ॥

शङ्ख, सींग, पवित्र हड्डियाँ, और दांत, इनसे बनी हुई वस्तुओंकी गोमूत्र और जलसे शुद्धि करनी चाहिये ॥ १२१ ॥

प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलालं चैव शुध्यति ॥
मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनःपाकेन मृन्मयम् ॥ १२२ ॥

घास, काष्ठ, और कड़वीकी जलके छिड़िकनेसे, घरकी झाड़ने और लीपनेसे, और मिट्टीके पात्रकी तपानेसे शुद्धि होती है ॥ १२२ ॥

मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ॥
संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ १२३ ॥

यदि मिट्टीका पात्र शराव, मल, मूत्र, थूक, पीप, और लोहू लगनेसे अपवित्र होजाय, तो उसकी तपानेसे भी शुद्धि नहीं हो सकती है ॥ १२३ ॥

सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ॥
गवां च परिवासेन भूमिः शुध्यति पञ्चभिः ॥ १२४ ॥

झाड़ने, लीपने, सींचने, गोड़ने, और गायों को बैठाने से भूमि की शुद्धि होती है ॥ १२४ ॥

पक्षिजग्धं गवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम् ॥
दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुध्यति ॥ १२५ ॥

पक्षियोंके खाये, गौने सूँघे, लातसे कुचले, उसके ऊपर छींके, और केश या कीड़े पड़े हुए अन्न आदिकी शुद्धि उसमें थोड़ी मिट्टी भुरभुरानेसे होती है ॥ १२५ ॥

यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धो लेपश्च तत्कृतः ॥
तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥ १२६ ॥

सब वस्तुओं की शुद्धि के लिये जब तक उसमें लगी हुई अशुद्ध वस्तु या गन्ध न छूटे तब तक उन्हें बराबर मिट्टी लगा कर पानीसे धोना चाहिये ॥ १२६ ॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ १२७ ॥

ब्राह्मणोंके लिये शुद्धि करनेको पुण्य, जलसे क्षालन (धोना), और ब्राह्मण का उत्तम वचन ये तीन हैं, ऐसा देवताओंने निश्चय किया है ॥ १२७ ॥

आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत् ॥
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥ १२८ ॥

जितने जलसे गौओंकी प्यास शान्त होती है, उतने जलको, यदि अपवित्र वस्तु उसमें न पड़ी हो, गन्ध, श्वेत रङ्ग, और मधुर रससे युक्त हो, और शुद्ध भूमिमें हो, तो, पवित्र समझना चाहिये ॥ १२८ ॥

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् ॥
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥ १२९ ॥

[illegible], [illegible], कारीगरके हाथ, बाज़ारमें रक्खी हुई वस्तु, और ब्रह्मचारीकी

भिता, सदा पवित्र ही होते हैं ॥ १२९ ॥

नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने ॥
प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥ १३० ॥

स्त्रियों का मुख, फल गिरानेमें पक्षियों का मुख, और गौ भैंस आदि जानवरोंके पेन्हानेमें बछड़े का मुख, सदा शुद्ध रहता है ॥ १३० ॥

श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् ॥
क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥१३१॥

कुत्ते, बासी मांस खानेवाले सियार, गिद्ध आदि, चण्डाल, और चोर, इन्होंने मारे हुएका मांस शुद्ध रहता है, ऐसा मनुने कहा है ॥ १३१ ॥

ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः ॥
यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः ॥१३२॥

मनुष्यके शरीरमें नाभिके ऊपरके जो छेद (मुख, नाक, कान, आँख,) हैं, वे पवित्र हैं, और नीचे के छेद (गुदा, लिङ्ग), और बाहर निकलनेके बाद सब छिद्रोंमेंका मल अशुद्ध है ॥ १३२ ॥

मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः ॥
रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥१३३॥

मक्खी, मुखके थूककी बबछार, नीचकी भी पड़छाय, गौ, घोड़ा, सूर्यके किरण, धूल, भूमि, हवा, और अग्नि स्पर्शके लिये सदा पवित्र है ॥१३३॥

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् ॥
दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥ १३४ ॥
वसा शुक्रमसृङ् मज्जा मूत्रविट् घ्राणकर्णविट् ॥
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥१३५॥

लघुशङ्का और शौचके बाद जितने समय मिट्टी लगाकर धोनेसे हाथ इन्द्रिय और गुदा स्वच्छ हों, उतने समय मिट्टी लगाकर धोना चाहिये, और चरबी, वीर्य, लोहू, मज्जा, मल, मूत्र, नाकका मल, कफ, आँसू, आँखका

कीचड़, और पसीना, इनके शरीरसे निकलने पर भी उसी रीतिसे शुद्धि होती है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ॥
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥ १३६ ॥

इन्द्रियमें १ वख्त, गुदामें ३, बांये हाथमें १०, और फिर दोनों हाथोंमें ७ वख्त मिट्टी शुद्धिके लिये लगानी चाहिये ॥ १३६ ॥

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥
त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ १३७ ॥

यह कही हुई शुद्धिकी विधि गृहस्थोंके लिये है, ब्रह्मचारियोंको दुगुनी, वानप्रस्थोंको तिगुनी, और संन्यासियोंको चौगुनी शुद्धि करनी चाहिये ॥ १३७ ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् ॥
वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा ॥ १३८ ॥

लघुशङ्का, और शौच करनेके बाद उक्त विधिसे शुद्धि करने पर, और वेदाध्ययन, तथा भोजनके समय पहिले अपने आँख, कान, नाक, और मुख को अवश्य स्पर्श करे ॥ १३८ ॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विःप्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥
शारीरं शौचमिच्छन् हि स्त्री शूद्रस्तु सकृत् सकृत् ॥ १३९ ॥

शरीर की शुद्धिके लिये ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको तीन वार आचमन हाथसे थोड़ा जलपान) कर अँगूठेसे दो वार मुख पोछना चाहिये, और स्त्री तथा शूद्रको १ वार आचमन करना चाहिये ॥ १३९ ॥

शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् ॥
वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥ १४० ॥

सदाचारसम्पन्न शूद्रोंको प्रतिमास हजामत बनवानी चाहिये, वैश्यके समान जनन और मरणमें शुद्धि और ब्राह्मणका उच्छिष्ट (प्रसाद) भोजन करना चाहिये ॥ १४० ॥

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गे पतन्ति याः ॥

न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरधिष्ठितम् ॥१४१॥

किसीके मुखसे थूँकके बिन्दु शरीर पर पड़ने पर भी, मोंछके बाल मुखमें जाने पर भी, और दाँतोमें अटका हुआ, ये जूठे नहीं रहते ॥ १४१ ॥

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ॥
भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥ १४२ ॥

दूसरोंके हाथ और पैर धुलाते समय यदि छींटा पैर पर पड़े, तो, उसे भूमिके जलके समान समझे, और इसके लिये शुद्धि करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १४२ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन ॥
अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ॥१४३ ॥

कन्धे पर कुछ वस्तु लिये हुए यदि जूठेसे छू जाय, तो, उस लिये हुए ही, हाथ धोकर आचमन करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ १४३ ॥

वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत् ॥
आचामेदेव भुक्त्वाऽन्नं, स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥१४४॥

कय और दस्त होनेसे स्नानकर घीका प्राशन करे, अन्न खाकर केवल आचमन करे, और विषयोपभोग कर स्नान करे ॥ १४४ ॥

सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वाऽनृतानि च ॥
पीत्वाऽपोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपि सन् ॥१४५॥

सोकर उठने, छींकने, खाने, थूँकने, झूठ बोलने और पानी पीने के बाद आचमन करना चाहिये, और शुद्ध रहते भी पढ़नेके पहिले आचमन करना चाहिये ॥ १४५ ॥

एष शौचविधिः कृत्स्नो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च ॥
उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान् निबोधत ! ॥१४६॥

यह शरीर और द्रव्यकी शुद्धिकी विधि सम्पूर्ण आपसे कही, अब सकल वर्ण और जातियोंकी स्त्रियों के कर्तव्य सुनिये ॥ १४६ ॥

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ॥
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि ॥१४७॥

बालिका, तरुणी, अथवा वृद्धा, किसी स्त्रीको घरमें भ. अपने मनसे कुछ भी काम न करना चाहिये ॥ १४७ ॥

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ॥
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥१४८॥

बाल्य अवस्थामें पिताके, तरुण अवस्थामें पतिके, पति मरनेपर पुत्रोंके वशमें स्त्रियोंको रहना चाहिये, कभी स्वतन्त्र न रहना चाहिये ॥ १४८ ॥

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वाऽपि नेच्छेद्विरहमात्मनः ॥
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्यं कुर्यादुभे कुले ॥१४९॥

स्त्रियोंको अपने पिता, पति, और पुत्रों से कभी पृथक् न रहना चाहिये, पृथक् रहनेसे पतिकुल, और पितृकुल, दोनोंकी निन्दा होती है ॥ १४९ ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ॥
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥१५०॥

स्त्रीको सदा प्रसन्न रहना चाहिये, घरके कामोंमें चतुराई रखनी चाहिये, चोका बासन आदि सफाईसे करने चाहिये, और खर्च करनेमें हाथको ढीला न छोड़ना चाहिये ॥ १५० ॥

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ॥
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत् ॥ १५१ ॥

स्त्रीको, पिता या उसकी अनुमतिसे भ्राता जिसके साथ विवाह करा दे, उसकी, जब तक वह पुरुष जीवित रहे, सेवा करनी चाहिये, और उसके मरने पर भी उसके विरुद्ध किसी कामको न करना चाहिये ॥ १५१ ॥

मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः ॥
प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ १५२ ॥

स्त्रियोंके विवाहकर्ममें जो स्वस्तिपुण्याहवाचन (उसके मङ्गल और आशी-

वादके मन्त्रका ब्राह्मणों से कहाना), और प्राजापत्य होम किया जाता है, उससे उस कन्या का कल्याण होता है, और जो उसका वरको दान दिया जाता है, उससे उस वरका उस कन्यापर प्रभुत्व होता है ॥ १५२ ॥

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत् पतिः ॥
सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः ॥ १५३ ॥

जिस पुरुषके साथ विवाह हुआ हो, उस पतिसे ऋतुकाल या, अन्यकालमें सदा स्त्रीको इहलोक और परलोकमें सुख ही होता है ॥ १५३ ॥

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ॥
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥ १५४ ॥

पति दुराचारी, कामासक्त (रंडीबाज), और मूर्ख भी क्यों न हो, परंतु पतिव्रता स्त्रीको उसकी सेवा देवताके समान करनी चाहिये ॥ १५४ ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् ॥
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ १५५ ॥

स्त्रियोंको पतिके विना न पृथक् यज्ञ करना चाहिये, न कोई व्रत या उपवास; किन्तु केवल पतिकी सेवा करनेसे उसे स्वर्गलोकमें सुख मिलता है ॥१५५॥

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ॥
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥ १५६ ॥

पतिके साथ २ धर्माचरण करनेसे स्वर्ग सुखकी यदि इच्छा हो, तो, पतिव्रता स्त्रीको पति जीवित रहते या मरने पर भी उस कामको न करना चाहिये, जिसे वह कभी न चाहता हो ॥ १५६ ॥

कामं तु क्षपयेद् देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥१५७॥

पति मरने पर अच्छे २ फूल, मूल, और फलोंके अल्प आहारसे अपने शरीर को सुखा दे, परन्तु दूसरे पुरुषका नाम तक न ले ॥ १५७ ॥

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ॥

यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१५८॥

स्त्रीको पतिव्रताओंका जो धर्म है, उसी सर्वोत्कृष्ट धर्मका आचरण करते करते ब्रह्मचर्यसे मरने तक अपने शरीरको सुखाना चाहिये ॥ १५८ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ॥
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥ १५९ ॥

हजारों कुआँरे ब्रह्मचारी ब्राह्मण विना बालबच्चा उत्पन्न कियेही स्वर्गलोक में पहुंचे हैं ॥ १५६ ॥

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ॥
स्वर्गं गच्छत्यपुत्राऽपि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १६० ॥

पति मरने पर पतिव्रता स्त्री ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करती हुई विना सन्तान के भी कुआँरे ब्रह्मचारियोंके समान स्वर्गलोकमें जा सकती है ॥१६०॥

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ॥
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥ १६१ ॥

जो स्त्री सन्तानकी लालचसे व्यभिचार करती है उसकी लोकमें बड़ी निन्दा होती है, और मरने पर उसे स्वर्ग नहीं मिलता ॥ १६१ ॥

नान्योत्पन्ना प्रजाऽस्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहः ॥
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥ १६२ ॥

अन्य पुरुषके द्वारा उत्पन्न सन्तान न तो स्त्रीकी हो सकती है और न उस पुरुषकी, जिससे वह उत्पन्न है, और कहीं भी पतिव्रताओंको द्वितीय पति करने नहीं कहा गया है ॥ १६२ ॥

पतिं हित्वाऽपकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ॥
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ॥ १६३ ॥

जो स्त्री पतिको छोड़कर नीच या उच्च जातिके पुरुषको सेवती है, उसकी लोकमें निन्दा होती है, और 'छिनार' कहलाती है ॥ १६३ ॥

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ॥

शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ १६४ ॥

स्त्रियोंकी छिनारीसे बड़ी निन्दा होती है, उन्हें अनेक रोग होते हैं, और मरने पर सियारका जन्म मिलता है ॥ १६४ ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥
सा भर्तृलोकमवाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥१६५॥

काया वाचा मनसे भी जो स्त्री अपने पतिके विरुद्ध कोई भी काम नहीं करती, उसे मरने पर स्वर्गलोक मिलता है और लोग पतिव्रता कहते हैं ॥१६५॥

अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता ॥
इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥ १६६ ॥

इस प्रकार स्त्रियोंकी अपने कर्तव्योंका काया वाच मनसे आचरण करनेसे इस लोकमें बड़ी कीर्ति होती है, और परलोक (पतिलोकमें) वास मिलता है ॥ १६६ ॥

एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ॥
दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ १६७ ॥

इस कही हुई रीतिसे पतिव्रताके आचार विचारसे रहनेवाली स्त्रीकी मरने पर अग्निहोत्रकी अग्निसे उसके पात्रोंके सहित दाहविधि करनी चाहिये॥१६७॥

भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि ॥
पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ १६८ ॥

पहिले मरी हुई भार्याकी इस प्रकार अन्त्येष्टि क्रिया कर पुनः विवाह करे और विवाहित स्त्रीके साथ फिर अग्निहोत्र का आधान करे ॥ १६८ ॥

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १६९ ॥

इति मनुस्मृतौ पञ्चमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार जहाँ तक बने पञ्चमहायज्ञोंका प्रतिदिन अनुष्ठान करते २ अपने जीवनके दूसरेभागको गृहस्थाश्रममें बितावे ॥ १६९ ॥

इति श्रीमनुस्मृति भाषाप्रकाशे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत् स्नातको द्विजः ॥
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥

इस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें विधिपूर्वक रहकर जब ठीक ठीक इन्द्रियोंको अपने वश कर ले, तब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको वनमें वास करना चाहिये (अर्थात् वानप्रस्थाश्रमको करना चाहिये ॥ १ ॥

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

गृहस्थ जब अपने शरीरके चर्ममें सिकुड़न पड़ी हुई देखे, या पुत्रके पुत्रको देखे, तब वानप्रस्थाश्रमको स्वीकार करे ॥ २ ॥

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ॥
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥

ग्राम या शहरके खाद्य वस्तुओंको न खाय, और गाड़ी घोड़ा बिस्तर आदि का उपभोग न करे, भार्याको पुत्रोंके पास रखकर या अपने साथ ही लेकर वनमें जाय ॥ ३ ॥

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ॥
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

अग्निहोत्र और अग्नियोंकी सब सामग्री लेकर गाँवके बाहर जाकर वनमें इन्द्रियोंको वशकर रहना चाहिये ॥ ४ ॥

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ॥
एतानेव महायज्ञान् निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥

ऋषियोंके खाद्य अन्न साँवा तिन्नी आदि और पवित्र साग मूल और फलों से पञ्चमहायज्ञोंको विधिपूर्वक करे ॥ ५ ॥

वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात् प्रगे तथा ॥

जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥ ६ ॥

या तो हरिण आदिके चर्मको या वल्कल (वृक्षकी त्वचा) को पहिने सायंकाल और प्रातःकाल दोनों समय स्नान करे, सदा जटाधारण करे और दाढ़ी, बगलके बाल, और नाखून बढ़ावे (अर्थात् इन्हें न कटावे) ॥ ६ ॥

यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद् बलिं भिक्षां च शक्तितः ॥

अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥ ७ ॥

जिसे अपने खाते हों, उसीमेंसे अतिथियोंको भिक्षा और पशुपक्षियोंको बलि दे, और जो लोग अपने आश्रम (स्थान) पर आवें उन्हें जल, मूल, और फल देकर उनका यथाशक्ति सत्कार करे ॥ ७ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ॥

दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥

सदा वेदाध्ययन, शीत और उष्णताका सहन, दूसरों का हित, दान, और सब प्राणियों पर दया करे, और कभी दूसरोंसे दान न ले ॥ ८ ॥

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥

दर्शमस्कन्दयन् पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥ ९ ॥

गार्हपत्य, आहवनीय, और दक्षिणाग्नि, तीनों अग्नियोंमें अग्निहोत्र होम, दर्श और पौर्णमास इष्टि विधिके अनुसार करे ॥ ९ ॥

ऋक्षेष्ट्याग्रयणं चैव चातुर्मास्यानि चाचरेत् ॥

उत्तरायणं च क्रमशो दाक्षस्यायनमेव च ॥ १० ॥

नक्षत्रेष्टि, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य याग, उत्तरायणेष्टि, और दक्षिणायनेष्टि, इन्हें भी (समय २ पर) करे ॥ १० ॥

वासन्तैशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ॥

पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥ ११ ॥

कहे हुए होम, याग, और इष्टियोंके हवि-पुरोडाश और चरुओंको वसन्त और शरद्ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले सांवा तिन्नी आदि अन्नोंको स्वयं लाकर उसे बनावे ॥ ११ ॥

देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ॥
शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयंकृतम् ॥ १२ ॥

वनमें उत्पन्न होनेवाले तिन्नी साँवा आदि पवित्र अन्नके हविका देवताओं को समर्पण कर अवशिष्ट भागका स्वयं भक्षण करे, और ऊसर भूमिमें स्वयं ही निकाले हुए नमकको भक्षण करे ॥ १२ ॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ॥
मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात् स्नेहांश्च फलसम्भवान् ॥ १३ ॥

भूमि और जलमें उत्पन्न साग, फूल, मूल, फल, और पवित्रवृक्षोंके फलका तेल, इन्हींको वानप्रस्थाश्रममें भक्षण करना चाहिये ॥ १३ ॥

वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवकानि च ॥
भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥ १४ ॥

मद्य, मांस, कुकुरौंधा, सेवाँर, पञ्जाबकी प्रसिद्ध साग, और भोंकरीके फल, इन्हें कभी भक्षण न करना चाहिये ॥ १४ ॥

त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसञ्चितम् ॥
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥ १५ ॥

पहिले भरे हुए साँवा, तिन्नी, आदि ऋषियोंके अन्न, पुराने वस्त्र, साग, मूल और फल, इन सबका कुवारमें त्याग कर दे ॥ १५ ॥

न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित् ॥
न ग्रामजातान्यार्तोऽपि मूलानि च फलानि च ॥१६॥

जो अन्न हलसे उत्पन्न होता है उसे किसीने फेंकने पर भी, और गाँवमें उत्पन्न मूल और फलोंको क्षुधासे व्याकुल रहने पर भी न खाना चाहिये ॥ १६ ॥

अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा ॥
अश्मकुट्टो भवेद्वाऽपि दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥ १७ ॥

मुनियोंका भक्ष्य जो अन्न है, उसे अग्नि पर पका कर खाय, अपने आप

पकानेवाले फल आदिको ही खाय, या पत्थर और दान्तोंसे कूँच कर कच्चाही अन्न आदि खाय ॥ १७ ॥

सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्मासंसंचयिकोऽपि वा ॥
षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥ १८ ॥

वानप्रस्थाश्रमी एकही दिन, महीने भर, छ महीने या साल भर जितना अन्न लगता हो, उतनाही संग्रह करे ॥ १८ ॥

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः ॥
चतुर्थकालिको वा स्यात स्याद्वाऽप्यष्टमकालिकः ॥१९॥

वानप्रस्थाश्रमी प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार वनमेंसे कन्द मूल फल आदि लाकर सायंकाल भोजन किया करे, या दो दो दिनसे, अथवा ४-४ दिनसे भोजन किया करे ॥ १९ ॥

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णे च वर्तयेत् ॥
पक्षान्तयोर्वाऽप्यश्नीयाद्यवागू क्वथितां सकृत् ॥ २० ॥
पुष्पमूलफलैर्वाऽपि केवलैर्वर्तयेत्सदा ॥
कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥ २१ ॥

महीने २ चान्द्रायण करे, १५-१५ दिनसे अमावस पौर्णमासीमें यवागूपान करे, अपने आप पके हुए केवल पुष्प फल और मूल खाकर रहे, अथवा वैखानसव्रत अर्थात् निराहार करे ॥ २० ॥ २१ ॥

भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् ॥
स्थानासनाभ्यां विहरेत् सवनेषूपयन्नपः ॥ २२ ॥

स्नान भोजन आदिको छोड़कर अन्य सब कालमें दिन भर भूमि पर लोटपोटही करता रहे, पैरोंके अङ्गुलियों पर खड़ा रहे, या किसी समय बैठे, किसी समय फिरे, और तीनों वक्त स्नान किया करे ॥ २२ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ॥
आर्द्रवासास्त हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः ॥ २३ ॥

ग्रीष्म ऋतु (गर्मीके दिनों) में, पञ्चाग्नि साधन कर, वर्षा ऋतु (बरसात) में खुले स्थानमें बैठ कर, और हेमन्त ऋतु (जाड़ेके दिनों) में भीगे वस्त्र पहिन कर क्रमसे तपस्याको बढ़ावे ॥ २३ ॥

उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितॄन् देवांश्च तर्पयेत ॥
तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद् देहमात्मनः ॥ २४ ॥

प्रातः, सायं, और मध्यान्ह, तीनोंकाल स्नान कर देवताओंका पूजन, और पितरोंका तर्पण करे, और कठिन २ तपस्याका अनुष्ठान करते २ शरीरको बिलकुल शुष्क कर दे ॥ २४ ॥

अग्नीनात्मनि वैतानान् समारोप्य यथाविधि ॥
अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २५ ॥

शरीर शुष्क होनेके बाद गार्हपत्य, आहवनीय, और दक्षिणाग्नि, तीनोंका समारोपण विधिसे आत्मामें समारोप करनेसे अग्निरहित होकर, आश्रमको त्याग कर कन्द मूल भक्षण करते मौनसे रहे ॥ २५ ॥

अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ॥
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २६ ॥

सुख प्राप्तिके लिये उद्योग न करे, ब्रह्मचर्यसे रहे भूमि पर निद्रा करे, निवास स्थानकी ममता छोड़कर कहीं भी किसी पेड़के नीचे रहे ॥ २६ ॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ॥
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥
ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान् वने वसन् ॥
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥ २८ ॥

तपस्वी ब्राह्मण या वनमें ही रहनेवाले गृहस्थों से अपने पेट भर भिक्षा ले, अथवा समीपके गाँवमें जाकर वहाँ भिक्षा ले आवे, और उसके केवल आठ ही कवल, दोना, खप्पड़, या हाथ में लेकर खाय ॥ २७ ॥ २८ ॥

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ।

विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ २६ ॥

वानप्रस्थाश्रमी, इन कहे हुये और अन्य भी उचित नियमों का पालन करते हुए अनेकों उपनिषदोंका ब्रह्मज्ञान होनेके लिये अभ्यास करे ॥ २६ ॥

ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः ॥
विद्यातपोविवृध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥ ३० ॥

क्योंकि, ऋषि, ब्राह्मण, गृहस्थ, सभी ने विद्या और तपस्याकी वृद्धि, और शरीरकी शुद्धिके लिये उपनिषदों का अभ्यास किया है ॥ ३० ॥

अपराजितां वाऽऽस्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ॥
आनिपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार वानप्रस्थाश्रममें रहते २ जब देख ले कि ' अब शरीर बहुत नहीं रह सकता, तब, केवल जल और वायुका सेवन करते हुए ईशान दिशाकी ओर शरीर छूटने तक बराबर चलता ही जाय ॥ ३१ ॥

आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वाऽन्यतमया तनुम् ॥
वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३२ ॥

इन महर्षियोंकी प्रथाओंमेंकी ही किसी प्रथासे शरीर छूट जाय, तो, सब दुःख और भयसे रहित होकर वह ब्रह्मलोकमें जाता है (अर्थात् उसे मोक्ष मिलता है ॥ ३२ ॥

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ॥
चतुर्थमायुषोभागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार वानप्रस्थाश्रममें आयुका तीसरा भाग व्यतीत कर सर्व सङ्ग परित्याग कर चौथे भागमें संन्यासाश्रमका ग्रहण करे ॥ ३३ ॥

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ॥
भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन् प्रेत्य वर्धते ॥ ३४ ॥

ब्रह्मचर्यसे गृहस्थाश्रम, उससे वानप्रस्थ, और उससे संन्यास, इस क्रमसे एक २ आश्रमसे दूसरे २ आश्रममें जानेसे, उन २ आश्रमोंके होम आदि करते २ भिक्षा मांगते २, बलि दान देने २ थक कर जो संन्यासी होता है, उसको मोक्ष

प्राप्ति होती है ॥ ३४ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ ३५ ॥

देव, ऋषि, और पितरोंके तीनों ऋणका उद्धार करनेके बाद मोक्ष प्राप्त कर लेनेमें मन लगावे, बिना ऋणका उद्धार किये मोक्षमार्गमें जानेवालेका अधःपात होता है ॥ ३५ ॥

अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ॥
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ ३६ ॥

उत्तम रीतिसे वेदाध्ययन, सन्मार्गसे सन्तानकी उत्पत्ति, और शक्तिके अनुसार यज्ञ याग आदिका अनुष्ठान, करनेके बादही मोक्ष (ब्रह्मज्ञान) में मन लगावे ॥ ३६ ॥

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ॥
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः ॥ ३७ ॥

वेदाध्ययन, सन्तानकी उत्पत्ति, और यज्ञयाग किये बिनाही मोक्षकी इच्छा करनेवालेका अधःपात होता है ॥ ३७ ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥३८॥

जिसमें सर्वस्व (पासमेंका सब द्रव्य वस्तु आदि) दक्षिणा देनी होती है, उस 'प्राजापत्य' नामक इष्टिको करनेके बाद घरसे वनमें जाय, और वहाँ समारोपण विधिसे अग्नियोंका आत्मामें समारोप करनेके बाद संन्यासाश्रम का स्वीकार करे ॥ ३८ ॥

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ॥
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३९ ॥

जो सब स्थावर जङ्गम जीव जन्तुओंको अभयप्रदान कर संन्यास ग्रहण करता है, उस ब्रह्मनिष्ठ संन्यासीके तेजसे ब्रह्मादि सब लोक प्रकाशित होते हैं, (अर्थात् वह ब्रह्मादि लोकमें वास करता है ॥ ३९ ॥

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम् ॥
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ ४० ॥

जिस द्विजसे किसी भी जीवको कभी अल्प भी भय नहीं होता, उसे शरीर छूटने पर परलोक में कहीं भी भय नहीं होता ॥ ४० ॥

अगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ॥
समुपोढ़ेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥

दण्ड, कमण्डलु आदि लेकर मौन धारण कर घरसे बाहर निकले, और किसीने अन्न आदि देने पर भी उसकी अपेक्षा न करते संन्यास आश्रम लेना चाहिये ॥ ४१ ॥

एक एव चरेन्नित्यं सिध्यर्थमसहायवान् ॥
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥ ४२ ॥

सिद्धि प्राप्त कर लेनेके लिये विना किसी की सहायताके अकेला ही सदा घूमें, अकेला ही सिद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाला किसीको नहीं त्यागता, और न इसे कोई त्यागता है, (इसलिये इसके सब संसार पाश छूट जानेसे सिद्धि शीघ्र प्राप्त होती है) ॥ ४२ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥
उपेक्षकोऽशंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ४३ ॥

अग्नि, घर और दारासे रहित होकर केवल भिक्षाके लिये गाँवमें जाय, शरीरके रोगादिकी उपेक्षा करे, बुद्धि स्थिर करे, मौन व्रत धारण करे, और ब्रह्ममें समाधि (चित्तैकाग्रय) लगावे ॥ ४३ ॥

कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ॥
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४६ ॥

खप्पड़में खाना, पेड़ोंके नीचे सोना, फटे मोटे वस्त्रकी लंगोटी लगाना, अकेले रहना, और सबको समान समझना, यह मुक्त (ब्रह्मज्ञानी) का लक्षण है ॥ ४४ ॥

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ॥

कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ४५ ॥

न मरनेकी अपेक्षा करे, न जीनेकी, किन्तु नौकर अपनी नौकरीके समयको जैसे देखते रहता है कि कब समय समाप्त हो, और कब हमे छुट्टी मिले, वैसेही ब्रह्मज्ञानी अपने शरीरके छूटनेकी प्रतीक्षा करता रहे ॥ ४५ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ॥
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥

संन्यासी, देख २ कर भूमि पर पैर रक्खे, छान कर पानी पीये, सत्यभाषण करे, और मनको जिसमें सन्तोष हो, उसे करे ॥ ४६ ॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ४७ ॥

संन्यासीको, कोई गाली आदि दे, तो उसे सहना चाहिये, किसीका भी अपमान न करना चाहिये, और इस नष्ट होनेवाले देहके लिये किसीसे भी शत्रुता न करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ॥
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ४८ ॥

अपने पर कोई क्रोध करे, तो, उस पर आप (संन्यासी) क्रोध न करे, कोई निन्दा करे, तो भी, उसकी आप निन्दा न करे । आँख, कान, नाक, मुख, जिव्हा, मन, और बुद्धि, इन सात इन्द्रियोंसे घिरी हुई वाणी से कभी असत्य न बोले ॥ ४८ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ॥
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ४९ ॥

ब्रह्मविद्या (वेदान्त) और योग में आसक्त, निस्पृह, विषयाभिलाषा रहित होकर सदा अपने ही भरोसे इस जगत् में कालक्रमण करे ॥ ४९ ॥

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ॥
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ ५० ॥

भूडोल आदि उत्पात, नेत्रस्पन्दन आदि निमित्त, ज्योतिष, नीति, और शास्त्रार्थ, इन्हें कह कर उससे भिक्षा संपादन करने की इच्छा न करे ॥५०॥

न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः ॥
आकीर्णं भिक्षुकैर्वाऽन्यैरागारमुपसंव्रजेत् ॥ ५१ ॥

जिस घर में तपस्वी भिक्षुक ब्राह्मण, पक्षी, कुत्ते या और कोई भिखमंगे आदि आते जाते हों, उस घरमें संन्यासीको भिक्षाके लिये न जाना चाहिये ॥५१॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ॥
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ५२ ॥

संन्यासीको सिर, दाढ़ी और मोंछ प्रति मास मुड़ाना चाहिये, खप्पड़, दण्ड, कमण्डलु पासमें रखना चाहिये, और किसीको भी दुःख न देते इन्द्रिय निग्रहसे सदा भ्रमण करना चाहिये ॥ ५२ ॥

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ॥
तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥ ५३ ॥

पात्र सोना चाँदी आदि धातुके ।और फूटे न होने चाहिये, उनकी शुद्धि यज्ञमें चमस पात्रोंके समान केवल जलसे खँगार देनेसे होती है ॥ ५३ ॥

अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा ॥
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥

स्वायम्भुव मनुजीने तुम्बी, काष्ठ, मिट्टी, या वृक्षकी छालके पात्र संन्यासीके लिये कहे हैं ॥ ५४ ॥

एककालं चरेद् भैक्षं नप्रसज्जेत विस्तरे ॥
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ ५५ ॥

दिन भरमें एक समय जीवन निर्वाह भरकी भिक्षा करे, न कि बहुत भिक्षा, क्योंकि, भिक्षामें आसक्त होनेसे क्रमेण विषयोंमें भी आसक्ति होनेकी संभावना होती है ॥ ५५ ॥

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥

वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥५६॥

जिस समय कहीं धूँवा न हो, ओखल मूसर चलता न हो, चूल्हा बुत गया हो, लोक भोजन कर चुके हों, और चौका बासन होगया हो, ऐसे ३-४ बजेके समय संन्यासीको भिक्षा मांगनी चाहिये ॥ ५६ ॥

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् ॥
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥ ५७ ॥

भिक्षा न मिलनेसे न तो खेद करे और मिलने पर हर्ष, किन्तु, केवल प्राण रहने भरकी भिक्षा करे, और दण्ड कमण्डलु आदिके अच्छे बुरेकी ओर भी ध्यान न रक्खे ॥ ५७ ॥

अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः ॥
अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥ ५८ ॥

सदा सत्कारसे मिलनेवाली भिक्षाकी घृणा करे, क्योंकि, भिक्षा सत्कारसे मिलते २ मुक्त भी संन्यासी संसार पाशमें फँस जाता है ॥ ५८ ॥

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ॥
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥ ५९ ॥

विषयोंकी ओर दौड़नेवाली इन्द्रियोंको थोड़ा भोजन करनेसे और एकान्तमें अकेले बैठनेसे (धीरे २) निवृत्त करे ॥ ५९ ॥

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ॥
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥

इन्द्रियोंके निग्रहसे, राग द्वेष छोड़नेसे, और किसीकी हिंसा न करनेसे सन्यासी मोक्षके योग्य होता है ॥ ६० ॥

अवेक्षेत गतीर्नॄणां कर्मदोषसमुद्भवाः ॥
निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥ ६१ ॥

विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तथा प्रियैः ॥
जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ६२ ॥
देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम् ॥
योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥
अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ॥
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ ६४ ॥

वेद शास्त्र और पुराणोंमें कहे हुए इन सब बातोंका—मनुष्योंके दुष्टकर्मोंके अनुसार पशु पक्षी आदि योनिमें जन्म, नरक पात, यमयातना; इष्ट पुत्र आदिका वियोग, अनिष्टों (व्याघ्र आदि) का संयोग, बुढ़ौती, नानाप्रकारके रोगोंसे पीड़ा, मरण, गर्भवास, फिर जीवात्माका हजारों योनियोंमें जन्म, अधर्म करनेसे दुःख, धर्मसे सदा सुख, इत्यादि का सदा चिन्तन करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ॥
देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ ६५ ॥

योगदृष्टिसे ' परमात्माका स्वरूप स्थूल वस्तुओंकी अपेक्षा सर्वान्तर्यामी होनेसे अत्यन्त सूक्ष्म निरवयव है' इसे विचारना चाहिये, और इसे न विचारनेवालोंकी अपने २ कर्मोंके फल भोगनेके लिये उत्तम और अधम योनियोंमें होनेवाले जन्मोंको विचारना चाहिये ॥ ६५ ॥

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्रतत्राश्रमे रतः ॥
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ६६ ॥

जिस किसी आश्रममें रहनेवालेको अपने आश्रमानुसार आचरण न करते रहनेपर भी, सब जीवोंपर समान दृष्टि रखते हुए धर्म करना चाहिये, आश्रमका लिङ्ग कोई धर्मका कारण नहीं है (अर्थात् आश्रमके चिन्हहीसे धर्म होगा, ऐसा नहीं है) ॥ ६६ ॥

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ॥

न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥

यद्यपि निर्मलीके फलसे मटमैला जल स्वच्छ होता है, तथापि केवल उसके नामलेनेसे तो नहीं होता, किन्तु उसको घिसकर जलमें लगानेसे स्वच्छ होता है, वैसेही केवल आश्रमका चिन्ह गेरुवा वस्त्र आदि धारणकरनेसे थोड़े ही धर्म होगा ? किन्तु उसके आचरण करनेसे ॥ ६७ ॥

संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ॥
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥ ६८ ॥

शरीरमें कष्ट रहने पर भी, किसी जीव जन्तुको हिंसा न हो, किन्तु रक्षा हो, इस लिये सदा, रात हो या दिन, भूमिपर देख देख कर चलना चाहिये ॥६८॥

अन्हा रात्र्या च यान् जन्तून् हिनस्त्यज्ञानतो यतिः ॥
तेषां स्नात्वा विशुध्यर्थं प्राणायामान् षडाचरेत् ॥ ६९ ॥

दिन और रात्रिमें जो जन्तु संन्यासीसे अनजानमें मरे हों, उस पापकी शुद्धिकेलिये सन्न्यासीको स्नान करनेबाद छ प्राणायाम करने चाहिये ॥ ६९ ॥

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ॥
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ ७० ॥

ब्राह्मणकेलिये व्याहृति (भूः भुवः स्व.), और प्रणव ॐकार, इनके सहित ठीक २ तीन भी प्राणायाम बड़ी भारी तपस्या है ॥ ७० ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ॥
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ७१ ॥

सोना चाँदी आदि धातुओंको गलानेसे जैसे उसके मल दग्ध होते है, उसी प्रकार प्राणायाम करनेसे इन्द्रियोंके सब दोष नष्ट होजाते हैं ॥ ७१ ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥७२॥

प्राणायामोंसे दोषोंको, समाधिमें पापको, इन्द्रियोंका विषयोंसे आकर्षण करनेसे विषय सम्बन्धको, और ब्रह्मचिन्तनसे काम क्रोध लोभ मोह मद औ

मात्सर्य गुणों का नाश करे ॥ ७२ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ॥
ध्यानयोगेन संपश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ७३ ॥

जिन्हे शास्त्रका संस्कार कुछ भी नहीं हैं, ऐसे मूर्खोंको जाननेके अयोग्य देवता पशु पक्षी आदि उत्तम और अधम योनियों में जीवोंका किस २ कारणसे जन्म होता है, इसे अच्छीतरह विचारे (अर्थात् विचारकर उन २ कारणोंको जानकर उनसे अपनेको बचावे) ॥ ७३ ॥

सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ॥
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ७४ ॥

उत्तमरीतिसे जिसे ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है, उसे फिर अपने कर्मोंका फल नहीं भोगना पड़ता, और जिस संन्यासीको ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं होता उसे फिर जन्ममरण का दुःख भोगना पड़ता है ॥ ७४ ॥

अहिंसयेन्द्रियासङ्गै र्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ॥
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ ७५ ॥

संन्यासियोंको हिंसा न करनेसे, इन्द्रियोंके निग्रहसे, वैदिक कर्मोंके अनुष्ठान से, और कठिन २ तपस्यायें करनेसे ब्रह्मपद (मोक्ष) मिलता है ॥ ७५ ॥

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ७६ ॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥ ७७ ॥

शरीर, हड्डी रूपी स्तम्भके सहारे नसकी डोरियोंसे बँधा, मांस और लोहूसे लिपटा हुआ, चमड़ेसे ढका हुआ, दुर्गन्धवाले मल मूत्रसे भरा हुआ, जरा (बुढ़ौती), और शोकसे व्याप्त, रोगोंका घर, भूख प्यास आदिसे कातर, रजो गुणवाला, नाश होनेवाला और पञ्च महाभूतोंसे बना हुआ है, उसकी ममता त्याग करना चाहिये ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा ॥

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च ॥
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत ॥ ८३ ॥

यज्ञकी विधि, देवताओंका स्वरूप व ध्यान, जीवात्मा और वेदान्तके बोधक वेदका सतत जप करे ॥ ८३ ॥

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ॥
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ ८४ ॥

अर्थ जानते हों, चाहे न जानते हों, सबको इस वेदका अध्ययन करनेसे स्वर्ग और मोक्ष मिलता है ॥ ८४ ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ॥
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ८५ ॥

इस प्रकार धीरे २ क्रमसे जो ब्राह्मण विरक्त होकर संन्यास ग्रहण करता है, उसे सब पापोंका नाश होनेसे मोक्ष मिलता है ॥ ८५ ॥

एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम् ॥
वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ! ॥ ८६ ॥

अभी तक कुटीचक, बहूदक, हंस, और परमहंस, चारो प्रकारके संन्यासियोंके साधारण कर्तव्य आपलोगोंसे मैंने कहा, अब केवल वैदिक ही कर्म करने वाले कुटीचक संन्यासियोंके धर्म (कर्तव्य) सुनिये ! ॥ ८६ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ८७ ॥

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास, ये गृहस्थोंसे उत्पन्न और चार ही भिन्न २ आश्रम हैं ॥ ८७ ॥

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः ॥
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ ८८ ॥

शास्त्रोक्त विधिसे इन चारो आश्रमोंको क्रमसे ग्रहण कर, उनके कर्तव्योंका उत्तम रीतिसे अनुष्ठान करनेसे ब्राह्मणको मुक्ति मिलती है ॥ ८८ ॥

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ॥
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि ॥ ८९ ॥

इन सब आश्रमोंमें वेद और स्मृतियोंने गृहस्थ हीके लिये अग्निहोत्र आदि का विधान करनेसे और ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संयासियोंको भिक्षा आदि देकर पालन करनेसे गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है ॥ ८९ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ॥
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ ९० ॥

जैसे नदी और नद सब समुद्रमें जाकर विराम पाते हैं, उसी प्रकार सब आश्रमी गृहस्थके पास आश्रय पाते हैं ॥ ९० ॥

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ॥
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ९१ ॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥

धैर्य, क्षमा, विनय, चोरी न करना, शुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रज्ञान, आत्मज्ञान, सत्य, और अक्रोध, इन दस प्रकारके धर्मका आचरण चारों आश्रमके ब्राह्मणोंको सदा करना चाहिये ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ॥
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ९३ ॥

जो ब्राह्मण धर्मके दसो लक्षणोंको समझ कर उनके अनुसार चलते हैं, उन्हें मोक्ष मिलता है ॥ ९३ ॥

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन् समाहितः ॥
वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥ ९४ ॥

स्वस्थ चित्तसे इस दस प्रकारके धर्मका आचरण करते हुए वेदान्त शास्त्रको विधिपूर्वक सुननेसे वैराग्य होने पर और तीनों ऋणोंका उद्धार करने पर ब्राह्मण संन्यासको ले ॥ ९४ ॥

संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् ॥
नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्यें सुखं वसेत् ॥ ९५ ॥

कुटीचक संन्यासी अग्निहोत्र आदि गृहस्थोंके कर्तव्य करना त्याग कर, प्राणायाम आदिसे अज्ञानसे भये दोषोंको दूर करते हुए और वेदान्त शास्त्रका विचार करते हुए पुत्रके भरोसे घरमें आनन्दसे रहे ॥ ९५ ॥

एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः ॥
संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ९६ ॥

इस प्रकार सर्व कर्मोंका त्याग कर ब्रह्मज्ञानमें लगे हुए किसी वस्तुकी अभिलाषा न रखते संन्यास लेनेसे पापका नाश कर कुटीचक संन्यासी सद्गति (मोक्ष) को पाता है ॥ ९६ ॥

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ॥
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य, राज्ञां धर्मं निबोधत ॥ ९७ ॥
इति मनुस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

यह सब पुण्यकारक और मोक्ष को देनेवाले चारो प्रकारके ब्राह्मणके धर्म आपसे कहा, अब क्षत्रियोंका धर्म सुनिये ॥ ९७ ॥

इति श्रीमनुस्मृति भाषाप्रकाशे ब्राह्मणधर्मनिरूपणात्मक षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ॥
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥

राजाको क्या कर्तव्य करना चाहिये, उसकी उत्पत्ति कैसी होती है, और उसे किस रीतिसे सिद्धि प्राप्त होती है, इन सब राजाके धर्म कहता हूँ ॥ १ ॥

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि ॥
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥

क्षत्रियको शास्त्रोक्त विधिसे उपनयन संस्कार होनेके बाद पढ़े हुए वेदकी आवृत्ति से रक्षा बराबर करनी चाहिये ॥ २ ॥

अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात् ॥
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः ॥ ३ ॥
इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ॥
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीने राजा न रहनेसे इस संसारमें बलिष्ठसे दुर्बलका भयसे खड्मण्डल होते देखकर इसकी रक्षाके लिये इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, सोम, और कुबेर, इन आठ दिक्पालोंके अंशोंसे राजाके शरीरको उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ ४ ॥

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ॥
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥ ५ ॥

राजा इन इन्द्र आदि आठ दिक्पालोंके अंशोंसे बनाया गया है, अतः वह अपनी प्रभुतासे सबको दबा सकता है ॥ ५ ॥

तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥

उसे देखनेवालोंकी आँखें और मनको सूर्यके समान चकचौन्धी लगती है

इसलिये भूलोकमें उसका सामना कोई भी नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

सोऽग्निर्भवति वायश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् ॥
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥ ७ ॥

वह प्रभुतामें अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, यम, कुबेर, वरुण, और इन्द्रके समान है ॥ ७ ॥

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनष्य इति भूमिपः ॥
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥

बालक होने पर भी राजाका मनुष्य समझ कर अपमान न करना चाहिये, क्योंकि, यह बड़ी भारी देवता मनुष्मके रूपसे इस भूलोकमें वास करती है ॥८॥

एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम् ॥
कुलं दहति राजाऽग्निः सपशुद्रव्यसञ्चयम् ॥ ६ ॥

अग्निके अत्यन्त निकट जाकर खुड़चाल करनेसे अग्नि केवल उस मनुष्यको ही जलाता है, परन्तु राजाको खुड़चाल करनेसे वह (राजा) मय वाल बच्चेकें उसे सारा उसका धन आदि छीन कर नष्ट करता है ॥ ६ ॥

कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः ॥
कुरुते धर्मसिध्यर्थं विश्वरूपं पुनःपुनः ॥ १० ॥

राजा काम, शक्ति, देश, और कालके अनुसार राज्यमें धर्म होनेके लिये बारबार किसीको दण्ड, किसीको इनाम. किसीको क्षमा आदि नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता है ॥ १० ॥

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे ॥
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ॥ ११ ॥

जिसकी प्रसन्नतामें तो लक्ष्मीका, पराक्रममें विजयका, और क्रोधमें यमराज का वास है, इसलिये उसे सब प्रकारकी प्रभुता होती है ॥ ११ ॥

तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात् स विनश्यत्यसंशयम् ॥
तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥ १२ ॥

जो मूर्खतासे उसका द्वेष करता है, उसका अवश्य नाश होता है, क्योंकि उसका नाश करनेके लिये शीघ्र ही राजा इच्छा करता है ॥ १२ ॥

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः ॥
अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥ १३ ॥

इसलिये राजा सन्तुष्ट या रुष्ट होनेसे जिसके साथ जैसा व्यवहार (वर्ताव) करने की आज्ञा करे, उसका उल्लंघन भी न करे ॥ १३ ॥

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ॥
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत् पूर्वमीश्वरः ॥ १४ ॥

उस राजाके लिये ईश्वरने सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले, धर्मस्वरूप ब्रह्मशक्तिमय दण्डको पहिले उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥
भयाद्भोगाय कल्पन्तो स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥ १५ ॥

उसी (दण्ड) के भयसे सब चराचर प्राणी अपनी २ वस्तुओंका उपभोग करने पाते हैं, और अपने कर्तव्योंसे नहीं टलते ॥ १५ ॥

तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः ॥
यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥ १६ ॥

अपराधियोंको देश काल शक्ति और विद्याका विचार कर उनकी २ योग्यता के अनुसार ही राजाको दण्ड देना चाहिये ॥ १६ ॥

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ॥
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥ १७ ॥

वही दण्ड ही तो सच्चा राजा, पुरुष, अपना २ काम करानेवाला, शासन करने वाला और चारो आश्रमोंके धर्मका साक्षी है, (अर्थात् दण्डहीके भयसे सब होरहा है)

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ १८ ॥

दण्ड सब प्रजाओंको शासन करता है, दण्ड ही रक्षा करता है, सोने पर भी दण्ड जागता रहता है (अर्थात् दण्डहीके भयसे चोर नहीं आते), विद्वान् दण्डको धर्म समझते हैं ॥ १८ ॥

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः ॥
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ १९ ॥

अपराधका विचार कर उसीके योग्य दण्ड देनेसे सब प्रजा राजासे प्रीति करती हैं, और बिना विचारे दण्ड देनेसे उस राजाका सर्वनाश होता है ॥१९॥

यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः ॥
शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः ॥२० ॥
अद्यात् काकः पुरोडाशं श्वाच लिह्याद्धविस्तथा ॥
स्वाम्यं च न स्यात्कस्मिंश्चित् प्रवर्तेताश्वरोत्तरम् ॥२१॥

यदि राजा आलस्य छोड़ कर अपराधियोंको दण्ड न दे, तो, बलवान् (जबरे) लोग दुबलोंको सिकचे पर मछलियोंके समान भूज २ कर खाजाँय, कौवापुरोडाशको खाने लगे, कुत्ता होमके घीको चाट जाय, किसीकी किसी वस्तु पर प्रभुता न रहे, और नीच श्रेष्ठ होने लगे, श्रेष्ठ नीच होने लगे ॥ २० ॥ २१ ॥

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः ॥
दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते ॥ २२ ॥

सब लोग दण्ड से ठीक २ रहते हैं, क्योंकि अपने आप विना भयके कोई भी मनुष्य शुद्ध नहीं रह सकता । दण्ड हीके भयसे सब जगत् अपनी २ वस्तुओं का उपभोग करने पाते हैं ॥ २२ ॥

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः ॥
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥ २३ ॥

देवता, दानव, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी और सर्प, ये भी दण्ड हीसे भयभीत होकर अपना २ काम करते हैं ॥ २३ ॥

दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन् सर्वसेतवः ॥

सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥ २४ ॥

दण्ड यदि न हो, अथवा ठीक २ न दिया जाय, तो सब वर्णसंकर हो जावेंगे, शास्त्रीय नियम सब उच्छिन्न हो जावेंगे, और सब प्रजा बिगड़ जायगी ॥ २४ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ॥
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत् साधु पश्यन्ति ॥२५॥

जिसके राज्यमें अधिकारी दण्डदान अच्छी रीतिसे करनेके कारण काला लाल २ आँखवाला पापबुद्धिका नाशक दण्ड विचरता है, वहांकी प्रजाको कभी कष्ट नहीं होता ॥ २५ ॥

तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ॥
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ २६ ॥

विधान ठीक २ उस दण्डका करनेवाला राजा सत्य बोलनेवाला, विचारकर काम करनेवाला, बुद्धिमान्, धर्म, अर्थ, और काम, तीनों पुरुषार्थोंका जाननेवाला है, ऐसा मन्वादि कहते हैं ॥ २६ ॥

तं राजा प्रणयन् सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते ॥
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ २७ ॥

राजाके तीनों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, और काम) अच्छी रीतिसे दण्ड देनेसे सिद्ध होते हैं, और स्वार्थवश, पक्षपातसे, या क्षुद्रता (छिछोरी) से दण्ड देने वाले राजाका नाश होता है ॥ २७ ॥

दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः ॥
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥ २८ ॥

दण्ड बड़ा सामर्थ्यशाली, और मूर्खोंके अधिकारमें रहनेको अयोग्य होनेसे धर्मसे च्युत अधर्मी राजाका मय बाल बच्चों और बन्धुबान्धवोंके नाश करता है ॥ २८ ॥

ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ॥
अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन् देवांश्च पीडयेत् ॥ २९ ॥

फिर राजाका किला, सारा राज्य, स्थावर जङ्गम सब प्राणी, अन्तरिक्ष मन्मार्गी जीव, मुनि और देवता, सबको कष्ट होता है ॥ २९ ॥

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ॥
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३० ॥

उस दण्डका विधान मूर्ख लोभी अपठित और विषयासक्त राजा विना किसी दुसरेकी सहायताके ठीक २ नहीं कर सकता ॥ ३० ॥

शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा ॥
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥

शुद्धतासे रहनेवाला, प्रतिज्ञाका पूरा, शास्त्रोक्त आचारसे रहनेवाला, बुद्धिमान् राजा मन्त्री आदिकी सहायतासे दण्डका विधान ठीक २ कर सकता है ॥ ३१ ॥

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु ॥
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेष ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥ ३२ ॥

राजाको अपने राज्यकी प्रजाके साथ न्यायसे रहना चाहिये, शत्रुओंको खूब कड़ा दण्ड देना चाहिये, मित्रोंके साथ निष्कपट होना चाहिये, और प्रेमी ब्राह्मणों पर दया करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः ॥
विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ३३ ॥

जैसे एक बिन्दुमात्र भी तेल जलमें बहुत फैलता है, तैसेही इसप्रकारके चालचलन से चलनेवाले राजाका बड़े कष्टसे जीवन हो, तो भी, यश बहुत फैलता है ॥ ३३ ॥

अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः ॥
संक्षिप्यते यशो लोके घृतबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ३४ ॥

जैसे जलमें घीका बूंद जम जाता है, तैसे विषयासक्त राजाका यश दुराचार से घट जाता है ॥ ३४ ॥

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ॥
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥ ३५ ॥

अपने २ सदाचारमें तत्पर-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संकर, संकरसंकर, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यासी, सभोंकी रक्षा करनेके लिये राजाकी उत्पत्ति है ॥ ३५ ॥

तेन यद् यत् सभृत्येन कर्तव्यं रक्षता प्रजाः ॥
तत्तद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ३६ ॥

प्रजाओं की रक्षा करते समय राजा और उसके नोकरों (पुलिस अधिकारी आदि) को क्या २ करना चाहिये, उसे मैं क्रमेण आपसे कहता हूँ ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान् पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ॥
त्रैविद्यवृद्धान् विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने ॥ ३७ ॥

राजाको प्रातःकालमें उठकर विद्वान्, नीतिको जाननेवाले, और वृद्ध ब्राह्मणोंकी सेवा करनी चाहिये, और उन्हींकी आज्ञामें रहना चाहिये ॥ ३७ ॥

वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान् वेदविदः शुचीन् ॥
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥ ३८ ॥

वैदिक पवित्र और वृद्ध ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले राजाको राक्षस लोग भी मानते हैं ॥ ३८ ॥

तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्माऽपि नित्यशः ॥
विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् ॥ ३९ ॥

राजा विनीत रहने पर भी उन ब्राह्मणोंसे और भी विनय सीखे, क्योंकि नम्र राजाकी कभी हानि नहीं होती ॥ ३९ ॥

वहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः ॥
वनस्था अपि राज्यानि विनयात् प्रतिपेदिरे ॥ ४० ॥

बहुतसे राजा मय अपने लाव लवाजमेके उद्धतासे नष्ट होगये, और बहुतसे जङ्गली लोग भी नम्रतासे राजा होगये ॥ ४० ॥

वेनो विनष्टोऽविनयात् नहुषश्चैव पार्थिवः ॥
सुदामो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥ ४१ ॥

वेन, नहुष, सुदास, यवन, सुमुख, और निमि, इन राजाओंका उद्धतताके ही कारण सर्वनाश हुआ ॥ ४१ ॥

पृथस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च ॥
कुबेरश्च धनैश्चर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥ ४२ ॥

नम्रताके ही कारण पृथु और मनुको राज्य मिला, कुवेर धनके स्वामी हुए, और विश्वामित्र ब्राह्मण हुए ॥ ४२ ॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥४३॥

राजाको वैदिक ब्राह्मणोंसे तीनों वेद, नीति शास्त्रके जाननेवालोंसे नीतिशास्त्र, भई हुई घटनाका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तर्कविद्या, कृषि, पशुपालन, देन लेन आदि धन संपादनके उपाय, और वेदान्तशास्त्रको उन २ के ज्ञाताओंसे सीखना चाहिये ॥ ४३ ॥

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ॥
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥४४॥

इन्द्रियोंको वश करनेके लिये दिन रात उद्योग करना चाहिये, क्योंकि, वही राजा प्रजाको अपने वशमें रख सकता है, जिसने अपने इन्द्रयोंको वश किया हो ॥ ४४ ॥

दश कामसमुत्थानि तथाऽष्टौ क्रोधजानि च ॥
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

परिणाममें अत्यन्त खराब कामसे उत्पन्न होनेवाले दस और क्रोधसे आठ व्यसनोंका वर्जन करनेमें प्रयत्न करना चाहिये ॥ ४५ ॥

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ॥
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥ ४६ ॥

शौकीनीके व्यसनोंमें आसक्त राजाके धर्म और अर्थ नष्ट होते हैं, और क्रोधके व्यसनों में आसक्त राजाका तो प्राण ही चला जाता है ॥ ४६ ॥

मृगयाक्षा दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ॥

तौर्यत्रिकं वृथाऽट्या च कामजो दशको गणः ॥ ४७ ॥

शिकार, द्यूत, दिनमें निद्रा, निन्दा करना, स्त्री संभोग, मद्यपान (नशा), गाना बजाना, और हवा खोरी, ये दस व्यसन काम (पेश) के हैं ॥ ४७ ॥

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्याऽसूयाऽर्थदूषणम् ॥

वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ४८ ॥

दूसरोंके दोषोंको प्रकट करना, जबरदस्ती, द्रोह, दूसरोंके उत्कर्षको न न सहन करना, दूसरोंके नाममें बट्टा लगाना, किसीको वस्तु छीन लेना या न देना, गाली बकना, और मार पीट करना, ये आठ व्यसन क्रोधके हैं ॥ ४८ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ॥

तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ४९ ॥

जिसे सब लोग इन दोनोंका मूल कहते हैं, उस लोभको राजा अवश्य जीते, क्योंकि उसीसे तो ये भी उत्पन्न होते हैं ॥ ४९ ॥

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ॥

एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ५० ॥

शौकिनोंके व्यसनोंमें मद्यपान, जुआ, रंडीबाजी, और शिकार, इन चारको बहुतही खराब समझना चाहिये ॥ ५० ॥

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ॥

क्रोधजेऽपि गणे विद्यात् कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥ ५१ ॥

क्रोधके व्यसनोंमें मार पीट करना, गाली देना, और चोरी लगाना, इन तीनको बहुत ही खराब समझना चाहिये ॥ ५१ ॥

सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः ॥

पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥ ५२ ॥

ये सात व्यसन प्रायः [illegible] नाश करते हैं, और उनमें पहिला पहिला बहुत खराब समझना चाहिये, अर्थात् चोरी लगानेके अपेक्षा गाली गोरा करना [illegible] करनेसे अपेक्षा मार पीट करना, मारपीटसे शिकार, उससे रण्डी-बाजी [illegible] जुआ, और उससे खराब [illegible] अधिक २ खराब हैं ॥ ५२ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ॥

व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥ ५३ ॥

व्यसन, और मरण, इनमें व्यसन अधिक दुःख दायी है, क्योंकि व्यसनीका अधःपात होते जाता है, और व्यसनसे रहित मनुष्य मरनेसे स्वर्गमें जाता है ॥ ५३ ॥

मौलाञ्छास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान् कुलोद्गतान् ॥

सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ ५४ ॥

राजाको परम्परासे अपने यहाँके, शास्त्रज्ञ, शूर, निशानबाज, और कुलीन ऐसे पुरुषोंकी परीक्षाकर, सात या आठको अपने मन्त्री वनाना चाहिये ॥ ५४ ॥

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ॥

विशेषतोऽसहायेन, किन्तु राज्यं महोदयम् ॥ ५५ ॥

साधारण कार्य भी विना दूसरेकी सहायताके अकेलेसे नहीं होता, तो इतने भारी राज्यकी व्यवस्था कैसे अकेलेसे हो ? ॥ ५५ ॥

तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम् ॥

स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ५६ ॥

उन मन्त्रियोंके साथ सन्धि, लड़ाई, सेना, खजाना, नगर, राष्ट्र, खेती, खान, रक्षा (वन्दोवस्त), अपने पासके धन आदिका योग्यको दान, इत्यादि बातें विचारना चाहिये ॥ ५६ ॥

तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ॥

समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥ ५७ ॥

राजा उन मन्त्रियोंके मत पृथक् २, और सभामें सबोंके सामने, लेकर जिसमें अपना हित हो, उसके अनुसार काम करे ॥ ५७ ॥

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ॥

मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥ ५८ ॥

इन सातों मन्त्रियोंमें जो विद्वान् और संधि विग्रह यान आसन भेद और

समाश्रय छओं राजगुणोंका जाननेवाला ब्राह्मण मन्त्री हो, उसका मत विशेष रूपसे ले ॥ ५७ ॥

नित्यं तस्मिन् समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् ॥
तेन सार्धं विनिश्चित्य ततःकर्म समारभेत् ॥ ५८ ॥

उसपर सदा पूर्ण विश्वास रख कर सब काम उसे कहा करे, और उसके साथ निश्चय कर फिर किसी कामको करना प्रारम्भ करे ॥ ५८ ॥

अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्राज्ञानवस्थितान् ॥
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान् सुपरीक्षितान् ॥ ६० ॥

इन सात मुख्य मन्त्रियोंके अतिरिक्त और भी जो आचार और शीलसे युक्त, बुद्धिमान्, और कमासुत हों, उन्हे अच्छी तरह परीक्षाकर उपमन्त्री बनावें ॥६०॥

निर्वर्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः ॥
तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥६१॥

उपमन्त्रियोंकी संख्या उतनी रहे जितनोंसे राज्यका सब काम पूर्ण रीतिसे सम्पन्न हो सके,और वे उपमन्त्री चतुर और कामके जानकार होते हुए आलसी न होने चाहिये ॥ ६१ ॥

तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान् ॥
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥ ६२ ॥

उनमें शूर, चतुर, कुलीन और निर्लोभी जो हों, उन्हे खान चुङ्गी आदि तहसीलकी जगह, और जो पाप भीरु हों, उन्हे घरके बन्दोबस्तके काममें रखना चाहिये ॥ ६२ ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ॥
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ६३ ॥

सब शास्त्रोंको जाननेवाला, इशारा, चेहरा, और चेष्टासे पहिचाननेवाला इमानदार चतुर और कुलीन जो हो, उसे दूत बनाना चहिये ॥ ६३ ॥

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित् ॥
वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥ ६४ ॥

जो स्वामी पर प्रीति करे, ईमानदार, चतुर, पुरानी बातों की याद रखनेवाला, देशकी रीति और मौकेको जाननेवाला, मोटा ताजा, निडर और हजारमें बोलनेवाला ऐसा दूत होना चाहिये ॥ ६४ ॥

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ॥
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥ ६५ ॥

शिक्षा देनेका काम मन्त्रीके आधीन होता है, और शिक्षाके आधीन प्रजाका विनय होता है (अर्थात् दण्डके भयसे प्रजा नम्र (सीधी) रहती है)। खजाना और राज्यका काम राजाके आधीन, और किसीसे मेल या लड़ाई करानेका काम दूतके हाथमें होता है ॥ ६५ ॥

दूत एव हि सन्धत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ॥
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा ॥ ६६ ॥

दूत ही तो मेल करा सकता है, या मिले हुओंकी भी लड़ाई करा सकता है, क्योंकि दूत ऐसी बातको कहता है जिससे मेल या लड़ाई हो जाती है ॥ ६६ ॥

स विद्यादस्य कृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः ॥
आकारमिङ्गितं चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥ ६७ ॥

वह दूत राजा और नौकरोंके कामों का गुप्तरीतिसे इशारा आकार चेष्टा आदिसे जाँच करता रहे ॥ ६७ ॥

बुध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ॥
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद् यथाऽऽत्मानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

राजा उस दूतके द्वारा सब हालको ठीक २ जान कर उस कामको करे, जिससे अपनेको कभी कष्ट न हो ॥ ६८ ॥

जाङ्गलं सस्यसंपन्नमार्यप्रायमनाविलम् ॥
रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत् ॥ ६९ ॥

जहाँ अल्प वृष्टिसे ही धान्य उत्पन्न होता हो, आस्तिक लोक रहते हों, रोग आदि न हों, आस पासके लोक विनीत हों, रोज़गार आदि बहुत होना हो, ऐसे मनोहर देशमें राजाको वास करना चाहिये ॥ ६९ ॥

धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा ॥
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ७० ॥

जहाँ कि, चारो ओर-मरु भूमि (निर्जल देश) हो, ऊँचा कोट घना हो, अगाध जल हो, घने वृक्ष हों, वहुत सेना रक्खी हो, या पहाड़ हों, ऐसे स्थान पर राजाको नगर वसाना चाहिये ॥ ७० ॥

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ॥
एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥

जहाँ तक हो सके, राजाको उसी स्थान पर वसना चाहिये, जहाँ कि पहाड़ोंका किला हो, क्योंकि सब किलोंकी अपेक्षा पहाड़ों परके किलेमें बहुत लाभ है ॥ ७१ ॥

त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्सराः ॥
त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्गमनरामराः ॥ ७२ ॥

पहिले तीन प्रकारके जो धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, और अब्दुर्ग कहे हैं, उनमें निर्जलदेश (धन्वदुर्ग) में हरिण आदि पशु, महीदुर्ग में मूसे नेउर आदि, और अगाध जलके दुर्गमें मगर घडियाल आदि जलचरोंका वास रहता है, और दूसरे जो वार्क्ष, नृदुर्ग और गिरिदुर्ग हैं, उनमें घने पेड़ों (वार्क्षदुर्ग) पर बन्दर, नृदुर्गमें मनुष्य, और गिरिदुर्गमें देवताओंका वास रहता है ॥ ७२ ॥

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः ॥
तथाऽरयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥ ७३ ॥

हरिण आदि मृग, मूसे चूहे आदि, मगर आदि जलचर, वन्दर, मनुष्य, और देवता, अपने २ स्थान पर रहनेसे जैसे उन्हें शत्रु कष्ट दे नहीं सकते, इसी प्रकार राजाको भी किले पर रहनेसे शत्रु नाश नही कर सकते ॥ ७३ ॥

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ॥
शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीय ॥ ७४ ॥

किलेमें एक मनुष्य सौके साथ, और सौ मनुष्य दस हजारके साथ लड़ सकते हैं, इस लिये किला अवश्य बनवाना चाहिये ॥ ७३ ॥

तद् स्यादायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ॥
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ७५ ॥

किलेमें शस्त्र, धन, अन्न, घोड़ा, हाथी आदि सवारियाँ, ब्राह्मण, कारीगर, यन्त्र, तृण, और जाल अवश्य होने चाहिये ॥ ७५ ॥

तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः ॥
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्ष समन्वितम् ॥ ७६ ॥

राजा अपने लिये उस किलेके बीचोबीच जितना अपने को आवश्यक हो उतना लम्बा चौड़ा ऊँची २ भित्तियोंसे घिरा हुआ बरमसियाँ फूल और फलके पेड़ोंसे युक्त और स्वच्छ एक महल बनवावे ॥ ७६ ॥

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ७७ ॥

राजा उस महलमें रहते हुए अच्छे लक्षणवाली, बड़े कुलकी, सुन्दर, गुणवती, और प्रेमपात्र क्षत्रियकी कन्यासे विवाह करे ॥ ७७ ॥

पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ॥
तेऽयस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥७८॥

एक पुरोहित और एक ऋत्विक्का वरण करे, और वे दोनों इस राजाके श्रौत और स्मार्त सब कर्म किया करें ॥ ७८ ॥

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः ॥
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद् भोगान् धनानि च ॥७९॥

राजा नानाप्रकारके अश्वमेध आदि बहुत दक्षिणाके यज्ञ करे, और ब्राह्मणोंको धर्मार्थ स्त्री, गृह, भू, शय्या, आदि भोग और धन दे ॥ ७९ ॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम् ॥
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥ ८० ॥

सालियाना (कर) टॅक्स विश्वासी नौकरोंके द्वारा प्रजासे वसूल करे, लोगों पर टॅक्स शास्त्रहीके अनुसार लगावे, और प्रजाके साथ पिता पुत्रका व्यवहार

रक्खे ॥ ८० ॥

अध्यक्षान् विविधान् कुर्यात् तत्र तत्र विपश्चितः ॥
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन् नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥८१॥

सब कामोंके निरीक्षणके लिये पृथक् २ चतुर निरीक्षक रक्खे, और वे निरीक्षक सब नौकर चाकर अधिकारियों तकके कामोंका बराबर निरीक्षण किया करें ॥ ८१ ॥

आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत् ॥
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥ ८२ ॥

अध्ययन कर गुरुकुलसे घरको जानेवाले स्नातक ब्राह्मणोंका राजा अवश्य सत्कार करे, क्योंकि स्नातकोंका सत्कार राजाओंका अक्षय कोश कहलाता है ॥ ८२ ॥

न तं स्तेना न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति ॥
तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः ॥८३॥

इस ब्राह्मणोंके समीप में रक्खे हुए ब्राह्म खजाने को न तो चोर चुरा सकता है, न शत्रु हरण कर सकते हैं, न इसका कभी नाश होता है, इसलिये स्नातकोंका सत्कार कर इस ब्राह्मकोश (खजाना) को उनके पास अवश्य अनामत रक्खे ॥ ८३ ॥

न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित् ॥
वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥ ८४ ॥

अग्नियोंमें होम किया हुआ द्रव्य कदाचित नीचे (इधर उधर) गिरजाता है, शुष्क होजाता है, अथवा दग्ध होजाता है, पर ब्राह्मणोंको दिया हुआ कभी नष्ट नहीं होता, इसलिये अग्निहोत्रादि कर्म करनेकी अपेक्षा दान देना उत्तम है ॥ ८४ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥
प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ॥ ८५ ॥

दानका क्षत्रिय आदिको देने से सम (उतना ही) फल होता है, नामधारी

ब्राह्मण (ब्राह्मणके कर्म को न करनेवाले ब्राह्मण) को देनेसे द्विगुण फल, और पठितब्राह्मणको देनेसे अनन्त फल होता है ॥ ८५ ॥

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानतयैव च ॥
अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम् ॥ ८६ ॥

दानसे परलोक में अल्प अथवा अधिक फल प्राप्त होना उसकी श्रद्धा और ब्राह्मणकी पात्रता पर निर्भर है, अर्थात् ब्राह्मणकी योग्यता और दाताकी श्रद्धा जितनी अधिक होगी उतना ही फल भी अधिक मिलता है ॥ ८६ ॥

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः ॥
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ८७ ॥
संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम् ॥
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥ ८८ ॥

प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले राजाको यदि कोई लड़ने को पुकारे तो चाहे वह बरावरी का हो, बलवान् हो, अथवा दुर्बल हो, उसके साथ लड़नेमें-'युद्ध में पीछा न दिखाना, प्रजाओंकी रक्षा करना, और ब्राह्मणोंकी सेवा करना राजाओं को बहुत श्रेयस्कर है' इस क्षात्र धर्मके अनुसार कभी पीछे न हटे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ॥
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ८९ ॥

राजा लोग युद्धमें परस्पर लड़ते २ एक दूसरे को मारने पर भी पिछा न दिखाते मरनेसे स्वर्गलोकमें जाते हैं, (अर्थात् उन्हें स्वर्गवास मिलता है) ॥ ८९ ॥

न कूटैरायुधैर्हन्याद् युध्यमानो रणे रिपून् ॥
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥ ९० ॥

युद्धमें लड़ते समय गुप्त, बर्छीदार, जहरीले, या, अग्निमें तपा कर लाल किये हुये शस्त्रोंसे शत्रुओंको कभी न मारे ॥ ९० ॥

न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ॥
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥ ९१ ॥

न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् ॥
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ९२ ॥
नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम् ॥
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥

लड़ते २ रथसे भूमि पर उतरे हुये, नपुंसक, हाथ जोड़ने पर, केश खुल जाने पर, बैठे हुये, शरणागत, सोये हुये, झुक्के छूटजाने पर, वस्त्र छूटनेसे नङ्गा होने पर, शस्त्र हाथसे गिरने पर, केवल लड़ाई देखनेवाले, दूसरेसे लड़ते हुए, शस्त्रसे मूर्छित, पुत्रशोक आदिसे दुःखी, जखमी, डरे हुए, अथवा युद्धसे भागनेवाले शत्रुको क्षत्रियोंके उत्तम धर्मके अनुसार कभी न मारे ॥९१॥९२॥९३॥

यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः ॥
भर्तुर्यद् दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥
यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ॥
भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥

जो सिपाही डरने पर या भागने पर शत्रुओंसे मारा जाता है, उसे उसके राजाके सब पापका फल भोगना पड़ता है, और इसका जो कुछ पारलौकिक सुकृत संपादित रहता है, उसका फल उसके राजाको मिलता है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः ॥
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ॥ ९६ ॥

रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन, धान्य, पशु, स्त्रिया और सोना चाँदीसे अतिरिक्त सब वस्तुएँ, इनमें से जिसे २ जो २ सिपाही युद्धमें जीतता है, वह २ वस्तु उस २ सिपाही की होती है ॥ ९६ ॥

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥ ९७ ॥

'जीती हुई वस्तुओंमेंसे केवल सर्वोत्तम सोने चाँदी आदिकी वस्तुएँ, और हाथी घोड़ा आदि राजाको सिपाही दें' यही तो वैदिक सिद्धान्त है,

और सब मिलकर जीते हुए द्रव्यको उसके २ पराक्रमके अनुसार राजा उन्हें बांट दे ॥ ९७ ॥

एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः ॥
अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियो घ्नन् रणे रिपून् ॥९८॥

यह कहा हुआ पलटनियोंका धर्म सनातन और अनिन्द्य है, युद्धमें शत्रुओंका नाश करने वाले क्षत्रियको इस धर्म से हटना न चाहिये ॥ ९८ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत् प्रयत्नतः ॥
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥९९॥

राजा सदा नवीन भूमि धन आदिको जीतनेकी इच्छा करे, सम्पादित किये हुएकी अच्छी रीतिसे रक्षा करे, रक्षित धनको वढ़ानेकी चेष्टा करे, और लाभका सव्यय किया करे ॥ ९९ ॥

एतच्चतुर्विधं विद्यात् पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥
अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥ १०० ॥

अलब्ध लिप्सा, लब्ध रक्षा, रक्षित वृद्धि, लाभसद्व्यय, ये चारो स्वर्गके साधन है, अतः इन चारोंको आलस्य रहित होकर बराबर करता रहे ॥ १०० ॥

अलब्धमिच्छे द्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ॥
रक्षितं वर्धयेद् वृध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥ १०१ ॥

नवीन धन भूमि आदिका दण्डसे संपादन करे, संपादितकी स्वयं निरीक्षण से रक्षा करे, रक्षित धनकी रोज़गार आदि से वृद्धि करे, और उसके लाभमें मिले हुए द्रव्यका दानमें व्यय करे ॥ १०१ ॥

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ॥
नित्यं संवृतसवार्थो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥ १०२ ॥

दुष्टोंको दण्ड देनेमें सदा तत्पर रहे, पुरुषार्थ सदा दिखलावे, धनको सदा गुप्त रक्खे, और शत्रुके छिद्रको सदा देखा करे ॥ १०२ ॥

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत् ॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥ १०३ ॥

सदा दण्ड देनेवाले राजासे सब डरते हैं, इसलिये सबको दण्डहीसे वश करे ॥ १०३ ॥

अमाययैव वर्तेत न कथञ्चन मायया ॥
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥ १०४ ॥

किसीके साथ कपट न करे, किन्तु निष्कपट रहे, और शत्रुओंकी कपट चालको सदा दूतके द्वारा जानता रहे ॥ १०४ ॥

नास्य छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु ॥
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ १०५ ॥

अपना छिद्र कोई न जानने पावे, और शत्रुका तो छिद्र आप जान ले, ऐसा प्रयत्न राजा करे, और जैसे कछुवा अपने सब अवयवोंको छिपाता है, उसी प्रकार राजा भी अपने छिद्रको छिपावे ॥ १०५ ॥

बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत ॥
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥ १०६ ॥

बकके समान कर्तव्योंको विचारे, सिंहके समान पराक्रम करे, सियारके समान मौका पाते ही शत्रुका नाश करे, और खरगोशके समान प्रबलोंके सामनेसे भाग जाय ॥ १०६ ॥

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ॥
तानानयेद्वशं सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः ॥ १०७ ॥

इस रीतिसे राज्यका शासन करनेमें जो जो दुष्ट प्रतिबन्ध करें, उन सबको साम, दाम, और भेद, तीन उपायोंसे वश करे ॥ १०७ ॥

यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः ॥
दण्डेनैव प्रसह्यैतान् शनकैर्वशमानयेत् ॥ १०८ ॥

यदि तीनों उपायोंसे वे सर न हों, तो, दण्डसे हठात् उन्हें वश करे ॥१०८॥

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः ॥
सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥ १०९ ॥

राष्ट्रकी उन्नतिके लिये साम दान भेद और दण्ड चारो उपायोंमें साम (समझाना), और दान, इन दो उपायोंकी विद्वान्‌लोक प्रशंसा करते हैं ॥१०६॥

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ॥
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ११० ॥

किसी खेतमें अन्नके पेड़ और घास एक साथ उपजने पर भी कृषिक घासको उखाड़ता और अन्नकी रक्षा करता है, उसी प्रकार राजा राज्यकी रक्षा करे और दुष्टोंका नाश कर दे ॥ ११० ॥

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याद् जीविताच्च सबान्धवः ॥१११॥

जो राजा मूर्खतासे न ख्याल कर अपनी प्रजाको कष्ट देता है वह राजा मय उसके बाल बच्चों और धन संपत्तियोंके शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १११ ॥

शरीरकर्षणात् प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ॥
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात ॥ ११२ ॥

शरीरको कष्ट होनेसे प्राणियोंके प्राण जैसे क्षीण होते हैं, उसी प्रकार प्रजाको कष्ट होनेसे राजाओंके राज्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ११२ ॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत ॥
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥ ११३ ॥

राज्यकी रक्षा अच्छे रीतिसे होनेके लिये राजा आगेका प्रबन्ध करे, क्योंकि, राज्यकी रक्षा ठीक होनेसे राजाको सुख होता है ॥ ११३ ॥

द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् ॥
तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ ११४ ॥

दो २ तीन ३ और पाँच २ गाँवोंमें गोड़ईत, चौकी, थाना रक्खे, और सौ गाँवोंमें एक तहसील रक्खे ॥ ११४ ॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद् दशग्रामपतिं तथा ॥
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥ ११५ ॥

एक २ शहरमें अधिकारी, दस शहरोंका एक अधिकारी, बीस पर भी एक अफ्सर, सौ पर एक और हजार पर एक अधिकारी रक्खे ॥ ११५ ॥

ग्रामदोषान् समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ॥
शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ॥ ११६ ॥
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ॥
शंसेद्ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥ ११७ ॥

गाँवके झगड़े आदिका निर्णय वहांका अधिकारी करे, उससे न हो, तो, दस गाँवका अधिकारी, बीसका अधिकारी, सौका अधिकारी, और हजार गॉवका अधिकारी स्वयं निर्णय करे ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः ॥
अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥१०८॥

प्रजासे कर (टॅक्स) में जो अन्न दूध काष्ठ आदि मिले, उसे गोड़ईत अपने नौकरीका वेतन ले ॥ ११८ ॥

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि च ॥
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः परम् ॥ ११९ ॥

नौकरीका वेतन दस गाँवका अधिकारी दो हलकी खेतीकी पैदावार ले, बीस गाँवका अधिकारी दस हल की पैदावार, सौ गाँवोंका अधिकारी एक गाँव की उपज और हजार गॉवका अधिकारी साधारण शहरकी उपज ले ॥ ११९ ॥

तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कर्माणि चैव हि ॥
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः ॥१२०॥

गोड़ईत, चौकीदार, थानेदार आदिके सब काम राजाका विश्वासी व प्रेमी मन्त्री सावधानीसे देखे ॥ १२० ॥

नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ॥
उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥ १२१ ॥

नक्षत्रोंमें चन्द्रमाके समान प्रत्येक शहरमें बड़ी भारी भयानक और उच्च एक २

कलेक्टरी बनवावे, जिसमें सब बातोंका विचार हुआ करे ॥ १२१ ॥

स तानन्परिक्रामेत् सर्वानेव सदा स्वयम् ॥
तेषां वृत्तं परिणयेत् सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ १२२ ॥

वह कलेक्टर सब अधिकारियोंका प्रजाके साथ होनेवाले चाल चलनका निरीक्षण स्वयं व गुप्तचरोंसे करे ॥ १२२ ॥

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ॥
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः ॥१२३॥

राजाके नौकर प्रायः दूसरोंका धन खानेवाले और धूर्त होते हैं, इसलिये उनसे प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १२३ ॥

ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ॥
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥ १२४ ॥

जो दुष्ट अधिकारी लोगोंसे छल कपट कर धन (लांच) लें, उन्हे राजा सर्वस्व छीनकर हद पार कर दे ॥ १२४ ॥

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ॥
प्रत्यहं कल्पयेद् वृत्तिं स्थानकर्मानुरूपतः ॥ १२५ ॥

राजा अधिकारी, दासियाँ, और नौकर आदिके उनकी योग्यता और कामके अनुसार दैनिक वेतनका निश्चय कर दे ॥ १२५ ॥

पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम् ॥
षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥१२६॥

घरऊ काम धाम करनेवाले हलके नौकरोंको टका रोज, छ छ महीनोंपर पहिनने व ओढ़नेको वस्त्र, और महीने २ पर ३० सेर अन्न देना चाहिये, और बड़े अफ्सरों को को ६ टका नगद रोज, छ छ महिनों पर छ छ पहिनने और ओढ़नेके वस्त्र, और

एक २ महिनेसे ४॥ मन अन्न देना चाहिये, अर्थात् मध्यमको ३ टका रोज नगद, छमाही पर ३-३ वस्त्र, और एक २ महिने से २। मन अन्न देना चाहिये ॥१२६॥

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ॥
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करम् ॥ १२७ ॥

मालकी विक्री, खरीदी, मार्गका परिश्रम, व्यय, घाटा, और नफा, सब देखकर व्योपारियोंसे कर वसूल करे ॥ १२७ ॥

यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम् ॥
तथाऽवेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥ १२८ ॥

राजा कर उतना ही वसूल किया करे, जितनेसे न राजाको घाटा हो, न व्योपारियोंको ॥ १२८ ॥

यथाऽल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः ॥
तथाऽल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाऽऽब्दिकः करः ॥१२९॥

जूँक, बछुडा, और भ्रमर जैसे थोड़ा थोडा लोहू, दूध, और शहद को चूस लेते हैं, उसी प्रकार राजा सालियाना कर थोड़ा थोड़ा कर वसूल करे ॥ १२९ ॥

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ १३० ॥

पशु और सुवर्णके लाभ (नफा) का पचासवाँ हिस्सा अर्थात् २ दो रुपये सैकडे, धान्यका आँठवा, छठवा अथवा बारहवाँ हिस्सा अर्थात् १२, १६।, या ८ रुपये सैकड़े कर लेना चाहिये ॥ १३० ॥

आददीताऽथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् ॥
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥ १३१ ॥
पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च ॥

मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ १३२ ॥

वृक्ष, मांस, मधु, घी, सुगन्धी वस्तुएँ दवाइयाँ, दूध आदि रस, फूल, जड़, फल, पत्ते, साग, घास, चमड़ा, बाँस, मिट्टीके पात्र, और पत्थरके पात्र, इनके लाभ (नफे) पर १६ रुपये सैकड़े कर लगाना चाहिये ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् ॥
न च क्षुधाऽस्य संसीदेत् श्रोत्रियो विषये वसन् ॥१३३॥

राजा धन न रहनेसे भूखन मरने पर भी श्रोत्रियसे कर न ले, और अपने राज्यमें किसी श्रोत्रियको भूखा न रहने दे ॥ १३३ ॥

यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ॥
तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचिरेणैव सीदति ॥ १३४ ॥

जिस राजाके राज्यमे श्रोत्रिय ब्राह्मण क्षुधासे पीड़ित रहता है, उसका राज्य ही उस श्रोत्रियकी क्षुधाके कारण शीघ्र नष्ट होता है ॥ १३४ ॥

श्रुतवृत्ते विदित्वाऽस्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥
संरक्षेत् सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ १३५ ॥

श्रोत्रियकी विद्या और आचार विचार समझ कर उसके अनुसार उसे कुछ वृत्ति कर देनी चाहिये, और पुत्रके समान उसकी सब प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये ॥ १३५ ॥

संरक्ष्यमाणो राज्ञा यं कुरुते धर्ममन्वहम् ॥
तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ १३६ ॥

राजासे रक्षित श्रोत्रिय ब्राह्मण प्रतिदिन जो जो धर्मकार्य करता है, उसके पुण्य प्रभावसे उस राजाकी आयु, धन, और राज्यकी वृद्धि होती है ॥ १३६ ॥

यत्किञ्चिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम् ॥

व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥ १३७ ॥

साग, तृण, मूल, फल आदिके क्रयविक्रयसे जीवन निर्वाह करनेवाले हीन लोगोंसे सालियाना कुछ थोड़ा कर (टॅक्स) वसूल किया करें ॥ १३७ ॥

कारुकान् शिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः ॥
एकैकं कारयेत् कर्म मासि मासि महीपतिः ॥ १३८ ॥

कारीगर, पेसराज, और मजूरे, इनसे एक एक काम महीने २ से राजा करा लिया करे ॥ १३८ ॥

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ॥
उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीड़येत् ॥१३९॥

प्रेमवश अपना मूलच्छेद अर्थात् करकी माफी, और दूसरों का उच्छेद अर्थात् अधिक करको लगान, ये दो काम कभी न करे, क्योंकि कर माफ करनेसे अपने को और कर अधिक लेनेसे प्रजाको अत्यन्त कष्ट होता है ॥ १३९ ॥

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात् कार्यं वीक्ष्य महीपतिः ॥
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ॥ १४० ॥

राजाको मौका देख कर तीक्ष्ण और मृदु होना चाहिये, तीक्ष्ण और मृदु राजाको प्रजा बहुत मानती है ॥ १४० ॥

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम् ॥
स्थापयेदासने तस्मिन् खिन्नः कार्येक्षणे नृणाम् ॥१४१॥

यदि स्वयं काम न देख सके तो धार्मिक बुद्धिमान् विनीत और कुलीन मुख्य मन्त्रीको प्रजाके कामको निरीक्षण करनेमें लगावे ॥ १४१ ॥

एवं सर्वं विधायेदमितिकर्तव्यमात्मनः ॥
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥ १४२ ॥

इस प्रकार सब व्यवस्था कर सावधानीके साथ अपनी प्रजाकी राजा मनसे रक्षा करे ॥ १४२ ॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राध्द्रियन्तो दस्युभिः प्रजाः

संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥ १४३ ॥

नौकर चाकर मन्त्री पुरोहितके सहित जिस राजाके सामने चिल्लाती हुई प्रजाका धन डकैती लोग डाँका मार कर छीन ले जाते हैं, वह राजा जीवित रहने पर भी मरे के तुल्य है ॥ १४३ ॥

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ॥

निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ १४४ ॥

प्रजाकी रक्षा करना, यही क्षत्रिय का मुख कर्तव्य है, क्योंकि, प्रजाके पालनसे उचित करके द्वारा मिले हुए धन से धर्म कार्य कर राजाको पुण्य प्राप्ति हो सकती है ॥ १४४ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ॥

हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥१४५॥

राजा, बड़े सबेरे उठ कर शौच मुखमार्जन स्नान आदिसे पवित्र होकर अग्निहोत्र होम करने पर ब्राह्मणोंका दान दक्षिणासे सत्कार करनेके बाद दरबारमें जाय ॥ १४५ ॥

तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ॥

विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥१४६॥

दरबारमें जाकर सब दरबारियोंका स्वागत करने पर प्रिय वचनोंसे सत्कार करते हुये दरबार बरखास्त करनेके बाद मन्त्रियोंके साथ राज काजकी सलाह करे ॥ १४६ ॥

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥

अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥ १४७ ॥

राजा पहाड़के टीले पर, महलके अन्दर एकान्तमें अथवा निर्जन जङ्गलमें, अर्थात् जहाँ कोई सुन न सके ऐसे देशमें राज काजको विचारे ॥ १४७ ॥

यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ॥
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः ॥१४८॥

जिस राजाके राज काजकी बातें अन्य लोग नहीं जानने पातें, वह राजा खजानेमें द्रव्य घटने पर भी सकल राज्यका शासन कर सकता है ॥ १४८ ॥

जड़मूकान्धबधिरांस्तिर्यग्योनान् वयोऽतिगान् ॥
स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान् मन्त्रकालेऽपसारयेत् ॥१४९॥
भिन्दन्त्यवमता मन्त्रं तिर्यग्योनास्तथैव च ॥
स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ॥ १५० ॥

विचारके स्थानसे मूर्ख, गूंगा, अन्धा, बहिरा, सुग्गा, मैना आदि पक्षी, बुड्ढा, स्त्रियाँ, म्लेच्छ, रोगी, और अङ्गहीन, इन्हें अवश्य हटाना चाहिये, क्योंकि, जरा भी किसी समय इनका अपमान या तिरस्कार हो जाय, तो, उसी समय ये बातका प्रकाश कर देते हैं, स्त्रियाँ तो अवश्य ही गुप्त बातों को अपमान होने पर फोड़ देती है ॥ १४९ ॥ १५० ॥

मध्यन्दिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ॥
चिन्तयेद्धर्मकामार्थान् सार्धं तैरेक एव वा ॥ १५१ ॥

राजा मध्यान्ह (दोपहर) यो आधीरातमें उन (मन्त्रियों) के साथ अथवा अकेलाही सुस्ताकर थकावट दूर होनेकेबाद धर्म, काम. और धनागमका विचार करे ॥ १५१ ॥

परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम् ॥

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥१५२॥

धर्म, अर्थ, और काम, इनके उपायोंमें जहां कोई विरोध आता हो, उसको दूर करनेका उपाय, कन्याओंका दान (विवाह), और बालकोकी शिक्षा आदिसे रक्षा, इन्हें खूब सोचा करे ॥ १५२ ॥

दूतसंप्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च ॥
अन्तःपरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥१५३॥

दूतोंका दूसरे राज्योंमें भेजना, किसी प्रारम्भ किये हुये कार्यको समाप्त करना, जनानखानेकी चाल चलन, और दूसरे२ राज्योंमे रक्खे हुए प्रतिनिधियों का बर्ताव, इन्हें भी बिचारे ॥ १५३ ॥

कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः ॥
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥ १५४ ॥

करकी वसूली, नौकरोंको मासिक वेतन देना, मन्त्री आदिको बाहर भेजना, किसीको हानिकर कामके लिये रोकना, किसी कामको कराना, मुकद्दमोंका निर्णय, अपराधियोंको दण्ड, पापियोंको प्रायश्चित्त, पांच प्रकारके गुप्तचर, प्रजाका प्रेम. व असन्तोष, और अन्य राजाओंका बर्ताव, इन सबका अच्छे प्रकारसे विचार किया करे ॥ १५४ ॥

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ॥
उदासीनप्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥ १५५ ॥

अपने और शत्रुके देशके मध्यमें जो राजा हो उसके बर्ताव, अपनेको जीतने की इच्छा करनेवालेके कर्म (कार्रवाई), उदासीनके बर्ताव और शत्रुकी कार्रवाइयों का तो विशेष रूपसे विचार करे ॥ १५५ ॥

एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समासतः ॥
अष्टौ चान्याः समाख्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः॥१५६॥

मध्यस्थ, विजिगीषु, उदासीन, और शत्रु, ये चार मण्डलके मुख्य मूल हैं, अर्थात् इनके वश रहनेसे सब राष्ट्र वशमें रहता है, और दूसरी आठ प्रकृतियां शत्रुदेशके आगे का अपना मित्र, शत्रुका मित्र, अपने मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, अपने पीछेका, उसके पीछेका, उसके भी पीछेका और उसके पीछेका, ऐसी और भी होतीं हैं, इस प्रकार १२ प्रकृतियां हैं ॥ १५६ ॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः ॥
प्रत्येकं कथिता ह्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥ १५७ ॥

इन बारहोंको मन्त्री, राज्य, दुर्ग, कोश, (खजाना), और शासन ऐसी पांच २ प्रकृतियाँ होनेसे ६० प्रकृतियाँ और मूल १२ प्रकृतियाँ मिलकर ७२ प्रकृतियां है ॥ १५७ ॥

अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च ॥
अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥ १५८ ॥

अपने समीपके चारो और उनके मित्रोंको शत्रु, उनसे आगेके राजाओंको मित्र, और उनसे भी आगेवालोंको उदासीन न मित्र, न शत्रु, समझना चाहिये ॥ १५८ ॥

तान् सर्वानभिसंदध्यात् सामादिभिरुपक्रमैः ॥
व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥ १५९ ॥

साम, दान, और भेद, इन तीन उपायोंसे, केवल दण्डहीसे, अथवा सामहीसे जैसे बने वैसे उन सबोंको या जितने होसके उतनोंहीको मित्र बनाये रहना चाहिये ॥ १५९ ॥

सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च ॥
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥ १६० ॥

सन्धि, लड़ाई, चढ़ाई, किले में बैठना, भेद, और बलवान् की सहायता

लेना, इन छओं राजगुणोंका भी विचार किया करे ॥ १६० ॥

आसनं चैव यानं च सन्धिं विग्रहमेव च ॥
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥ १६१ ॥

किलेका आश्रय लेना, चढ़ाई, सन्धि (तह), लड़ाई, भेद (फोड़ फाड़), और बलवान् का आश्रयलेना, इन्हें मौके २ से करना चाहिये ॥ १६१ ॥

सन्धिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ॥
उभे यानासने द्वैधं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ १६२ ॥

सन्धि, लड़ाई, चढ़ाई, किलेमें छिपना, भेद, और बलवान्का आश्रय, ये सब दो २ प्रकारके हैं ॥ १६२ ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ॥
तदा त्वायतिसंयुक्तः सन्धिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥ १६३ ॥

दोनों एकही साथ काम करनेसे भये हुये या होनेवाले हानि और लाभको विभाग से बाँट लेनेको प्रतिज्ञा करना, और पृथक् २ काम करनेसे भये हुए या होनेवाले हानि लाभको हिस्सेकर बांट लेनेकी प्रतिज्ञा करना, इस रीतिसे सन्धि दो प्रकार का है ॥ १६३ ॥

स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ॥
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ १६४ ॥

चाहे लड़ाई (युद्ध) के दिन हों, या न हों, आप होकर किसीसे जयके लिये लड़ना, अथवा अपने मित्रका नुकसान करनेके निमित्त मित्रके शत्रुसे लड़ना, ऐसी लड़ाई भी दो प्रकारकी है ॥ १६४ ॥

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ॥
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥ १६५ ॥

शत्रुको आपत्ति उपस्थित देखकर अकेलेही शत्रुपर चढ़ाई करना या अपने मित्रकी सहायता लेकर शत्रुपर चढ़ाई करना ऐसी चढ़ाई भी दो प्रकारकी है॥१६५॥

क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा ॥

मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥ १६६ ॥

सेना, पलटन, हाथी, घोड़ा आदि नष्ट होनेसे दुर्बल होकर या मित्रके अनुरोधसे किलेमें छिपना, ऐसा आसन दो प्रकारका है ॥ १६६ ॥

बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ॥
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥ १६७ ॥

सेना और राजाको पृथक्२ करना इस रीतिसे भेदके दो प्रकार राजनीतिज्ञ कहते हैं ॥ १६७ ॥

अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः ॥
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ १६८ ॥

शत्रु कष्ट देता हो, या शत्रुका भय न हो, अतः किसी बलवान्का आश्रय लेना ऐसा दो प्रकार का संश्रय है ॥ १६८ ॥

यदाऽवगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ॥
तदात्वे चाल्पिकां पीड़ां तदा सन्धिस माश्रयेत् ॥१६९॥

सन्धि करनेसे यदि भावी फल अधिक होनेका निश्चय हो, तो तात्कालिक थोड़ा कष्ट रहने पर भी सन्धि करना चाहिये ॥ १६९ ॥

यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् ॥
अत्युच्छ्रितं तथाऽऽत्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥ १७०॥

जब यह समझ ले कि मन्त्री आदि सब अधिकारी, सेना, नौकर चाकर, और प्रजा सन्तुष्ट हैं, और सेना धन आदि युद्धके पर्याप्त है, तब युद्ध करे ॥ १७० ॥

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ॥
परस्य विपरीतं च तदा यायाद् रिपुं प्रति ॥ १७१ ॥

जब अपनी सेना को संतुष्ट और बलवान्, तथा शत्रु की सेना दुर्बल और स्वामी पर असंतुष्ट समझे, तब चढ़ाई करे ॥ १७१ ॥

यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च ॥
तदाऽऽसीन प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥ १७२ ॥

जब हाथी घोड़ा और सेना कम हो, तब शत्रु को धीरे २ समझाते हुये किले में छिपा रहे ॥ १७२ ॥

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ॥
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥ १७३ ॥

जब राजा यह जानले कि शत्रु सर्वथा अपनेसे अत्यन्त बलवान् है, तब अपनी सेनाका दो भाग कर आधीको लड़ाई पर भेजे, और आधीसे उनके दलमें फोड़ फाड़ कर अपनी ओर मिलाले ॥ १७३ ॥

यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ॥
तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ १७४ ॥

जब देखे कि शत्रु अपनेको जीत लेगा, तब शीघ्र किसी बलवान् और धार्मिक राजाका आश्रय (शरण) ले ॥ १७४ ॥

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च ॥
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ १७५ ॥

जो अपनी दुष्ट प्रजा और शत्रुकी सेनाको दण्ड दे सकता हो, उसकी हर तरहसे गुरुके समान सदा सेवा किया करे ॥ १७५ ॥

यदि तत्रापि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम् ॥
सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ १७६ ॥

और यदि शरणलेने पर भी कोई लाभ न होते उलटे हानि ही होनेकी संभावना हो, तो बेखटक युद्धही करे, (क्योंकि युद्धमें मरनेसे स्वर्ग तो मिलेगा) ॥ १७६ ॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ॥
यथाऽस्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ १७७ ॥

राजनीतिको जाननेवाले राजाको ऐसे उपाय सदा करने चाहिये, जिनसे उनको न तो मित्र, उदासीन, या शत्रु अधिक हों ॥ १७७ ॥

आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत् ॥
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥ १७८ ॥

बीती बातोंके गुण दोष, और सब कामके तात्कालिक व भविष्यके हानि लाभोंका विचार करना चाहिये ॥ १७८ ॥

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ॥
अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ १७९ ॥

जो राजा भावी तात्कालिक और अतीत कार्योंके हानि और लाभका विचार कर कार्य करता है, उसे शत्रु कभी कष्ट नही दे सकते ॥ १७९ ॥

यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको जयः ॥ १८० ॥

मित्र, उदासीन, और शत्रु अपनेको कष्ट न दे सकें, ऐसा काम करते रहना ही सर्वसाधारण राजनीति है ॥ १८० ॥

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः ॥
तदाऽनेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः ॥ १८१ ॥

जब किसी शत्रु पर चढ़ाई करनेकी इच्छा करे तब शत्रुके नगरमे धीरे धीरे वक्ष्यमाण रीतिसे जाना चाहिये ॥ १८१ ॥

मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद् यात्रां महीपतिः ॥
फाल्गुने वाऽथ चैत्रे वा मासौ प्रति यथाबलम् ॥१८२॥

राजाको मार्गशीर्ष (अगहन), फागुन या चैत्र में जब अपनी सेनाकी अनुकूलता हो, तब शत्रुपर चढ़ाई करनी चाहिये ॥ १८२ ॥

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद् ध्रुवं जयम् ॥
तदा यायाद् विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥१८३॥

अगहन फागुन और चैत्रसे अतिरिक्त जिस समय निश्चयसे जयका मौका हो, उस समय, या शत्रुपर संकट आने पर अवश्य चढ़ाई करनी चाहिये ॥१८३॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ॥
उपगृह्यास्पदं चैव चारान् सम्यग् विधाय च ॥ १८४ ॥
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम् ॥

सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥ १८५ ॥

अपने राज्य व किलेका ठीक बन्दोवस्त कर युद्धकी पूरी तौरकी तैय्यारीके साथ, पड़ावके लिये तम्बू कनात आदि लेकर, गुप्तचरोंको चारों ओर भेजकर, जङ्गल, पानी, और स्थलके मार्गका अच्छी रीतिसे पता लगानेके बाद, हाथी, घोड़सवार, रथ, पैदलसिपाही, सेना और नौकर ऐसी छ प्रकारकी सेना लेकर युद्धको रीतिके अनुसार धीरे २ शत्रुके नगरमें घुसना चाहिये ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढ़े यत्नतरो भवेत् ॥
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ १८६ ॥

जो मित्र गुप्त रीतिसे अपने शत्रुसे मिला हो, और जो क्रोध से नौकरी छोड़कर फिर नौकरीके लिये अपने पास लौट आया हो, इन दोके विषयमें सदा सावधान रहना चाहिये, क्योंकि ये बड़े भारी शत्रु होते हैं ॥ १८६ ॥

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ॥
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुड़ेन वा ॥ १८७ ॥

मार्गमें दण्डव्यूह, शकटव्यूह, वहारव्यूह, मकरव्यूह, सूचीव्यूह या गरुड़-व्यूहसे वस्तुस्थितिके अनुसार अर्थात् चारों ओरसे शत्रुके आनेकी संभावना हो तो, सबके आगे भय सेनाके मुख्य सेनापति, सबके पीछे भय सेनाके सेना-पति, दोनों बगल हाथी, उनके पास घोड़सवार, उनके पास पैदल, और मध्यमें राजा, ऐसा दण्डव्यूह बनाकर चले, केवल पीछेकी ओरसे शत्रुके आक्रमणकी संभा-वना होनेसे सबके आगे थोड़ीसी सेना, मध्यमें राजा और पीछे पैदल, घोड़सवार आदि ऐसा शकटव्यूह बनाकर चले, बगलसे शत्रुके आनेकी संभावना होनेपर आगे पीछे थोड़ी २ सेना, और बीचमें बहुत ऐसा वराहव्यूह, या नामके लिये केवल २-४ ही सिपाही आगे पीछे, और सारी सेना मध्यमें ऐसा गरुड़व्यूह बनाकर चले, आगे और पीछे, दोनों ओरसे शत्रुके आनेकी संभावना होनेसे आगे पीछे अधिक, और मध्यमें थोड़ी ऐसा मकरव्यूह बनाकर चले, और आगेसे शत्रुके आनेकी संभावना हो, तो, एकके पीछे एक इस क्रमसे सूचीव्यूह बनाकर चले॥१८७॥

यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद् बलम् ॥
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् ॥ १८८ ॥

जिस ओरसे भयकी शङ्का हो, उसी ओर सेनाको बढ़ा देना चाहिये, और जब पड़ाव डालना हो तब चारो ओर बराबर सेना और मध्यमें राजा, इस प्रकार पद्मव्यूह बनाकर कही भी पड़ाव डाले ॥ १८८ ॥

सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ॥
यतश्च भयमाशङ्केत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥१८९॥

युद्धके समय एक २ सेनापति और उसको अध्यक्ष (दस सेनापतियोंका अफसर) को चारो ओर रक्खे, और जिधिरसे भय ज्ञात होता हो उधिरही मोर्चेबन्दी करे ॥ १८९ ॥

गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः ॥
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥ १९० ॥

युद्धके स्थानमें चारों ओर लड़वैये, निडर, और कभी न फूटनेवाले ऐसे विश्वासियोंकी देख रेखमें एक २ सेनाकी टोली रखनी चाहिये ॥ १९० ॥

संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद्बहून् ॥
सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥१९१॥

पहिले थोड़ी २ सेना भेज कर युद्ध करते २ एकदम सेनाको बढ़ा दे, और (सूचीव्यूह)लगातार, या(वज्रव्यूह)तीन हिस्सा कर सेनाको लड़ाना चाहिये॥१९१॥

स्यन्दनाश्वः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा ॥
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥ १९२ ॥

समथर भूमिपर रथ और घोड़सवारोंसे, पानीमें नाव और हाथियोंसे, झाड़ी,और दरखतोंमें तीर कमानोंसे और भूमिपर तलवार भाला आदि शस्त्रोंसे युद्ध करना चाहिये ॥ १९२ ॥

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालाञ्शूरसेनकान् ॥
दीर्घांल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत् ॥ १९३ ॥

कुरुदेश, मत्स्यदेश, पञ्जाब और मथुराके लम्बे २ और नाटे २ लोगोंकी पलटनोंको सबके आगे रखना चाहिये ॥ १९३ ॥

प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत ॥

चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि ॥ १९४ ॥

सेनाका व्यूह बनाकर उसे खूब प्रोत्साहन दे, परीक्षा करे, और शत्रुओंसे लड़ते समयकी उसकी कार्रवाइयोंको देखे ॥ १९४ ॥

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ॥

दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥ १९५ ॥

शत्रुको घेरले, उसके देशको लूट मार कर उजाड़ डाले, और उसे तृण अन्न और जल भी न मिले ऐसा कष्ट दे ॥ १९५ ॥

भिन्द्याच्चैव तड़ागानि प्राकारपरिखास्तथा ॥

समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥ १९६ ॥

तालाव, भींत, खन्दक खाड़ियां सब तोड़ दे, और रात्रिमें शत्रुको खूब त्रास दे ॥ १९६ ॥

उपजप्यानुपजपेद् बुध्येतव च तत्कृतम् ॥

युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥ १९७ ॥

जय चाहनेवाला, शत्रुके जो २ फूट सकते हों, उन्हें फोड़े, और ज्योतिष शास्त्रसे ग्रहोंकी अनुकूलता देख कर निडर हो युद्ध करे ॥ १९७ ॥

साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ॥

विजेतुं प्रयतेतारीन् न युद्धेन कदाचन ॥ १९८ ॥

अनित्यो विजयो यस्माद् दृश्यते युध्यमानयोः ॥

पराजयश्च संग्रामे तस्माद् युद्धं विवर्जयेत् ॥ १९९ ॥

जहां तक बने साम दान और भेद तीनों उपायोंसे या एक २ से शत्रुओंको जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये, न कि युद्धसे ; क्योंकि लड़ते २ किसका जय और किसका पराजय होगा इसका कोई निश्चय नहीं है, इस लिये युद्ध न करना चाहिये ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसंभवे ॥

तथा युध्येत संपन्नो विजयेत रिपून् यथा ॥ २०० ॥

यदि किसी प्रकार ये तीनों उपाय शत्रुओंपर न लग सकें, तो, ऐसा युद्ध करे कि शत्रुओंको उसमें जीत ही ले ॥ २०० ॥

जित्वा संपूजयेद् देवान् ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान् ॥
प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च ॥ २०१ ॥

शत्रुओंका जय करने पर उन देशोंकी देवताओंकी पूजा, सत्पात्र ब्राह्मणोंका सत्कार, और सदा उसके जारी रहनेके लिये गाँव इनाम, और वहाँकी प्रजाको अभय प्रदान करना चाहिये ॥ २०१ ॥

सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम् ॥
स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ॥ २०२ ॥

उन जीते हुए राजा मन्त्री पुरोहित आदिके अभिप्रायको जानकर यदि किसी प्रकारकी हानि न ज्ञात होती हो तो उसी शत्रुके कुलके किसी एक एकका उस उस राजगद्दी पर अभिषेक कर अपने अनुकूल नवीन नियम उसे लगा दे ॥२०२॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् ॥
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥ २०३ ॥

उनके देशके आचार विचारोंको प्रमाण माने, और वहांके नवीन नियुक्त मन्त्री आदि और राजा सबोंका रत्न आदि देकर खूब सत्कार करे ॥ २०३ ॥

आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकारकम् ॥
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥ २०४ ॥

यद्यपि इच्छित वस्तुएँ जिससे ली जावेंगी उसे दुःख, और जिसे दी जावेंगी उसे सन्तोष अवश्य होता है,परन्तु समय २पर उसे करना भी ठीक होता है॥२०४॥

सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ॥
तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया ॥ २०५ ॥

जो कुछ काम है वह सब उद्योग और भाग्यके आधीन होता है। उसमें भाग्यकी गति तो अचिन्त्य है, पर उद्योग करना मनुष्यके हाथ है ॥ २०५ ॥

सह वाऽपि व्रजेद् युक्तः सन्धिं कृत्वा प्रयत्नतः ॥
मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥ २०६ ॥

मित्रता (दोस्ती), धन, या भूमि, इनका लाभ होनेवाला हो, तो, दूसरेके साथ सन्धि (तह) कर उसके साथ २ चढ़ाई करनी चाहिये ॥ २०६ ॥

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ॥
मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात् ॥ २०७ ॥

चढ़ाई करनेके बाद सन्धि या धन लेना जो कुछ करना हो उसे अपने पीछे के अथवा उसे अपने जाने पर ज्यादा काम करनेसे रोकनेवाला, उन दोनोंकी अनुकूलता से करे ॥ २०७ ॥

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते ॥
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥ २०८ ॥

भविष्यमें वर्धिष्णु-दुर्बल राजाकी भी सदाके लिये मैत्री होती हो तो राजाको उसे करनेसे जितना लाभ हो सकता है उतना तात्कालिक धन या भूमि मिलनेसे नहीं हो सकता ॥ २०८ ॥

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ॥
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते ॥ २०९ ॥

धार्मिक, कृतज्ञ, सन्तोषी, प्रेमी, और लग कर काम करनेवाला छोटा भी मित्र क्यों न हो, वह प्रशस्त (ठीक) है ॥ २०९ ॥

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च ॥
कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥ २१० ॥

विद्वान्, कुलीन, शूर, चतुर, दानी, कृतज्ञ, और धैर्यवान् शत्रुको विद्वानोंने कठिन कहा है ॥ २१० ॥

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता ॥
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीन गुणोदयः ॥ २११ ॥

यदि उदासीन राजा सज्जन, पुरुषका पहिचानदार, शूर, दयालु, और बहुत दानी हो, तो, उससे मेल करे ॥ २११ ॥

क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धिकरीमपि ॥

परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ॥ २१२ ॥

यदि अपनी रक्षा जिसमें कभी रोग नहीं होता, अन्न और पशु बहुत होते हैं, ऐसी अच्छीसे अच्छी भी भूमिको त्यागनेसे होती हो तो भी उसे विना विचारे त्याग दे ॥ २१२ ॥

आपदर्थं धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद्धनैरपि ॥
आत्मानं सततं रक्षद्दारैरपि धनैरपि ॥ २१३ ॥

आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये, सारा भी धन देकर स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये, और स्त्रियाँ और धन, सभीसे अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥ २१३ ॥

सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो भृशम् ॥
संयुक्ताश्च वियुक्ताश्च सर्वोपायान् सृजेद् बुधः ॥२१४॥

चारो ओरसे सब प्रकारकी धनकी कमी, प्रजाका असन्तोष, मित्रको कष्ट आदि आपत्तियाँ एकही समय उपस्थित होनेसे उनको दूर करनेके लिये जरा भी न घबड़ाते उस समय सभी उपायोंको करना चाहिये ॥ २१४ ॥

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः ॥
एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये ॥ २१५ ॥

उपाय, प्राप्य, और अपनी ओर ध्यान देकर अपना काम साधनेका प्रयत्न करना चाहिये ॥ २१५ ॥

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः ॥
व्यायम्याप्लुत्य मध्यान्हे भोक्तुमन्तःपुरे विशेत् ॥२१६॥

राजा दरबार बरखास्त करनेके बाद इस प्रकार मन्त्रियोंके साथ सब राजकार्यका विचार कर पश्चात् कुछ कवायद खेल कूद आदि कर दो पहरमें भीतर जनानखानेमें भोजनके लिये जाय ॥ २१६ ॥

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः ॥
सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः ॥ २१७ ॥

भोजनालयमें आत्मीय (अर्थात् राजाको प्राणके समान माननेवाले) भोजन

का समय जाननेवाले और कभी न फूटनेवाले पाचक और वैद्योंसे पकाये व जांचे हुये अन्नको विषको नष्ट करनेवाले मन्त्रोंसे मन्त्रियोंके द्वारा फुँकवा कर भोजन करे ॥ २१७ ॥

विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत् ॥
विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा ॥ २१८ ॥

राजाके खाने व पीनेकी सब वस्तुओंमें विषनाशक औषधियाँ मिलानी चाहिये, और राजाको विषनाशक जवाहिरात अपने शरीर पर सदा रखने चाहिये ॥ २१८ ॥

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः ॥
वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः ॥ २१९ ॥

गुप्तचरोंके द्वारा परीक्षा करा कर वस्त्र आभूषण आदिमें कोई जहरीली वस्तु तो नही है इसका जांच करानेके बाद दासियोंको राजा स्नान आदिके जल पात्र, चन्दन, धूप, अतर आदिको छूने दे ॥ २१९ ॥

एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने ॥
स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालङ्कारकेषु च ॥ २२० ॥

इस प्रकारसे सवारी, बिस्तर, गद्दी, भोजनकी वस्तुएँ, स्नानका जल, चन्दन आदि, पोशाख, और अलङ्कार, (गहने) इन सबके विषयमें राजाको सावधानी रखनी चाहिये ॥ २२० ॥

भुक्तवान् विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ॥
विहृत्य तु यथाकालं पुनः कार्याणि चिन्तयेत् ॥२२१॥

भोजनके बाद जनानेमें अपनी स्त्रियोंके साथ कुछ देर तक हँसी मस्खरी आदिसे मन बहला कर पश्चात् रोजके समय पर फिर अपने कार्यके विचारमें लगना चाहिये ॥ २२१ ॥

अलङ्कृतश्च संपश्येदायुधीयं पुनर्जनम् ॥
वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥२२२॥

पश्चात् वस्त्र आभूषण आदि पहिन कर सेना, घोड़े, हाथी, शस्त्र, और

अलङ्कार इनका निरीक्षण करे ॥२२२॥

सन्ध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत् ॥
रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥ २२३ ॥

फिर सायं सन्ध्योपासन कर अपने महलमें जाकर वहाँ एक एक कर सब गुप्तचरोंसे उनकी कार्रवाइयों को सुने ॥२२३॥

गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम् ॥
प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः ॥ २२४ ॥

गुप्तचरोंकी विदाई कर पासके कमरामें कपड़ा आदि उतारनेके बाद दासियोंके साथ २ जनानखानेमें भोजनके लिये फिर जाय ॥ २२४ ॥

तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्तूर्यघोषैः प्रहर्षितः ॥
संविशेत्त यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः ॥ २२५ ॥

वहां भोजन करनेके बाद थोड़ा गाना बजाना सुननेसे कर चित्त प्रसन्न करने पर निद्रा करे और प्रति दिनके समय पर (प्रभातमें) सोकर उठे ॥ २२५ ॥

एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः ॥
अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत् ॥ २२६ ॥

इति मनुस्मृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

राजाकी प्रकृतिको स्वास्थ्य रहनेसे इन सब कामोंको स्वयं करे, और स्वास्थ्य न रहे तो नौकरोंसे करावे ॥ २२६ ॥

इति श्रीमनुस्मृतिभाषाप्रकाशे राजधर्मनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥

प्रजाके मुकदमोंको देखना हो, तो, ब्राह्मण और मन्त्रियोंके साथ नम्रतासे सभा (कोर्ट) में जाय ॥ १ ॥

तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥
विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥ २ ॥
प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ॥
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥

सादे कपड़े और आभूषण पहिने हुये वहां बैठ कर या खड़े २ ही (जैसा काम हो) दाहिने हाथको उठा कर देश जाति और कुलके व शास्त्रीय रीति (कानून) के अनुसार अठारह प्रकारके प्रजाके कामोंको देखे ॥ २ ॥ ३ ॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ॥
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ ४ ॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ॥
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ ५ ॥
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ॥
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ॥
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥

उनमें पहिला ऋणादान (देन लेनका काम) है, फिर निक्षेप (किसीके

पास अनामत रखना), विना मालिकीके वेच देना, साझीदारी, दान देकर न देना, मासिक वेतन न देना, शर्तको पूरा न करना, बेचने या खरीदनेके बाद पश्चात्तापसे उसे फेरना, नौकर मालिकका झगड़ा, खेतके सरहदकी लड़ाई, गाली गोरा, मार पीट, चोरी, अत्याचार, स्त्री पर जबरी, पति पत्नीका विवाद, बटवारा, जुवा, और दाँव लगा कर पशु पक्षियोंकी लड़ाई करना, ऐसे १८ प्रकारके प्रजाके विवाद (मुकदमे) होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

एष स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ॥
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ८ ॥

इन विषयोंमें लोग बहुत झगड़ा किया करते हैं, अतः उनका निर्णय धर्म (कानून) से करना चाहिये ॥ ८ ॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ॥
तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥ ९ ॥

जब राजा स्वयं प्रजाके झगड़ोंको न देख सके, तो, उनको देखनेके लिये किसी विद्वान् ब्राह्मणको नियुक्त कर दे ॥ ९ ॥

सोऽस्य कार्याणि संपश्येत् सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतैः ॥
सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥ १० ॥

यह नियुक्त ब्राह्मण तीन और सभ्यों (जूरियों) के साथ मिल कर सभा (कोर्ट) ही में बैठ कर या खड़े २ सब राजाके कामोंको देखा करे ॥ १० ॥

यस्मिन् देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ॥
राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान् ब्रह्मणस्तां सभां विदुः ॥ ११ ॥

जिस न्यायालय (कोर्ट) में तीन वैदिक ब्राह्मणोंके साथ राजनियुक्त (जज) ब्राह्मण बैठता है, उस न्यायालयको ब्रह्मदेवके न्यायालयके समान विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ११ ॥

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ॥
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ १२ ॥

जहां सभ्योंके पास अधर्मसे पीड़ित होकर न्याय लेनेके लिये धर्म आने

पर भी उसके कष्टको वे दूर नहीं करते, तो, उन सभ्योंको ही उस पापका फल भोगना पड़ता है ॥ १२ ॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ॥
अब्रवन् विब्रुवन् वाऽपि नरो भवति किल्बिषी ॥ १३ ॥

या तो न्यायालयमें जाना ही नहीं, या जाकर ठीक और सत्य ही बोलना चाहिये, और वहाँ जाने पर चाहे न बोले या असत्य बोले, उसे पाप लगता ही है ॥ १३ ॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ॥
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

लोगोंके सामने जिस न्यायालयमें धर्म और सत्यको अधर्म और असत्यसे हरा दिया जाता है अर्थात् निर्णयमें अन्याय होता है वहांके न्यायाधीशोंका नाश होता है ॥ १४ ॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ १५ ॥

धर्मका उल्लंघन करनेसे वही नाश करता है, और उसकी रक्षा करनेसे रक्षा करता है, इसलिये धर्म अपना नाश न करे अतः कभी धर्मका उल्लंघन न करना चाहिये ॥ १५ ॥

वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ॥
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६ ॥

धर्म सब कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला वृष रूपी भगवान् है। जो मनुष्य उसका उल्लंघन करता है उसे देवता लोग मूर्ख (स्वार्थघातक) समझते हैं, इस लिये धर्मका कभी अतिक्रमण न करना चाहिये ॥ १६ ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ॥
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ १७ ॥

एक धर्म ही मित्र है, जो कि, मरने पर भी साथ देता है, क्योंकि, और सब शरीरके नष्ट होते ही दूर हो जाते हैं ॥ १७ ॥

पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ॥
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥

अन्याय करनेसे चौथाई दोष न्यायाधीश (जज) को, चौथाई साक्षियों (गवाहों) को, चौथाई सभ्यों (जूरियों) को, और चौथाई राजाको लगता है ॥ १८ ॥

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ॥
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥ १९ ॥

जिस न्यायालयमें झूठे वादी या प्रतिवादीकी निन्दाकी जाती है, अर्थात् हरा दिये जाते हैं, वहांके न तो राजाको दोष लगता है न न्यायाधीश, या सभ्यों (जूरियों) को ॥ १९ ॥

जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद् ब्राह्मणब्रवः ॥
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथञ्चन ॥ २० ॥

राजाके यहाँ धर्मोपदेशक न्यायाधीश ब्राह्मण होना चाहिये, चाहे वह जन्मसे ही केवल ब्राह्मण कहलानेवाला क्यों न हो, अर्थात् ब्राह्मणोंके कर्तव्य न करनेवाला होने पर भी जातिसे जो ब्राह्मण हो, उसे ही न्यायाधीश करना चाहिये, न कि बडे भारी सदाचारी भी शूद्रको ॥ २० ॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम् ॥
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः ॥२१॥

जिस राजाके राज्यमें न्यायाधीशका काम शूद्र करता है, उसका राज्य शीघ्र ही देखते २ किसी आफतमें कीचड़में गौके समान फँसता है ॥ २१ ॥

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ॥
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥ २२ ॥

जिसका राज्य नास्तिक और शूद्रोंसे व्याप्त और द्विज शून्य रहता है, उसका राज्य शीघ्र ही अकाल और रोगसे व्याप्त होकर नष्ट होता है ॥ २२ ॥

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ॥

प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत् ॥ २३ ॥

न्यायाधीशको कपड़े पहिन कर न्यायासन पर बैठते ही एकाग्रचित्तसे इन्द्र आदि आठों दिक्पालोंको वन्दन कर पश्चात् मुकदमोंके कामका प्रारम्भ करना चाहिये ॥ २३ ॥

अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ ॥
वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥ २४ ॥

प्रजाका लाभ और हानि, तथा धर्म, और अधर्मको सोच विचारकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रके मुकदमोंको क्रमसे देखे ॥ २४ ॥

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥
स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च ॥ २५ ॥

आवाज, रङ्ग, इङ्गित, आकार, नेत्र, और व्यापार आदि बाहरी चिन्होंसे मनुष्योंके भीतरी हालको जानना चाहिये ॥ २५ ॥

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २६ ॥

आकार, इङ्गित, चाल, चेष्टा, भाषण, नेत्र और मुखका विकार (लाली फीकेपन, कृष्णता), आदिसे मनके भीतरकी बात जानी जा सकती है ॥ २६ ॥

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजाऽनुपालयेत् ॥
यावत् स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ॥ २७ ॥

नाबालिकके नाबालिकी और विद्याध्ययन समाप्त होने तक उसके मौरूसी या हिस्सेके धनकी रक्षा राजाको करनी चाहिये ॥ २७ ॥

वशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ॥
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥ २८ ॥

वन्ध्या, अथवा जिनके पुत्र मर गये हों अर्थात् मृतवन्ध्या, इनके पतियोंका परदेश जाने पर पता न लगता हो, जिन्हें और कोई न हो, ऐसी पतिव्रता कुलीन स्त्रियोंके और विधवा और रोगी स्त्रियोंके धनकी भी रक्षा राजा हीको नाबालिकके समान करनी चाहिये ॥ २८ ॥

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः ॥
ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ २९ ॥

इन स्त्रियोंके जीते जीव यदि इनके धनको कोई सम्बन्धी छीनें, तो उन्हें धर्मात्मा राजाको चोरीके (कानून) नियमानुसार सजा देनी चाहिये ॥ २६ ॥

प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत ॥
अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ॥ ३० ॥

जो माल नावारिसीमें राजाको मिले, उसे राजाको अपने यहां तीन वर्ष पृथक् रखना चाहिये, और तीन वर्षोंके अन्दर यदि कोई उसका वारिस उपस्थित हो, तो वह उसे पा सकता है, नहीं तो तीन वर्षोंके बाद राजा उस मालको ले ले ॥ ३० ॥

ममेदमिति यो ब्रूयात् सोऽनुयोज्यो यथाविधि ॥
संवाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तद् द्रव्यमर्हति ॥ ३१ ॥

नावारिसी मालका कोई मालिक बनकर कहे कि यह माल मेरा है, तो उसे उस मालके विषयमें खूब पूँछताछ करने पर उसके बातकी मालसे यदि मिलान हो, तो वह उस मालको पा सकता है ॥ ३१ ॥

अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ॥
वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

खोये हुये मालके जगह, दिन, रङ्ग, आकार, और संख्या न बतलानेसे उसे उसीमालके कीमतके बराबर दण्ड (जुर्माना) करे ॥ ३२ ॥

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः ॥
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ३३ ॥

राजाको नावारिसी मालका पहिले साल बारहवाँ भाग, दूसरे साल दसवाँ भाग, और तीसरे साल छठवाँ भाग रक्षा निमित्त अपने हकका उसके मालिकसे लेना चाहिये ॥ ३३ ॥

प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद् युक्तैरधिष्ठितम् ॥
यांस्तत्र चौरान् गृह्णीयात तान् राजेभेन घातयेत् ॥ ३४ ॥

किसीके खोये हुए मालका राजपुरुषों (पुलिस) को पता लगनेसे उनको उसकी रक्षा करनी चाहिये, और उनमें जो चोर साबित होजाय उन्हें दरबारी

हाथीसे कुचलवा देना चाहिये ॥३४॥

ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ॥
तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ॥ ३५ ॥

कहींसे गड़ा हुआ माल निकलने पर कोई सत्य २ उसे अपना कह कर सत्यतासे साबित करदे, तो, उस मालसे बारहवाँ या छठवाँ हिस्सा राजा अपने हक्का लेकर बाकी उसे दे दे ॥३५॥

अनृतं तु वदन् दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ॥
तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पायसीं कलाम् ॥३६॥

झूठ बोलनेवालेको, उसके पास जो कुछ हो उसमेंसे आठवाँ हिस्सा या निकले हुये मालका कुछ हिस्सा दण्ड करना चाहिये ॥ ३६ ॥

विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ॥
अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥ ३७ ॥

विद्वान् ब्राह्मणको कहीं भी गड़ा हुआ धन मिले, तो, वह सब ले, क्योंकि, ब्राह्मण सबका मालिक है ॥ ३७ ॥

यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ ॥
तस्माद् द्विजेभ्यो दत्त्वाऽर्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥३८॥

भूमिमें पुराना गड़ा धन राजाको यदि मिले, तो, वह उसमेंसे आधा ब्राह्मणोंको देकर आधा खजानेमें जमा करे ॥ ३८ ॥

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ ॥
अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥ ३९ ॥

पुराने गड़े धन और सोना चाँदी आदिकी खानोंके आधे भागको राजा रक्षाके निमित्त ले, क्योंकि, भूमिका मालिक राजा होता है ॥ ३९ ॥

दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम् ॥
राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ ४० ॥

राजा जाँच करते समय चोरोंसे पाया हुआ धन सबको दान करदे, चोरोंके मालका स्वयं उपयोग करनेसे चोरीका पाप राजाको लगता है ॥ ४० ॥

जातिजानपदान् धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित् ॥
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ४१ ॥

वर्णधर्म, जातिधर्म, देशधर्म, रोजगारके धर्म, और कुलधर्म सबोंका विचार कर उन्हींके अनुसार नवीन कोई अपना नियम राजा कायम कर सकता है ॥४१॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः ।
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥४२॥

अपने २ काम करनेवाले लोग दूर रहने पर भी सबके प्रिय होते हैं ॥४२॥

नोत्पादयेत् स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ॥
न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथञ्चन ॥ ४३ ॥

राजा या उसका नोकर कोई स्वयं होकर किसी झगड़ेको न उभारे, और न किसीने न्यायालयमें मुकद्दमा पहुँचाने पर उस मुकद्दमेको लाँच आदि लेकर दबावे ॥ ४३ ॥

यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् ॥
नयेत्तथाऽनुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥

सिकारिया जैसे लोहूके दागोंको देखकर अन्दाजसे सिकारको ढूढ निकालता है, इसी प्रकारसे राजा एक २ बातके तुकसे सब हालका अन्दाजसे पता लगावे ॥ ४४ ॥

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः ॥
देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ॥ ४५ ॥

सच्चना, झगड़ेका विषय, साक्षी, देश, रूप, काल, और अपनी भी ओर ध्यान देकर मुकद्दमेको विचारे ॥४५॥

सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः ॥
तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥

धार्मिक सज्जन द्विजोंने बनाये हुये देश काल जातिके अनुकूल नियमों (कानूनों) के अनुसार निर्णय करना चाहिये ॥ ४६ ॥

अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ॥

दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥ ४७ ॥

दावा करके न्यायालयमें कर्जदार महाजन यदि ऋण साबित कर दे तो, महाजनको उतना धन देनदारसे दिलवा देना चाहिये ॥४७॥

यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः ॥
तैस्तैरुपायैः संगृह्यदापयेदधमर्णिकम् ॥ ४८ ॥

महाजन जिन रीतियोंसे देनदारसे अपना द्रव्य वसूल कर सकता हो, उन उपायोंसे महाजनको देनदारसे द्रव्य वसूल करने देना चाहिये ॥४८॥

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ॥
प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥ ४९ ॥

देनदारसे महाजन ऋणकी वसूली स्वयं या उसके मित्रों द्वारा समझा बुझाकर करे, वैसी न हो, तो; दावा कर किसी बहानेसे उसको छकाकर, उसके घर धरना देकर, या जबरदस्ती मार पीट कर, करे ॥ ४९ ॥

यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात् ॥
न स राज्ञाऽभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन् धनम् ॥५०॥

महाजन जबरदस्ती अपना रुपया वसूल करनेके लिये देनदार पर जबरदस्ती करे, तो, राजा उस महाजन पर बलात्कारका अभियोग न लगावे ॥ ५० ॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् ॥
दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः ॥ ५१ ॥

ऋण लेना कबूल न करने पर यदि महाजन प्रमाणोंसे साबित कर दे, तो, देनदारसे महाजनको ऋण दिला दे, और उसको शक्तिके अनुसार थोड़ासा दण्ड भी करे ॥ ५१ ॥

अपन्हवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि ॥
अभियोक्ता दिशेद् देश्यं करणं वाऽन्यदुद्दिशेत ॥५२॥

न्यायालयमें महाजनका रुपया अदाय करनेके लिये न्यायाधीशके कहने पर देनदार मैंने इससे नहीं लिया ऐसा यदि नट जाय तो, महाजन पास

के साक्षी, और लिखा पढ़ीकी सबूत अदालतमें दाखिल करे ॥ २ ॥

अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापन्हुते च यः ॥
यश्चाधरोत्तरानर्थान् विगीतान्नावबुध्यते ॥ ५३ ॥

अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति ॥
सम्यक्प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥५४॥

असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ॥
निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ॥५५॥

ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत् ॥
न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात् स हीयते ॥ ५६ ॥

जो महाजन कर्जलेनेके समय जिस जगह देनदारकी रहनेकी संभावना न हो, उस जगहको कहे, कोई झूठी सबूत कह कर उसको नटे, प्रथम कहे हुये द्रव्यसे अधिक या कम कहे, हमसे लिया कह कर मेरे पुत्रसे लिया इत्यादि गड़बड़िया बात कहे, न्यायाधीशने पूछने पर न कहे, जहाँ साक्षियोंकी संभावना न हो वहाँ साक्षियोंको देना चाहे, न्यायाधीशके पूछने पर न कहना चाहे, दावा दायर कर भाग जाय, कहनेके लिये न्यायाधीशके कहने पर न कहे, कहे हुयेको प्रमाणित न कर सके, या साध्य साधनका क्रम न जाने, वह महाजन उस मुकद-मेमें हरता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः ॥
धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥ ५७ ॥

जो साक्षी हैं कह कर मांगने पर नहीं देता, उसे भी न्यायाधीशको हरा देना चाहिये ॥ ५७ ॥

अभियोक्ता न चेद् ब्रूयाद्बध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः ॥
न चेत्त्रिपक्षात् प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजितः ॥ ५८ ॥

जो दावेदार दावा करनेबाद बयानके समय इजहार नहीं देता उसे कैद या दण्ड करना चाहिये, और जो प्रतिवादी ४५ दिनके भीतर जबाब न दे, उसे न्यायसे हरा

देना चाहिये ॥ ५८ ॥

यो यावन्निन्हुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् ॥
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ॥ ५९ ॥

जो जितने अंशके लिये झूठ बोले, उसे राजा उतने अंशसे द्विगुण (दो गुना) दण्ड करे ॥ ५९ ॥

पृष्टोऽपव्ययमानस्त कृतावस्थो धनैषिणा ॥
त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥

महाजन दावा करनेसे देनदारके नटने पर राजा या जजके सामने ऋणको कमसे कम तीन साक्षियों (गवाहों) से प्रमाणित कर दे ॥ ६० ॥

यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः ॥
तादृशान् संप्रवक्ष्यामि यथावाच्यमृतं च तैः ॥ ६१ ॥

महाजनोंको मुकदमोंमें कैसे साक्षी देना चाहिये और उन साक्षियोंको कैसा सत्य भाषण करना चाहिये उसे बतलाते हैं ॥ ६१ ॥

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः ॥
अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥

जिन्हें स्त्री पुत्र आदि हों, वहाँके [illegible] और कोई कष्ट उपस्थित न हो, ऐसे क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र वादी या प्रतिवादीने नाम लिखाने पर साक्ष्य (गवाही) दे सकते हैं ॥ ६२ ॥

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ॥
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्त वर्जयेत् ॥ ६३ ॥

साक्षी वही होने चाहिये, जो किसी वर्णके हों, पर सत्यवादी सब बातको जाननेवाले और निर्लोभी हों, साक्षी असत्यवादी अनजान और लोभी न होने चाहिये ॥ ६३ ॥

नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः ॥
न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः ॥६४॥

जिनका उस ऋणसे कुछ सम्बन्ध पहुंचता हो, जो वादि प्रतिवादियोंके सम्बन्धी, मित्र, या शत्रु हों, जिन्हें कभी सजा हुई हो, जो बीमार हों, वे गवाह नहीं हो सकते हैं ॥ ६४ ॥

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुकुशीलवौ ॥
न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न सङ्गेभ्यो विनिर्गतः ॥६५॥
नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् ॥
न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥६६॥
नार्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ॥
न श्रमार्तो न कामार्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः ॥६७॥

राजा, कारीगर, नट आदि, श्रोत्रिय ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, सर्वसङ्ग परित्यागी (विरक्त), परतन्त्र, अजाति, कसाई, निषिद्धाचरण करनेवाला, बुड्ढा, बालक, अकेला (जिसे कोई न हो), चाण्डाल, जिसका कोई इन्द्रिय नष्ट हो अर्थात् अन्धा, वहिरा गूँगा लंगड़ा लूला आदि, रोगी, नशेबाज, पागल, भूखन मरने वाला (दरिद्री), थका हुआ, विषयी, क्रुद्ध, और चोर, इन्हें कभी गवाह न करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ॥
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणां अन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥ ६८ ॥

स्त्रियोंको स्त्रियाँ ब्राह्मणोंके ब्राह्मण, क्षत्रियोंके क्षत्रिय, वैश्योंके वैश्य, शूद्रोंके शूद्र, नीचोंके नीच अर्थात् अपने २ जातिके गवाह होने चाहिये ॥ ६८ ॥

अनुभावी तु यः कश्चित् कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ॥
अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये ॥ ६९ ॥
स्त्रियाऽप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा ॥
शिष्येण बन्धुना वाऽपि दासेन भृतकेन वा ॥ ७० ॥

घरके भीतरके या अरण्यमेंके और किसीके मरने पर उसके मामलेमें स्त्री, बालक, बूढ़ा, शिष्य, भाई, बन्धु, दास या नोकर, जो कोई वहाँ उस समय हो वह गवाही दे सकता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येष वदतां मृषा ॥
जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा ॥ ७१ ॥

असत्य भाषण करनेका स्वभाव रहनेके कारण बालक, वृद्ध, रोगी, और पागलोंकी गवाही पर एका एक विश्वास न रखते उसकी खोज करनी चाहिये ॥ ७१ ॥

साहसेष च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च ॥
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ७२ ॥

सब साहसके काम, चोरी, स्त्री बलात्कार, गाली गोरा, और मारपीटके मामलोंमें गवाहोंके अच्छे बुरे चाल चलन की ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं होती ॥७२॥

बहुत्वं परिगृहणीयात् साक्षिद्वैधे नराधिपः ॥
समेष तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे नराधिपः ॥ ७३ ॥

जिस मामलेमें अभियोक्ता और अभियुक्त, दोनोंके गवाह हों, उसका फैसला जिसके अधिक गवाह रहें उसके अनुकूल राजा या न्यायाधीशको करना चाहिये, दोनोंके गवाह सम होनेसे जिसके गवाह इज्जतदार हों, उनके अनुसार, और दोनोंके इज्जतदार होनेसे उच्च जाति या वर्णके जो हों उनके गवाहीके अनुसार फैसला करना चाहिये ॥ ७३ ॥

समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति ॥
तत्र सत्यं ब्रवन् साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ ७४ ॥

खास उस बातको आँखोंसे देखनेसे या कानोंसे सुननेसे ही गवाही हो सकती है, उसमें सच २ कहनेसे गवाह धर्म और अर्थ से च्युत नहीं होता॥७४॥

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ॥
अवाङ् नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥ ७५ ॥

न्यायालयमें देखे या सुनेसे अन्य झूठ कहनेवाले गवाहको उलटे मुँह नरकमें रहना पड़ता है, और वह स्वर्ग सुखसे च्युत होजाता है ॥ ७५ ॥

यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वाऽपि किञ्चन ॥

पृष्टस्तत्रापि तद् ब्रूयाद् यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥

वादी या प्रतिवादीने नाम न लिखाने पर भी जिसने घटनाको देखा या सुना हो, वह उसीके अनुसार न्यायाधीशके पूछने पर गवाहीमें कह सकता है ॥ ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद् वह्न्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः॥
स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः ॥ ७७ ॥

निर्लोभी एक भी पुरुष साक्षी हो सकता है, पर स्त्रियाँ पतिव्रता और अनेक होने पर भी गवाह नहीं हो सकतीं, क्योंकि स्त्रियोंकी बुद्धिका कोई भरोसा नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार और भी जो अस्थिर बुद्धिके हों, वे भी गवाह नहीं हो सकते ॥ ७७ ॥

स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ॥
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७८ ॥

गवाह लोग जो बात अपने आप बिना किसी दबावके कहते हैं, उसे न्यायके योग्य समझना चाहिये, और जो दबावके कारण झूठ कहें, उसे न्यायके योग्य न समझना चाहिये ॥ ७८ ॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ॥
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना तेन सान्त्वयन् ॥७९॥

न्यायालयमें सामने आनेके बाद साक्षियोंको अभियोक्ता और अभियुक्त दोनोंके सामने न्यायाधीश वक्ष्यमाण रीतिसे धीरे २ समझा कर पूछे ॥ ७९ ॥

यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिश्चेष्टितं मिथः ॥
तद् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥ ८० ॥

अभियोक्ता और अभियुक्त इनकी परस्पर जो घटना हुई, उसे यदि आपलोग जानते हों, तो सच २ सब कहियेगा, उसमें आपकी गवाही है ॥ ८० ॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन् साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ॥
इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥ ८१ ॥

गवाहीमें सत्य कहनेसे उसकी इस जगत्में महती कीर्ति होकर

परलोकमें सद्गति होती है, क्योंकि, सत्य २ वाणीकी ब्रह्मदेव भी प्रशंसा करते हैं ॥ ८१ ॥

साक्ष्येऽनृतं वदन् पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ॥
विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥ ८२ ॥

झूठी गवाही देनेसे उसे वरुणके पाशमें अर्थात् सर्पपाशमें बद्ध होकर सैकड़ों वर्ष तक कष्ट भोगना पड़ता है, इसलिये सच्ची गवाही दे ॥ ८२ ॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ॥
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥

सच्ची गवाही देनेसे उसे पुण्य होता है इसलिये सब वर्ण और जातिके गवाहोंको सत्यही गवाही देनी चाहिये ॥ ८३ ॥

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथाऽऽत्मनः ॥
माऽवमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

अपना साक्षी आत्मा है, और अपनी गति भी आत्मा ही है, इसलिये सर्वोत्तम साक्षी अपनी आत्माको मनुष्य कभी असत्य बोल कर अपमानित न करे ॥ ८४ ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ॥
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥

पापी लोग समझते हैं कि हमे कोई देखता नहीं है, पर उसे देवता लोग तो अच्छी रीतिसे देखते ही हैं, और उसकी अन्तर्यामी आत्मा भी देखते रहती है ॥ ८५ ॥

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ॥
रात्रिः सन्ध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ८६ ॥

आकाश, पृथिवी, जल, हृदय, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यम वायु, रात, सन्ध्या और धर्म, ये सबके कर्मको देखते रहते हैं ॥ ८६ ॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ॥

पृष्टस्तत्रापि तद् ब्रूयाद् यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥

वादी या प्रतिवादीने नाम न लिखाने पर भी जिसने घटनाको देखा या सुना हो, वह उसीके अनुसार न्यायाधीशके पूछने पर गवाहीमें कह सकता है ॥ ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद् बह्व्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः॥
स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः ॥ ७७ ॥

निर्लोभी एक भी पुरुष साक्षी हो सकता है, पर स्त्रियाँ पतिव्रता और अनेक होने पर भी गवाह नहीं हो सकतीं, क्योंकि स्त्रियोंकी बुद्धिका कोई भरोसा नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार और भी जो अस्थिर बुद्धिके हों, वे भी गवाह नहीं हो सकते ॥ ७७ ॥

स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ॥
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७८ ॥

गवाह लोग जो बात अपने आप बिना किसी दबावके कहते हैं, उसे न्यायके योग्य समझना चाहिये, और जो दबावके कारण झूठ कहें, उसे न्यायके योग्य न समझना चाहिये ॥ ७८ ॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ॥
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना तेन सान्त्वयन् ॥७९॥

न्यायालयमें सामने आनेके बाद साक्षियोंको अभियोक्ता और अभियुक्त दोनोंके सामने न्यायाधीश वक्ष्यमाण रीतिसे धीरे २ समझा कर पूछे ॥ ७९ ॥

यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिंश्चेष्टितं मिथः ॥
तद् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥ ८० ॥

अभियोक्ता और अभियुक्त इनकी परस्पर जो घटना हुई, उसे यदि आपलोग जानते हों, तो सच २ सब कहियेगा, उसमें आपकी गवाही है ॥ ८० ॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन् साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ॥
इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥ ८१ ॥

गवाहीमें सत्य कहनेसे उसकी इस जगत्में महती कीर्ति होकर

परलोकमें सद्गति होती है, क्योंकि, सत्य २ वाणीकी ब्रह्मदेव भी प्रशंसा करते हैं ॥ ८१ ॥

साक्ष्योऽनृतं वदन् पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ॥
विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥ ८२ ॥

झूठी गवाही देनेसे उसे वरुणके पाशमें अर्थात् सर्पपाशमें बद्ध होकर सैकड़ों वर्ष तक कष्ट भोगना पड़ता है, इसलिये सच्ची गवाही दे ॥ ८२ ॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ॥
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥

सच्ची गवाही देनेसे उसे पुण्य होता है इसलिये सब वर्ण और जातिके गवाहोंको सत्यही गवाही देनी चाहिये ॥ ८३ ॥

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथाऽऽत्मनः ॥
माऽवमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८४॥

अपना साक्षी आत्मा है, और अपनी गति भी आत्मा ही है, इसलिये सर्वोत्तम साक्षी अपनी आत्माको मनुष्य कभी असत्य बोल कर अपमानित न करे ॥ ८४ ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ॥
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥

पापी लोग समझते हैं कि हमे कोई देखता नहीं है, पर उसे देवता लोग तो अच्छी रीतिसे देखते ही हैं, और उसकी अन्तर्यामी आत्मा भी देखते रहती है ॥ ८५ ॥

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ॥
रात्रिः सन्ध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ८६ ॥

आकाश, पृथिवी, जल, हृदय, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यम वायु, रात, सन्ध्या और धर्म, ये सबके कर्मको देखते रहते हैं ॥ ८६ ॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ॥

उदङ्मुखान् प्राङ्मुखान् वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ॥ ८७ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि सब गवाहोंको देवता और ब्राह्मणोंकी कसम (शपथ) देकर उन्हें पूरब या उत्तर मुख पवित्रताके साथ खड़े कर जज भी स्वयं पवित्र होकर मध्यान्हके पूर्वमें उनकी गवाही ले ॥ ८७ ॥

ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ॥
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ ८८ ॥
ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः ॥
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ॥ ८९ ॥
जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम् ॥
तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद् यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥ ९० ॥
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे ॥
नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥ ९१ ॥
यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ॥
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः ॥ ९२ ॥

ब्राह्मण गवाहको ' कहिये ' ऐसा कह कर, क्षत्रियको ' सत्य कहिये ' ऐसा कहकर वैश्यको गौ, बी और सोनेकी शपथ देकर, और शूद्रको ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, बालहत्या, और मित्रसे द्रोह करनेवालेको और कृतघ्नको जिन २ नरकोंमें जाना पड़ता है वही नरकभोग असत्य गवाही देनेसे तुम्हें भोगना पड़ेगा, तुमने जन्मसे आज तक जो कुछ अच्छा काम करनेसे सुकृत किया है वह सब असत्य बोलनेसे कुत्तेको मिलेगा, यदि तुम यह समझते हो कि ' मैं अकेला हूँ, कोई मुझे नहीं देखता ', पर तेरे पाप पुण्यको देखनेवाला अन्तर्यामी तेरे हृदय हीमें चुपचाप बैठा है, और परमात्मा, यमराज, और देव जो तेरे हृदयमें बसता है, उसके सत्य भाषण करनेसे दोषी यदि न होगे तो पापको दूर करनेके लिये गङ्गा या कुरुक्षेत्रमें तुम्हें जाना नहीं होगा, इत्यादि सब पातकों की शपथ देकर पूछना चाहिये ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ॥
अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद् यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ ९३ ॥

जो असत्य गवाही देता है उसे अन्धा होकर भूखन मरनेसे ।नंगे, सिर मुड़ा कर, हाथमें खप्पड़ लिये हुये शत्रुके घर भीख माँगनी पड़ती है ॥ ९३ ॥

अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् ॥
यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात् पृष्टः सन् धर्मनिश्चये॥ ९४ ॥

न्यायके लिये न्यायाधीशके पूछने पर जो गवाह असत्य बोलता है, उसे स पापका फल अन्धियाले नरकमें उलटे टँङ्ग कर भोगना पड़ता है ॥ ९४ ॥

अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नरः कण्टकैः सह ॥
यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ॥ ९५ ॥

जो न्यायालयमें गवाहीके लिये जाकर न देखी हुई झूठ बात कहता है, उसे काँटेदार मछलियोंको खानेवाले अन्धेके समान दुःखही भोगना पड़ता है ॥ ९५ ॥

यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते ॥
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥ ९६ ॥

गवाही देते समय जिसकी आत्मा असत्य न होनेके कारण नहीं धड़कती, देवता लोग उससे बढ़ कर श्रेष्ठ पुरुष दूसरेको नहीं मानते ॥ ९६ ॥

यावतो बान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ॥
तावतः संख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥ ९७ ॥

जिस मामलेमें असत्य गवाही देनेसे जितने भाई बन्धुओंको नरकमें डालता है उसकी संख्या क्रमसे कहते हैं, सुनिये ! ॥ ९० ॥

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ॥
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ९८ ॥
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥ ९९ ॥

अप्सु भूमवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने ॥
अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥ १०० ॥

पशुओंके मामलेमें पांच, गौके मामलेमें दस, घोड़ेके मामलेमें सौ, मनुष्यके मामलेमें हजार, सुवर्णके मामलेमें कुलमें उत्पन्न भये या होनेवाले सब, और भूमि, जल, स्त्रियाँ, उनसे संभोग, मोती आदि जलमें उत्पन्न होनेवाले रत्न, और हीरा आदि, इनके मामलेमें सब भाई बन्धुओंका असत्य गवाही देनेसे नाश होता है अर्थात् उतनोंकी हत्याका पाप इसे लगता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

एतान् दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ॥
यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद ॥ १०१ ॥

इन सब पापोंका विचार कर सुनी व देखी हुई सब घटना सत्य सत्य कहो ॥ १०१ ॥

गोरक्षकान् वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् ॥
प्रैष्यान् वार्धुषिकांश्चैव विप्राञ्शूद्रवदाचरेत् ॥ १०२ ॥

दूध दही बेचनेवाले, बनियई वृत्ति करनेवाले, पाक, सोनारी, लोहारी आदि करनेवाले, नौकरी करनेवाले और देन लेन करनेवाले ब्राह्मणोंको भी शूद्र तुल्य समझे, अर्थात् उनसे शूद्र तुल्य ही बर्ताव करे ॥ १०२ ॥

तद्वदन् धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ॥
न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद् दैवीं वाचं वदन्ति ताम् ॥१०३

घटनाको सचमुच जानते भी कोई मनुष्य धर्मकार्यके लिये असत्य भी बोले, तो, वह स्वर्गसुखसे हीन नहीं होता, क्योंकि, धर्मकार्यके लिये असत्यभाषण देववाणी समझी जाती है ॥ १०३ ॥

शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तौ भवेद्वधः ॥
तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥ १०४ ॥

जिन मामलोंमें सत्य गवाही देनेसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र, किसी के प्राण हानिकी संभावना हो, उन मामलोंमें असत्य भाषण करना चाहिये, क्योंकि ऐसे २ मामलोंमें सत्यसे असत्य ही श्रेयस्कर होता है ॥ १०४ ॥

वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् ॥
अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥ १०५ ॥
कूष्माण्डैर्वाऽपि जुहुयाद् घृतमग्नौ यथाविधि ॥
उदित्यृचा वा वारुण्या त्र्यृचेनाब्दैवतेन वा ॥ १०६ ॥

भारी २ ऐसे मामलोंमें असत्यभाषणके दोषनिवारणार्थ सरस्वती देवताके उद्देश्यसे चरुद्रव्यसे सारस्वत नामक होम करे, या 'यद्देवा देव हेडनम्' इत्यादि कूष्माण्डसंज्ञक मन्त्र, वरुणदेवताके 'उदितमं वरुणपाशम्' इत्यादि मन्त्र अथवा 'आपो हिष्ठा' इत्यादि जल देवताकी तीन ऋचाओंसे अग्निमें घृतका होम करे ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

त्रिपक्षादब्रुवन् साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ॥
तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः ॥ १०७ ॥

बिना किसी रोग आदि कारणके ४५ दिन तक यदि गवाह गवाही देने न आवे तो राजा या न्यायाधीश महाजनको सब धन दिला दे और जितना ऋण हो, उसका दसवाँ हिस्सा दण्ड भी ले ॥ १०७ ॥

यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः ॥
रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः ॥ १०८ ॥

गवाही देनेके बाद जिस गवाहको १ सप्ताहमें कोई रोग हो, आगसे दाह हो, या कोई भाई बन्धु मर जाय, तो उससे महाजनको झगड़ेका धन दिलवा दे और दण्ड भी ले ॥ १०८ ॥

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः ॥
अविन्दन् तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत् ॥ १०९ ॥

जिन मामलोंमें गवाहके न रहनेसे सत्यघटनाका पता न लगे, उन मामलोंमें कसम खिला कर पता लगाना चाहिये ॥ १०९ ॥

महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः ॥
वसिष्ठश्चापि शपथं शेपे वै यवने नृपे ॥ ११० ॥

कार्य सिद्धिके लिये बड़े २ ऋषि और देवताओंने भी कसमें खाई हैं, वसिष्ठने भी यवन राजाके पुत्र सुदामाके सामने अपनेको निर्दोषी ठहरानेके लिये कसम खाई थी ॥ ११० ॥

न वृथा शपथं कुर्यात् स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ॥
वृथा हि शपथं कुर्वन् प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ १११ ॥

बुद्धिमान् मनुष्यको थोड़े २ कार्यके लिये झूठी कसम न खानी चाहिये, झूठी कसम खानेसे इहलोक व परलोक दोनों जगह उसकी हानि होती है ॥ १११ ॥

कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने ॥
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥ ११२ ॥

अपनी स्त्रियोंके पास अन्य स्त्रीके विषय, किसीके विवाहके लिये, गौके तृण आदिके लिये, जलानेको इन्धन (काष्ठ आदि) लेने के लिये, और किसी ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त असत्य भी कसम खानेसे दोष नहीं लगता है ॥ ११२ ॥

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ॥
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ ११३ ॥

यदि किसीसे कसम खिलानी हो, तो, ब्राह्मणसे सत्यकी, क्षत्रियसे घोड़ा आदि सवारी और शस्त्रोंकी, वैश्योंसे गौ, बी, या सुवर्णकी, और शूद्रसे सब पातकोंकी कसम खिलानी चाहिये ॥ ११३ ॥

अग्निं वाऽऽहारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत् ॥
पुत्रदारस्य चाऽप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत् पृथक् ॥ ११४ ॥

शूद्रको हाथमें सात२ पीपल के पत्तोंको लिये हुए आठ अङ्गुल लम्बे आधा सेर वजनके लाल तपाये हुये छड़को लेकर सात कदम चलावे, पानीमें कुछ देर तक गोता मार कर बैठावे, या उसके लड़के और स्त्रीके माथे पर हाथ रखावे ॥ ११४ ॥

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ।
न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥ ११५ ॥

तप्तलाल लोहदण्डको हाथमें लेने पर जिसे वह न जरावे, डूबने पर भी जिसे जल ऊपर न फेंके, या स्त्री पुत्रोंके माथे पर हाथ रखने पर भी कोई कष्ट उन्हें न हो, तो, उसे निर्दोष समझना चाहिये ॥ ११५ ॥

वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य परा भ्रात्रा यवीयसा।
नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पशः ॥ ११६ ॥

पहिले किसी समय वत्सनामक ऋषिको उनके छोटे भ्राताके अभियोग लगाने पर उस ऋषिके अग्निप्रवेश करने पर भी सत्यताके कारण एक बाल भी न जल सका ॥ ११६ ॥

यस्मिन् यस्मिन् विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत्॥
तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ॥ ११७ ॥

जिस २ मामलेमें झूठी गवाही हुई हो, उस मामलेको फिर करना चाहिये और पहिले किये हुये निर्णयको रद्द करना चाहिये ॥ ११७ ॥

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च ॥
अज्ञानाद् बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥ ११८ ॥

लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम (विषयाभिलाषा), क्रोध, मूर्खता, और लड़कपनसे दी हुई गवाही झूठ समझी जाती है ॥ ११८ ॥

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्॥
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ ११९ ॥

जो लोभ आदि निमित्तसे झूठी गवाही दे, उसे उस २ निमित्तके अनुसार क्रमसे पृथक् २ दण्ड कहते हैं ॥ ११९ ॥

लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् ॥
भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ १२० ॥
कामाद् दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ॥
अज्ञानाद् द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ॥ १२१ ॥

लोभसे हजार, मोहसे ढाई सौ, भयसे हजार, मित्रतासे १००० हजार,

विषयाभिलापासे २५००, क्रोधसे, ७५०, मूर्खतासे दो सौ, और लड़काईसे सौ इस प्रकार असत्य गवाही देनेवालेको दण्ड करना चाहिये ॥ १२० ॥ १२१ ॥

एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान् दण्डान् मनीषिभिः ॥
धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥ १२२ ॥

विद्वानोंने धर्मकी हानि न होने और अधर्मको दूर करनेके लिये बनावटी गवाहीमें तो इस दण्ड (सजा) को कहा है ॥ १२२ ॥

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन् वर्णान् धार्मिको नृपः ॥
प्रवासयेद् दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ १२३ ॥

धर्मात्मा राजा बनावटी गवाही देनेवाले क्षत्रिय वैश्य और शूद्र तीन वर्णोंके मनुष्यको पहिले कहेके अनुसार दण्ड (जुर्माना) कर अपने राज्यसे निकाल बाहर कर दे, और ब्राह्मणको दण्ड न कर केवल हद्द पार ही करे ॥ १२३ ॥

दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥
त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ १२४ ॥

स्वायम्भुव मनुने क्षत्रिय वैश्य और शूद्रको दण्ड (सजा) करनेके लिये दस स्थान बतलाये हैं, और ब्राह्मणको विना किसी प्रकारकी सजाके केवल हद्द पार करने कहा है ॥ १२४ ॥

उपस्थमुदरं जिव्हा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ॥
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥ १२५ ॥

जिस मनुष्यका जैसा अपराध हो, उसके अनुसार उसे उसके इन्द्रिय, पेट दाँत, हाथ, पैर, आँख, नाक, कान, धन, और देह, इसमेंसे किसी विषयको सजा देनी चाहिये ॥ १२५ ॥

अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः ॥
सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ॥ १२६ ॥

[illegible], [illegible], देश, समय, और पहिला ही अपराध है या दुबारा [illegible], इत्यादिका विचार कर उसके अनुसार अपराधियोंको दण्ड करे [illegible] ॥ १२६ ॥

अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम् ॥
अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ १२७ ॥

अन्याय पूर्वक दण्ड करनेसे उस राजा या न्यायाधीशकी अपकीर्ति होती है, और उसके परलोकका स्वर्गसुख नष्ट होता है, अतः अन्यायसे कभी दण्ड न करे ॥ १२७ ॥

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ॥
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ १२८ ॥

अनपराधियोंको दण्ड करनेसे और अपराधियोंको छोड़ देनेसे उस राजा या न्यायाधीशकी बड़ी भारी बदनामी होती है और वह मरने पर नरकमें जाता है ॥१२८॥

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद् धिग्दण्डं तदनन्तरम् ॥
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम् ॥ १२९ ॥

किसीसे पहिले पहिल अपराध हुआ हो, तो, उसे केवल गाली आदि देकर छोड़ दे, उससे न मान कर दुबारा अपराध करनेसे उसे धिक्कार दे, उससे भी न मान तिबारे अपराधमें जुर्माना करे, और चौथी बारसे फिर सजा करने लगे ॥ १२९ ॥

वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात् ॥
तदैषु सर्वमप्येतत् प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥ १३० ॥

केवल सजासे भी अपराधी ठिकाने पर न आसकें, तो, उन्हें एक दम चारो प्रकारका दण्ड करे ॥ १३० ॥

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ॥
ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १३१ ॥

लोगोंकी लेन देन आदि काम अच्छी रीतिसे चलनेके लिये बने हुए ताँम्बे चाँदी और सोनेके सिक्कोंके जो नाम लोकमें चलते हैं, उन्हें अब कहता हूँ ॥१३१॥

जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥

प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥

मोखामेंसे आये हुए सूर्यकिरणोंमें जो एक अत्यन्त सूक्ष्म रज दिखलाई देता है उसे सबसे छोटा प्रमाण त्रसरेणु कहते हैं ॥ १३२ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ॥
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ १३३ ॥
सर्षपाः षट् यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् ॥
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ १३४ ॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ॥
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥ १३५ ॥
ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः ॥
कार्षापणं तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ १३६ ॥

उन आठ त्रसरेणुकी १ लिक्षा, तीन लिक्षाओंका १ राजसर्षप, ३ राजसर्षपों का १ श्वेतसर्षप, ६ श्वेतसर्षपोंका १ मझोला जव, तीन जवका १ कृष्णल, ५ कृष्णलोंका १ मासा, १६ मासोंका १ तोला १६ तोलेका १ पल, और १० पल, का १ धरण होता है। दो कृष्णलोंका १ चाँदीका मासा, १६ चान्दीके मासोंका १ धरण या पुराण होता है और पलके चौथाई भागका १ ताम्बेका पैसा होता है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ॥
चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ १३७ ॥

१० धरण या पुराणोंका १ राजतशत होता है, और चार तोलेका एक निष्क होता है ॥ १३७ ॥

पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ॥
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ॥ १३८ ॥

२५० ढाई सौ पणोंका प्रथम साहस ५०० पणोंका मध्यम साहस और एक हजार (१०००) पणोंसे उत्तम साहस जानना चाहिये ॥ १३८ ॥

ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति ॥
अपन्हवे तद्द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् ॥ १३९ ॥

न्यायालयमें देनदारको कर्ज स्वीकार करने पर सैकड़े पांचके हिसाबसे और कबूल न कर महाजनके साबित करने पर सैकड़े १० के हिसाबसे दण्ड करनेकी मनुकी आज्ञा है ॥ १३९ ॥

वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्धिनीम् ॥
अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते ॥ १४० ॥
द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ॥
द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्बिषी ॥ १४१ ॥

लेन देनके रोजगारमें वसिष्ठने कहे अनुसार व्याज लेना चाहिये, १ रुपये तीन आने सैकड़े, या सदाचारकी ओर ध्यान देकर अधिकसे अधिक दो रुपये सैकड़े मासिक व्याज महाजन ले, सैकड़े दो रुपये तक माहवारी व्याज लेनेसे वह दोषी नहीं होता ॥ १४० ॥ १४१ ॥

द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं समम् ॥
मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १४२ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रसे दो, तीन, चार, पाँच रुपये सैकड़े मासिक सूद लेना चाहिये ॥ १४२ ॥

नत्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ॥
न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः ॥ १४३ ॥

किसी वस्तुको भोगवन्धक रखकर कर्ज देनेसे महाजन उसका व्याज नहीं पा सकता है, और अवधिके पूर्वमें उसे किसीको न दे सकता है या वेच सकता है ॥ १४३ ॥

न भोक्तव्यो वलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत् ॥
मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत् ॥ १४४ ॥

महाजन दृष्टबन्ध वस्तुका उपभोग न करे, यदि उपभोग करे तो देनदार

(असामी) को ब्याज छोड़ दे , और उपभोग करनेके निमित्त कुछ द्रव्य देकर उसे संतुष्ट करे, नहीं तो वह महाजन चोर कहलाता है ॥ १४४ ॥

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ॥
अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥ १४५ ॥

बन्धक या प्रेमसे पहिननेको दिये हुए आभूषण आदि अवधि बीतनेसे ले लिये नहीं जा सकते, किन्तु बहुत दिन बीतने पर भी जिस समय उसके रखनेवाले मांगे, उसी समय उन्हें लौटाना चाहिये ॥ १४५ ॥

संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन ॥
धेनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ १४६ ॥

मालिकके सन्तोपसे गौ, ऊँट, घोड़ा, बैल या अन्य कोई भी वस्तुका बहुत दिन तक उपभोग करने पर भी उसकी प्रभुता (मालिकी) मालिककी नष्ट नहीं होती ॥ १४६ ॥

यत्किञ्चिद्दशवर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ॥
भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ॥ १४७ ॥
अजड़श्चेदपौगण्डो विषये चास्य भुज्यते ॥
भग्नं तद् व्यवहारेण भोक्ता तद् द्रव्यमर्हति ॥१४८॥

मालिकके देखते दूसरा उसकी वस्तुका दस वर्ष तक यदि बराबर भोग करता रहे तो उस वस्तुको पुन. मालिक नहीं पा सकता किन्तु वह वस्तु भोग से भोगनेवालेकी हो हो जाती है, यदि उसका स्वामी नाबालिक या पागल न हो, तो। मालिकके नाबालिक या पागल होनेसे भोगनेवालेकी प्रभुता (मालिकी) उस वस्तु पर कभी नहीं हो सकती ॥ १४७ ॥ ॥ १४८ ॥

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ॥
राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति ॥ १४९ ॥

बन्धक, सीमा (सिवान), नाबालिकका धन, अनामत रक्खा हुआ धन, दासी आदि स्त्रियाँ, राजधन, और विद्वान् ब्राह्मणका धन, ये भोगसे दूसरेके

नहीं हो सकते ॥ १४६ ॥

यः स्वामिनाऽननुज्ञातमाधिं भुङ्क्तेऽविचक्षणः ॥
तेनार्द्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ॥ १५० ॥

बिना मालिकको सम्मतिके जो मूर्ख महाजन बन्धकका भोग करता है, उसको भोगके निमित्त दण्डमें आधा ब्याज छोड़ना चाहिये ॥ १५० ॥

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहृता ॥
धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम् ॥१५१॥

जिसका ब्याज एक वार लिया जाय, उसका ब्याज दो गुनेसे अधिक नहीं बढ़ता, और अन्न, पेड़, ऊन रेशम आदि, और बैल परका ब्याज (सूद) पाँच गुनेसे अधिक नहीं बढ़ता ॥१५१॥

कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिध्यति ॥
कुसीदपथमाहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति ॥ १५२ ॥

पूर्वमें कहे हुए ब्याजसे अधिक ब्याजका करार कर कर्ज देने पर भी महाजन उसे नहीं पा सकता, पाँच रुपये सैकड़े ब्राह्मण आदि द्विजोंसे ब्याज लेनेको कुसीदपथ अर्थात् दुष्ट चाल (रिवाज) कहते हैं ॥ १५२ ॥

नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत् ॥
चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या ॥१५३॥

महीने २ न देनेसे सूदका सूद जोड़ कर एक वर्ष तक ब्याज लेने पर उसके बाद न ले, और दो तीन चार और पाँच रुपये सैकड़े माहवारी सूदसे अधिक सूद भी, जैसे सूदके सूदका सूद, अवधि तीन चार पाँच छ आदि मास बीतने पर अमुक अधिक लिया जायगा ऐसे करार किये हुये, लेनदारने गरजवश करार किये, और मजदूरी आदि काम, देनदारसे महाजन न ले ॥ १५३ ॥

ऋणं दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत् पुनः क्रियाम् ॥
स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥ १५४ ॥

जो ऋणी महाजनको ऋण नहीं चुका सकनेसे तमस्सुक आदि बदलनेकी

इच्छा करता है, वह महाजनको पहिला सूद सब चुका कर दूसरा कागज बदल दे ॥१५४॥

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ॥
यावती संभवेद् वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ॥ १५५ ॥

यदि कागद बदलते समय पहिला सूद भी चुकता न कर सके, तो उसे भी मुद्दलमें मिला कर उतनेका दस्तावेज महाजनके नाम लिख दे, और इस प्रकार सूदका सूद या उसका भी सूद होनेसे देनदारको चुकाना पड़ेगा ॥ १५५ ॥

चक्रवृद्धिसमारूढो देशकालव्यवस्थितः ॥
अतिक्रामन् देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ १५६ ॥
समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ॥
स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति ॥ १५७ ॥

माथे पर या गाड़ी पर बोझा ढोनेवाला देश और कालकी प्रतिज्ञा कर उतने कालमें और उस देश तक पहुँचानेकी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका, तो, वह उतने भाडेको नहीं पा सकता, किन्तु जो रोजगारी देशकालको समझते हों और समुद्रमें जहाजकी सवारीसे खूब परिचित हों, वे जो तय कर देंगे वही भाड़ा वह पा सकता है ॥ १५६ ॥१५७॥

यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः ॥
अदर्शयन् स तं तस्य प्रयच्छेत् स्वधनादृणम् ॥१५८॥

किसी मनुष्यको उपस्थित करनेके लिये जो जामिन रहेगा वह उसे हाज़िर न कर सके, तो, उसकी जगह उसे उस कर्जको चुकाना होगा ॥ १५८ ॥

प्रातिभाव्यं वृथादानं माक्षिकं सौरिकं च यत् ॥
दण्डशुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति ॥ १५९ ॥

जमानतमें, हँसी ठट्ठोंमें कबूल किये हुये, जुआके या नशाके निमित्तका पिताका कर्ज पुत्रको नहीं चुकाना चाहिये ॥ १५९ ॥

दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात् पूर्वचोदितः ॥

दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ॥ १६० ॥

पहिले कहे हुए, अर्थात् जमानत के कर्ज को पुत्र न दे, यह यदि जमानत हाजिरी के लिये हो, तो, और यदि वह जमानत उसके न देने पर मैं दे दूंगा इस प्रकार प्रतिज्ञा देने के विषय की हो, तो, जमानतदार के वसी को देना पड़ेगा ॥ १६० ॥

अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम् ॥
पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत् केन हेतुना ॥ १६१ ॥

जमानतदार ने धन लेकर जमानत दी हो, तो, उसके मरने पर महाजन अपना रुपया किससे पा सकता है ? ॥ १६१ ॥

निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलं धनः ॥
स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ॥ १६२ ॥

जमानत देने को लिये हुये धन से जमानतदार का पुत्र महाजन का रुपया चुकती कर दे ॥ १६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ॥
असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्ध्यति ॥१६३॥

नशे में चूर, पागल, बीमार, बालक, वृद्ध, और जिसका धन से किसी प्रकार का सम्बन्ध न हो उसका किया हुआ लेन देन ठीक नहीं समझा जा सकता है ॥ १६३ ॥

सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता ॥
बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ॥१६४॥

लिखापढ़ी ठीक रहने पर भी यदि दरखास्त कानून और रूढ़ि के विरुद्ध हो तो उस मामले को राजा या न्यायाधीश न चलावे ॥ १६४ ॥

योगाधमनविक्रीतं योगदान प्रतिग्रहम् ॥
यत्र वाऽप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥ १६५ ॥

रेहन, वय, दान, प्रतिग्रह, या अमानत रखने में जहां चालबाजी ज्ञात हो,

या गैरकानूनी और अनुचित शर्तें हों, तो राजा या न्यायाधीश खारिज कर दे ॥ १६५ ॥

ग्रहीता यदि नष्टः स्यात् कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः ॥
दातव्यं बान्धवैस्तत् स्यात् प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥१६६॥

अपने कुटुम्बियों की रक्षाके लिये ऋण कर यदि उसका करनेवाला मर जाय, तो, उस ऋण को सब भाइयोंको चुकाना चाहिये चाहे वे अलग अलग रहते हों या इकट्ठा ॥ १६६ ॥

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् ॥
स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत् ॥१६७॥

घरपर या परदेश में मालिक के परिवार की रक्षा के निमित्त नौकर के किये हुए ऋण को मालिक चुकावे ॥ १६७ ॥

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद् यच्चापि लेखितम् ॥
सर्वान् बलकृतानर्थानकृतान् मनुरब्रवीत् ॥ १६८ ॥

जबर्दस्ती दिया हुआ धन, भोगी हुई भूमि, लिखाया हुआ करारनामा ये सब बल से किए हुए व्यवहार नहीं के समान जानना इन्हें मनुने लौटाने योग्य कहा है ॥ १६८ ॥

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ॥
चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः ॥१६९॥

गवाह, जमानतदार, और कुल को दूसरों के लिये कष्ट सहना पड़ता है, इसलिये गवाही जमानत और न्याय करने के लिये किसी से कोई आग्रह न करे, और ब्राह्मण, महाजन, वनिया और राजाका दान, सूद, नफा (लाभ), और न्याय करने से उन्नति होती है, इसलिये उन्हें भी उस २ काम के लिये आग्रह न करे ॥ १६९ ॥

अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः ॥
न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ॥ १७० ॥

राजा की दशा धनहीन होने पर भी उसे न लेने योग्य धन नहीं लेना

चाहिये उसी प्रकार धनी होने पर भी लेने योग्य थोड़े से धन को भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥ १७० ॥

अनादेयस्य चादानादुदेयस्य च वर्जनात् ॥
दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति ॥ १७१ ॥

न लेने योग्य लेने से और छोड़ने योग्य का अंगीकार करने से उस राजा की कमजोरी दिखायी देती है और वह नाश को प्राप्त होता है ॥ १७१ ॥

स्वादानाद्वर्ण संसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् ॥
बलं सञ्जायते राज्ञः सप्रेत्येह च वर्धते ॥ १७२ ॥

न्याय्य कर वसूल करने से, वर्णसंकरता को रोकने से और दुर्बलों की रक्षा करने से राजा सामर्थ्यवान होता है और वह इस लोक और परलोक दोनों में वृद्धि को प्राप्त करता है ॥१७२॥

तस्माद्यमइव स्वामी स्वयं हित्वा प्रिया प्रिये ॥
वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ १७३ ॥

इसलिये राजा को उचित है कि यम के सदृश क्रोध को वश में करे और जितेन्द्रिय हो; समान रूप से सबके साथ व्यवहार करे ॥ १७३ ॥

यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ॥
अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥१७४॥

जो राजा लोभ आदि में फँस कर अधर्म से कार्य करता है, उस पर प्रजा की प्रीति नहीं रहती और शीघ्र ही उसके शत्रु उसको उचित दण्ड देते हैं ॥१७४॥

काम क्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति ॥
प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥ १७५ ॥

जो राजा काम क्रोधादि को वश में करके धर्म से कार्य करता है उसमें प्रजा ऐसा अनुराग रखती है जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिल कर एक हो जाती हैं ॥ १७५ ॥

यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे ॥
स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यास्तस्य च तद्धनम् ॥ १७६ ॥

अपनी इच्छा से जबर्दस्ती धन वसूल करने वाले पर राजा चौथाई भाग जुर्माना करे और बाकी नालिश करनेवाले को दिलावे ॥ १७६ ॥

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः ॥
समोवकृष्ट जातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ॥ १७७ ॥

यदि कर्ज लेनेवाला गरीब हो और कर्ज न चुका सके तो सेवा करके पूरा करे और यदि कर्जदार ऊँची जातिका हो तो वह धीरे २ करके ऋण पूरा कर दे ॥ १७७ ॥

अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम् ॥
साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कर्माणि समतां नयेत ॥ १७८ ॥

इस प्रकार आपस में विवाद करनेवाले धनीके गवाहों आदि द्वारा उत्पन्न विरोध दूर करके दोनों में मेल करावे ॥ १७८ ॥

कुलजे वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ॥
महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद् बुधः ॥ १७९ ॥

उत्तम कुल में उत्पन्न सदाचारी, सत्यवक्ता धन से युक्त और भले आदमी के पास धरोहर रखना चाहिये ॥ १७९ ॥

यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ॥
स तथैव गृहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ १८० ॥

जो मनुष्य जिस प्रकार जिसके हाथ सुवर्ण वा रुपया आदि धरोहर रखे, उसी प्रकार लेना योग्य है ॥ १८० ॥

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति ॥
स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसन्निधौ ॥ १८१ ॥

धरोहर रखनेवाला मनुष्य यदि रखनेवाले के पास से अपनी धरोहर न पावे तो उसको हाकिम से कहना चाहिये । हाकिम धनी से धरोहर को मांगे ॥ १८१ ॥

साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूप समन्वितैः ॥
अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्वतः ॥ १८२ ॥

धरोहर रखते समय यदि गवाह न हो तो ऐसे लोगों के मार्फत धरोहर रखाये जो दण्ड आदि दिलाने योग्य हों, इतने पर भी यदि ऐसी धरोहर न मिले तो ऐसे मध्यस्थ और हाकिम के पास, उस धरोहर को माँगना चाहिये ॥ १८२ ॥

स यदि प्रतिपद्येत यथा न्यस्तं यथाकृतम् ॥
न तत्र विद्यते किंचिद्यत्परैरभियुज्यते ॥ १८३ ॥

धरोहर रखनेवाला महाजन यदि रखी हुई धरोहर की सब बातों को स्वीकार करले तो कर्जदार की दूसरी मिथ्या बातें नहीं सुनी जायँगी ॥ १८३ ॥

तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथाविधि ॥
उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा ॥१८४॥

महाजन यदि विधिवत रखी हुई मध्यस्थों की धरोहर न दे तो दवाव डालकर उससे दोनों को धरोहर दिलवावे यही धर्म की धारणा (न्याय) है ॥१८४॥

निक्षेपोपनिधिर्नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे ॥
नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ ॥ १८५ ॥

धरोहर या सुवर्ण इनको रखनेवाला मनुष्य यदि कहीं गायब होजाय तो उसकी धरोहर या सुवर्ण उसके लड़कों को या उत्तराधिकारियों को नहीं देना चाहिये, क्योंकि यदि धरोहर रखनेवाला पुरुष वापस आजाय तो अनर्थ होनेकी संभावना है ॥ १८५ ॥

स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे ॥
न स राज्ञो नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च बन्धुभिः ॥१८६॥

धरोहर रखनेवाला पुरुष मर जाय और महाजन यदि स्वयं ही उसके पुत्र अथवा वारिसों को धरोहर लौटा दे तो उसके वारिस अथवा राजा उसको उस विषय में कुछ नहीं कह सकते ॥ १८६ ॥

अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीति पूर्वकम् ॥
विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत ॥ १८७ ॥

यदि महाजन के पास धरोहर हो और उसका पता लग जाय तो मीठी बातों से उसके पास से धरोहर लेने की कोशिश करे ॥ १८७ ॥

निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परि साधने ॥
समुद्रे नाप्नुयात्किञ्चिद्यदि तस्मान्न संहरेत ॥१८८॥

उपर्युक्त न्याय साक्षी के अभाव में धरोहरों के संबंध में है। यदि कुछ चिह्न करके धरोहर रखी हो और महाजन ने उसमें से कुछ परिवर्तन न किया हो तो महाजन का कोई दोष नहीं है ॥ १८८ ॥

चौरैर्हृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा ॥
न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किंचन ॥ १८९ ॥

महाजन यदि धरोहर मेंसे कुछ न ले और चोर उसे चुरा ले जाय या वह जल से कहीं बह जाय या आग से जल जाय तो महाजन कुछ भी न दे ॥ १८९ ॥

निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेप्तारमेव च ॥
सर्वै रुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः ॥ १९० ॥

धरोहर को छिपानेवाले का या विना रखे हुए धरोहर माँगनेवाले का शपथ आदि द्वारा राजा निश्चय करे ॥ १९० ॥

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ।
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ॥१९१॥

जो किसी की धरोहर को नहीं देता अथवा जो कोई धरोहर विना रखे ही माँगता है ये दोनों चोर के समान सजा पाने योग्य हैं ॥ १९१ ॥

निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं दापयेद्दमम् ॥
तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥ १९२ ॥

धरोहर को रख कर न देनेवाला, और बिना रखे मांगनेवाला इन दोनों को धरोहर की कमी या अधिकता के अनुसार उचित दंड देना चाहिये ॥ १९२ ॥

उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः ॥
स सहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः ॥१९३॥

'राजा तेरे ऊपर क्रोधित है' इस प्रकार कह कर कोई किसीसे धन वसूल करे तो वह छलसे धन लेनेवाला, और उसके साथी नाना प्रकार के कष्ट करके मारने योग्य है ॥ १९३ ॥

निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुल सन्निधौ ॥
तावानेव स विज्ञेयो विब्रुवन्दण्डमर्हति ॥१९४॥

सुवर्ण आदि यदि किसी महाजन के पास किसी गवाह के सामने धरोहर रखी जाय तो उसके छुड़ाते समय साक्षीदार जैसा वजन कहे उसके मुताबिक महाजन को लौटाना चाहिये अन्यथा वह दंड देने योग्य है ॥ १९४ ॥

मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा ॥
मिथ एव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा गृहः ॥ १९५ ॥

धरोहर यदि एकांत में रखी गयी हो और रख लेनेवाला भी यदि एकान्त ही में उसे रखले तो लौटाते समय गवाह की कोई आवश्यकता नहीं है ॥ १९५ ॥

निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनिहितस्य च ।
राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्न्यास धारिणम् ॥१९६॥

धरोहर के धनका अथवा प्रीति से रखे हुए धनका यदि कुछ झमेला पड़े तो उपर्युक्त श्लोक के अनुसार राजा बिना पीड़ा देते हुए उसका निर्णय कर दे ॥ १९६ ॥

विक्रीणीते परस्य स्वं यो स्वामी स्वाम्यसंमतः ॥
न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥ १९७ ॥

जो किसी वस्तु का मालिक न होते हुए बिना मालिक की आज्ञा के पराये की वस्तु को बेच डाले और अपने को चोर न माने तो उसकी शहादत कभी न करे और न उसका कहीं विश्वास ही न करे ॥ १९७ ॥

अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम् ॥
निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥१९८॥

यदि बेचनेवाला मालिक का भाई बन्द हो तो उसे छः सौ पण (अर्थात् २५), ५०) दण्ड करना चाहिये और सम्बन्धी या दीवान कोई भी न हो तो उसे चोर की सजा होनी चाहिये ॥ १९८ ॥

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा ।

अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥ १९९ ॥

विना मालिक की आज्ञा के जो किया, दिया वा मोल विक्री किया जाता है वह ठीक नहीं होता और न व्यवहार की मर्यादा में ही वह आ सकता है ॥ १९९॥

संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित् ।
आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः ॥ २०० ॥

जो वस्तु उपयोग में तो आती दिखाई देती है पर उसके आगम का कहीं पता नहीं है वहाँ मर्यादा उस वस्तु के आगम की ही है न कि उसके भोग की ॥२००॥

विक्रयादौ धनं किञ्चिद्गृह्णीयात्कुल सन्निधौ॥
क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥ २०१ ॥

जो बहुत व्यवहारी जनों के सम्मुख द्रव्य को मूल्य लगा कर खरीदता है वह शुद्ध है और न्याय से उसको ग्रहण करता है ॥ २०१ ॥

अथ मूलमनाहार्यं प्रकाश क्रय शोधितः ।
अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम् ॥२०२॥

जो मालिक की अनुमति से वस्तु वेचनेवाला मनुष्य मर जाय या देशान्तर को चला जाय तो मोल लेनेवाला दंड के योग्य नहीं है, पर उस वस्तु का असल मालिक उस वस्तु का आधा मूल्य देकर उसको पा सक्ता है ॥ २०२ ॥

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रय मर्हति ।
न सासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥२०३॥

एक चीज को दूसरी चीज में मिलाकर, या विगड़ी हुई वस्तु को उत्तम कहकर या तौल में वस्तु कम देकर या विश्वास से रखी हुई वस्तु को कोई नहीं वेचे ॥ २०३ ॥

अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदीयते ॥
उभे ते एक शुल्केन वहेदित्य ब्रवीन्मनुः ॥ २०४ ॥

धन देकर ली जानेवाली कन्या को वेचनेवाला वेंचते समय सुन्दर दिखला दे और बाद कोई कुरूपा कन्या दिखला दे, तो ऐसी दशा में एक ही मूल्य में लेना (खरीदनेवाला) को दोनों कन्याएँ दे ॥ २०४ ॥

नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना ॥
पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥ २०५ ॥

जो उन्मता, कोढिन या पूाकसंयोगिता कन्या को वर को कह कर देता है वह दंड योग्य नहीं है, पर न कह कर जो देता है वह दंड का भागी है ॥२०५॥

ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत् ॥
तस्य कर्मानुरूपेण देयोंऽशः सह कर्तृभिः ॥ २०६ ॥

यदि यज्ञ में वरण किया हुआ ऋत्विक कर्म आरम्भ करने के उपरांत रोग से पीड़ित हो जाय तो उसके किए हुए कार्य के अनुसार उसको दक्षिणा का अंश मिलना चाहिये ॥ २०६ ॥

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् ॥
कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत् ॥ २०७ ॥

दक्षिणा देने के पीछे रोग आदि से पीड़ित होकर यदि ऋत्विक अपने बाकी कर्म को त्यागे तो वह पूरी दक्षिणा पाने योग्य है, शेष कर्म वह दूसरे ऋत्विक द्वारा करा दे सकता है ॥ २०७ ॥

यस्मिन कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यङ्गदक्षिणाः ॥
स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥ २०८ ॥

जिस आधान या कर्म में जिस जिस सम्बन्ध में जो २ दक्षिणा लिखी है वही उनको ले अथवा सब भाग को सब बाँट कर ले लें ॥ २०८ ॥

रथं हरेत वाध्वर्युर्ब्रम्हाधाने च वाजिनम् ॥
होता वापि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यनः क्रये ॥ २०९ ॥

आधान कर्म में अध्वर्यु रथको गृहण करे, ब्रह्मा अश्व को, और होता भी अश्व को गृहण करे, उद्गता सोमक्रय को धारण करनेवाले शकट को गृहण करे अर्थात् जिसका जो भाग दक्षिणा का हो वही उसको गृहण करे ॥ २०९ ॥

सर्वेषामर्धिनो मुख्या स्तदर्धं नार्धिनोऽपरे ॥
तृतीयिनस्तृतीयांशा श्चतुर्थांश्च पादिनः ॥ २१० ॥

आधान में होता, ब्रह्मा अध्वर्यौ उद्‌गता ये चार मुख्य ऋत्विक् हैं इनको पूरी दक्षिणाका आधा भाग, लेना चाहिये, अन्य चार ऋत्विक मैत्रावरुण, प्रतिप्रोता ब्राह्मणाच्छंसी और प्रस्तोता इनको आधे का आधा और अच्छावाक, नेष्टा आग्नीध्र प्रतिहर्ता इनको दक्षिणा का तीसरा भाग लेना चाहिये और उन्नेना, होता सुब्रह्मण ये मुख्य ऋत्विक् की पाई हुई दक्षिणा का चौथा हिस्सा पाते हैं ॥ २१० ॥

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः ॥
अनेन विधियोगेन कर्तव्यांश प्रकल्पना ॥२११॥

गृह निर्माण करने में अथवा मिलकर कोई कार्य करने में ऐसे ही उचित भागों की कल्पना करके तब कार्य आरम्भ करना चाहिये ॥ २११ ॥

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम् ॥
पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥ २१२ ॥

अब यह बतलाते हैं कि दिया हुआ धन वापस किस अवस्था में लेना चाहिये। जब किसी को किसी धर्म कार्य को करने के लिये द्रव्य दिया जाय और देने का वचन दिया जाय और वह माँगनेवाला उस कार्य को पूरा न करे तब उससे वह धन लौटा लेना चाहिये और प्रतिज्ञा किया हुआ धन भी नहीं देना चाहिये ॥ २१२ ॥

यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः ॥
राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥२१३॥

यदि पाए हुए धन को पानेवाला अहंकार से न देकर और उलटे माँगने लगे तो राजा उसको दंड दे ॥ २१३ ॥

दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥ २१४ ॥

धार्मिक विषय में धन न देने के विषय कहे गए, अब यह कहेंगे किस अवस्था में भृत्य (नौकर) को उसका वेतन न देना चाहिये ॥ २१४ ॥

भृतोऽनार्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम् ॥

स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ॥२१५॥

जो नौकर भला चंगा रहने पर भी जान बूझ कर अहंकारवश अपने मालिक का काम नहीं करता उसको मालिक तीन रत्ती सुवर्ण का मूल्य दण्ड दे और चाहे तो तनखा भी न दे ॥ २१५ ॥

आर्त्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथाभाषितमादितः ॥
स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ॥ २१६ ॥

जो नौकर बीमारी में काम नहीं करता किन्तु चंगा होने पर दिल से मालिक की आज्ञा का पालन करता है, बहुत दिन की बाकी तनखा भी यदि हो तो वह पाने का अधिकारी है ॥ २१६ ॥

यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ।
न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥ २१७ ॥

जो नौकर बीमार होने पर अपने मालिक का काम दूसरे से नहीं कराता और चंगा होने पर स्वयं भी नहीं करता या दूसरे से नहीं कराता, वह किये हुए काम का पुरस्कार भी पाने योग्य नहीं है ॥ २१७ ॥

एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्मणः ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ॥ २१८ ॥

यह वेतन देनेवालों के विषय में कहा गया अब इसके निषिद्ध कर्म करने वालों की व्यवस्था कहेंगे ॥ २१८ ॥

यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम् ॥
विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ २१९ ॥

किसी राजा के शासन में रहनेवाले वैश्य यदि समूह रूप से कोई कार्य करने का निश्चय करें और यदि कोई निश्चय के विरुद्ध वरते तो राजा को अधिकार है कि वह उसको अपने राज से बाहर निकाल दे ॥ २१९ ॥

निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम् ॥
चतुः सुवर्णान्षण्णिष्कांञ्छतमानं च राजतम् ॥२२०॥

प्रतिज्ञा उल्लंघन करनेवाले को रोक कर उस पर राजा को दंड करना चाहिये ॥ २२० ॥

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥
ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम् ॥२२१॥

ग्राम में जो जातियाँ हों और उनमें यदि कोई मनुष्य अपनी जाति की रहन सहन तथा उसके नियम के विरुद्ध चले तो धार्मिक राजा उपर्युक्त दण्ड दे ॥ २२१ ॥

क्रीत्वा विक्रयि वा किञ्चिद्यस्येहानुशयो भवेत् ॥
सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत च ॥२२२॥

कोई पुरुष यदि भूमि अथवा तांबा आदि द्रव्यों को मोल ले और लेकर पछतावे और वह यदि दस दिन के भीतर उस वस्तु को लौटा दे तो बेचनेवाला भी उसे वापस ले ले ॥ २२२ ॥

परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत् ॥
आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥२२३॥

दस दिन के भीतर यदि खरीदार न लौटावे या बेंची हुई वस्तुको वापस न ले तो राजा उस पर ६०० पण दण्ड करे ॥ २२३ ॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ॥
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥ २२४ ॥

जो पुरुष दोषयुक्त कन्या के बारे में वर को कुछ भी न कह कर दे दे राजा स्वयं उसका इन्साफ करे और उसे ९० पण दण्ड देवे ॥ २२४ ॥

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ॥
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥ २२५ ॥

जो किसी कन्या को द्वेषभाव से क्षतयोनिवाली अकन्या कहे और वह सिद्ध न हो तो राजा द्वारा वह १०० पण दण्डनीय है ॥ २२५ ॥

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः ॥

नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥ २२६ ॥

विवाह संस्कारों में पाणिगृहण आदि के सम्बन्ध में जो वैदिक मन्त्र हैं वे कन्या के विषय में कहे हैं न कि अकन्या के विषय में, क्योंकि अकन्या धर्म क्रिया को नाश करनेवाली है ॥ २२६ ॥

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ॥
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥ २२७ ॥

विद्वानों को जानना चाहिये कि विवाह संबंधी मन्त्र भार्या होने में निश्चय हैं क्योंकि 'सप्त पदी भव' का अर्थ ही यह है कि विना सात बार भाँवर फिरे वह भार्या नहीं होती है ॥ २२७ ॥

यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशयो भवेत् ॥
तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥ २२८ ॥

केवल खरीदने बेचने के विषय में ही नहीं किन्तु और कोई भी दश दिन के भीतर पश्चात्ताप का काम हो तो राजा उसका निर्णय कर उपर्युक्त कथानुसार उसका न्याय करे ॥ २२८ ॥

पशुषु स्वामिनांचैव पालानां च व्यतिक्रमे ॥
विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २२९ ॥

गौ आदि पशुओं के मालिक और नौकर में खिंचाव हो जाय तो उसके निर्णय के विषय में धर्म कहते हैं ॥ २२९ ॥

दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे ॥
योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात ॥ २३० ॥

दिनमें पशु चरानेवाले की जिम्मेदारी होती है और रात में यदि मालिक के यहाँ बँधने पर कुछ कष्ट तो वह मालिक का दोष है और रात दिन पशु यदि पालनेवाले के पास रहे तो उसीका दोष है ॥ २३० ॥

गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्याद्दशतोवराम् ॥
गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृतेभृतिः ॥ २३१ ॥

जो गोपाल—अहीर केवल दूध पर नौकर हो अन्न द्रव्य आदि मालिक से न ले तो सब में श्रेष्ठ गौ का दूध वह ले ले वही उसका वेतन होगा। वह नौ गौएँ और एक अपनी अर्थात् कुल १० को पाले ॥ २३१ ॥

नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् ॥
हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥ २३२ ॥

जो चरानेवालों के पास से पशु खोजाय, अनजान में बिच्छू आदि डँस ले, कुत्ते या शिकारी जानवर खा जायँ या गड्ढे गुड्ढे में पड़कर मर जाय और कोई बचावे नहीं तो ऐसे पशुओं को चरानेवाले स्वामी को दे ॥ २३२ ॥

विघुष्य तु हृतं चोरैर्न पालो दातुमर्हति ॥
यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥२३३॥

गौओं का पालन करनेवाला यदि चोरी आदि की आशंका से ढोल इत्यादि बजाकर मालिक को अवस्था की सूचना दे तो पालनेवाला चोरी गए या गायब हुए पशुओं को न दे ॥ २३३ ॥

कर्णौ चर्म च वालांश्च वस्तिं स्नायुं च रोचनाम् ॥
पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्गानि दर्शयेत् ॥ २३४ ॥

यदि पशु आपही मर जाय तो पालनेवाला कान, बाल, पूंछ, चरबी आदि मालिक को दे और खुर सींग आदि उसको दिखला दे ॥ २३४ ॥

अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति ॥
यां प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्विषं भवेत् ॥२३५॥

यदि भेड बकरी या और अन्य पालित पशु को कोई भेडिया या जंगली जानवर मार डाले और पालनेवाले सुनकर भी दौड़कर न जाय तो मृत पशु पालक को स्वामी को देना चाहिये ॥ २३५ ॥

तासां चेदवरुद्धानां चरंतीनां मिथो वने ॥
यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी ॥२३६॥

यदि पालन करने वाला अपने पशुओं को देखभाल करता रहे और अचा-

नक ..ो कोई भेडिया या जंगली जानवर आक्रमण करे तो वह दोष पालक का नहीं है ॥ २३६ ॥

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ॥
शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ २३७ ॥

ग्राम के इर्द गिर्द चार सौ हात पृथ्वी में जुताई बोआई न करनी चाहिये या कम से कम लाठी तीन वार फेंककर जितनी दूर जा सके उतनी पृथ्वी तो चरन के लिये छोड़ देनी चाहिये और शहर के आस पास यह दूरी तिगुनी होनी चाहिये ॥ २३७ ॥

तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि ॥
न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥ २३८ ॥

यदि उपर्युक्त कही जमीन में कोई कुछ वो देवे और जानवर आकर चर जायँ तो राजा किसी को दंड न दे ॥ २३८ ॥

वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् ॥
छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥ २३९ ॥

यदि कोई ऐसी जमीन में बोवे तो उसको चाहिये कि उसको चारो तरफ से घेर दे कि ऊँट भी फसल को न देख सके और न कहीं से कुत्ते और सूकर का मुख भी उसमें जा सके ॥ २३९ ॥

पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः ॥
स पालः शतदण्डार्हो विपालांश्वारयेत्पशून् ॥ २४० ॥

सड़क के समीप गो चारण की भूमि के घेरे में यदि कोई पशु चरें तो पशुपालक को १०० पण दण्ड देना चाहिये। यदि पशुपालक साथ में न हो तो खेत के मालिक को चाहिये की पशुओं को रोक दे ॥ २४० ॥

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति ॥
सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारणा ॥ २४१ ॥

पालक यदि साथ में हो और उसके पशु आगे बढ़कर चर जायँ तो उसको

६। पण का दण्ड देना चाहिये, और अन्यान्य स्थानों में चराने वाले को अपराध के अनुसार दंड देना चाहिये ॥ २४१ ॥

अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा ॥
सपालान्वा विपालान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत् ॥२४२॥

यदि ब्याही हुई गौ दश दिन के अंदर किसी के खेत में चरे या चक्र त्रिशूल वाला देवता स्वरूप सांड चरता होय तो इनको दंड न देने को कहा है ॥२४२॥

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् ॥
ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु ॥ २४३ ॥

यदि खेतवाला राजा को राजस्व न देता हो और खेत बोया रहे और उसमें पशु आकर चर जायँ तो राजस्व की जितनी हानि हो उसका दस गुना दंड देना चाहिये। और यदि क्षेत्रपाल के नौकरों से उसके अनजानते अपराध हो जाय तो मालिक को आधा दंड होवे ॥ २४३ ॥

एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥
स्वामिनां च पशूनांच पालानां च व्यतिक्रमे ॥ २४४ ॥

स्वामियों, पशुओं और पशुपालकों के विषय में धार्मिक राजा इसी उपर्युक्त नीतिका अवलम्ब न करे ॥ २४४ ॥

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः ॥
ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु ॥ २४५ ॥

यदि दो ग्रामों की सीमाओं में झगड़ा पड़े तो जेठ के महीने में पृथ्वी जब सूख सूख जाय तब चिन्हों को देख कर राजा सीमा का निर्धारण करे ॥२४५॥

सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् ॥
शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान्॥२४६॥

बर, पीपर, ढाक, सेमर, साल ताल आदि दूधवाले बहुत काल पर्यन्त रहनेवाले वृक्ष सीमा पर लगावे ॥ २४६ ॥

गुल्मान्वेणूंश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च ॥
शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति ॥२४७॥

गुल्मों, घासों और काँटेदार पेड़ों शमी के वृक्षों आदि को सीमा पर लगावे क्योंकि इनके लगाने से सीमा नष्ट नहीं होती ॥ २४७ ॥

तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च ॥
सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ २४८ ॥

तालाब, बावड़ी, कुँआ, पौसरा देवालय आदि सीमा पर लगावे ॥ २४८ ॥

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिंगानि कारयेत् ॥
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥२४९॥

सीमा निर्णय के विषय में लोगों में सदा भ्रम हो जाता है उसके लिये गुप्त चिह्न कर देने चाहिये। उनका वर्णन आगे करते हैं ॥ २४९ ॥

अश्मनोऽस्थीनि गोवालांस्तुषान्भस्म कपालिकाः ॥
करीषमिष्टकाङ्गाराञ्छर्करा वालुकास्तथा ॥ २५० ॥

पत्थर, अस्थि, भस्म, गोबर पकी ईंट कोयला आदि घड़ों में भर कर सीमा पर गाड़ देवे ॥ २५० ॥

यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत् ॥
तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥ २५१ ॥

इस प्रकार की वस्तुएँ जो बहुत काल तक न विगड़े सीमा पर गाड़ दी जायँ ॥ २५१ ॥

एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः ॥
पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥ २५२ ॥

यदि सीमा के विषय में झगड़ा पड़ जाय तो राजा उपर्युक्त चिन्हों से निर्णय कर दे या नदी आदि के प्रवाह से सीमा निर्धारण करे ॥ २५२ ॥

यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने ॥
साक्षिप्रत्यय एवस्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥ २५३ ॥

यदि इन गुप्त या प्रकट चिह्नों से भी सीमा का निर्णय न हो तो साक्षी से निर्णय करे ॥ २५३ ॥

ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः ॥
प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥२५४॥

जहाँ झगड़ा पड़े वहाँ दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों को बुला कर सब के सामने गवाही लेकर निर्णय करे ॥ २५४ ॥

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् ॥
निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः ॥२५५॥

ली हुई सब गवाहियों को भूलने के डर से कागज पर लिखे और उनके हस्ताक्षर उन पर लिख ले ॥ २५५ ॥

शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः ॥
सुकृतैः शापिताः स्वैःस्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ॥२५६॥

सीमा के विषय में जो गवाही दे वह लाल फूल सिर पर रखे, लाल ही वस्त्र धारण करे और थोड़ी सी मट्टी अपने सिर पर रख कर कहे कि यदि मैं असत्य कहूँ तो मेरा जो कुछ सुकृत (पुण्य) हो वह नष्ट हो जाय, और तब गवाही दे और राजा उसीके अनुसार सीमा का निर्णय करे ॥ २५६ ॥

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः ॥
विपरीतं नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥२५७॥

इस प्रकार जो सत्य का अवलम्बन कर साक्ष्य देते हैं वे पापरहित हो जाते हैं और जो झूठी गवाही देते हैं, वे सौ पण दंड देने योग्य हैं ॥२५७॥

साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः ॥
सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥ २५८ ॥

यदि दो ग्रामों की सीमा के निर्णय के लिये साक्षी न हों तो राजा के सम्मुख वहाँ के रहने वालों को उपस्थित कर उनके कथनानुसार समझ कर राजा निर्णय करे ॥ २५८ ॥

सामन्तानामभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् ॥
इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥ २५९ ॥

यदि ऐसे गवाह भी न मिलें तो आगे जैसे कहेंगे वैसे गवाह ढूँढने चाहिये ॥ २५९ ॥

व्याधांश्शाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान् ॥
व्यालग्रहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः ॥ २६० ॥

यदि उपर्युक्त प्रकार के गवाह किसी प्रकार भी न मिलें तो उनके अभाव में व्याध अहीर, गौंड़, गड़ेरिया आदि वहाँ से आने जानेवाले लोगों से पूछे ॥ २६० ॥

ते पृष्टास्तु तथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् ॥
तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ २६१ ॥

इन व्याध आदि गवाहों के कथन को समझ कर राजा सीमा का निर्धारण करे ॥ २६१ ॥

क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च ॥
सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ २६२ ॥

ग्राम के भीतर खेत, कुआँ, तालाब और घर की सीमाओं में झगड़ा पड़े तो आस पास के बसने वालों ही से गवाही लेकर सीमा का निर्धारण हो ॥२६२॥

सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् ॥
सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥ २६३ ॥

ऐसी सीमा के निर्धारित में आस पास के बसनेवाले यदि झूठी गवाही दें तो वे सब पृथक् २ करके दंड देने योग्य हैं ॥ २६३ ॥

गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ॥
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ॥२६४॥

घर, कुआँ, बगीचा आदि को जो डरा कर या धमका कर ले लेवे तो उसे राजा ५०० दंड दे और जो बल से ले लेवे तो उसे २ सौ पण दण्ड दे ॥ २६४ ॥

सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् ॥
प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादिति स्थितिः ॥ २६५ ॥

सीमा के चिन्ह और साक्षियों के अभाव में धर्मज्ञ राजा जिनको अधिक नुकसान हो उनको विचार कर राजा उनको देदे यही धर्म की व्यवस्था है ॥ २६५ ॥

एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥ २६६ ॥

यह सीमा के विषय में सम्पूर्ण निर्णय कह दिया है अब इसके बाद वाक्पारुष अर्थात् कठोर वचन कहने का निर्णय कहते हैं ॥ २६६ ॥

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।
वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥ २६७ ॥

जो क्षत्रिय ब्राह्मण को 'चोर' आदि भयंकर मिथ्या दोषारोपण करे तो उस क्षत्रिय को सौ पण दंड होना चाहिये। यदि वह बनिया हो तो उसे अपराध के अनुसार दो सौ या तीन सौ पण दण्ड देना चाहिये और यदि शूद्र कहे तो वह वध करने योग्य है ॥ २६७ ॥

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने ॥
वैश्ये स्यादर्धपंचाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥ २६८ ॥

ब्राह्मण यदि क्षत्रिय को खोटे वचन कहे तो पचास पण दण्ड के योग्य है और यदि वैश्य से कहे तो पचीस पण और शूद्र से कहे तो बारह पण दण्ड के योग्य है ॥ २६८ ॥

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ॥
वादेष्ववचनीयेषु तदेवद्विगुणं भवेत् ॥ २६९ ॥

समान जाति के लोग आपस में कुवचन कहें तो उसके लिये दण्ड बारह पण है और माता भागिनी आदि को कुवचन कहने से उसका दूना दण्ड है ॥ २६९ ॥

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन् ॥
जिव्हायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ॥२७०॥

जो शूद्र अपने से उच्चवर्णों की निंदा करे तो राजा उसकी जिह्वा निकाल देवे

क्योंकि उसका पाद से जन्म है और उसको अपने से उच्च को कहने का कोई अधिकार नहीं है ।। २७० ।।

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ॥
निक्षेप्योऽयोमयः शंकुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः ॥ २७१ ॥

यदि कोई शूद्र ब्राह्मण को नीच आदि कुवचन कहे तो अग्नि में तपाकर दश अंगुल की लोहे की कील उसके मुँह में ठोक दे ॥ २७१ ॥

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ॥
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ २७२ ॥

यदि कोई शूद्र अहङ्कारवश किसी ब्राह्मण को उपदेश देवे तो राजा उसके कानों में तपा हुआ तेल छोड़वावे ।। २७२ ।।

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ॥
वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ॥ २७३ ॥

यदि कोई ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण को ही यह दोष दे कि 'तुम इस देश में उत्पन्न नहीं है तुम्हारा यज्ञोपवीत आदि संस्कार नहीं हुआ है' तो कहनेवाला दो सौ पाण दंड के योग्य है ॥ २७३ ॥

काणंवाप्यथवा खञ्जमन्यंवापि तथाविधम् ॥
तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥ २७४ ॥

यदि कोई विप्र काना लूला या पंगु रहे और उसे सत्य ही कोई वैसा कहे तो भी उसे १ पण दण्ड होना चाहिये ॥ २७४ ॥

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ॥
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥२७५॥

माता पिता, स्त्री, भाई, पुत्र और गुरु इन पर मिथ्या पातक लगानेवाले को सौ पण दण्ड करना चाहिये ॥ २७५ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ॥
ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रियेत्वेव मध्यमः ॥ २७६ ॥

यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों में झगड़ा पड़ जाय तो ब्राह्मण को कुछ कम और क्षत्रिय को अधिक दण्ड दे ॥ २७६ ॥

विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ॥
छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ॥ २७७ ॥

उसी प्रकार यदि वैश्य और शूद्र के बीच झगड़ा हो जाय तो शूद्र को अधिक और उससे कुछ कम वैश्य को दंड दे ॥ २७७ ॥

एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥ २७८ ॥

यह तो वाक्पारुष्य का दण्डविधान बतलाया अब आगे दण्ड पारुष्य का निर्णय कहेंगे ॥ २७८ ॥

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ॥
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥ २७९ ॥

मनुजी की आज्ञा है कि शूद्र जिस अङ्ग से द्विजातियों की ताड़ना करे उसी अङ्ग को भङ्ग करना चाहिये ॥ २७९ ॥

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ॥
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ॥ २८० ॥

शूद्र यदि द्विजाति को हाथ से मारे तो हाथ और पैर से ठुकराये तो पैर को भङ्ग कर देना चाहिये ॥ २८० ॥

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ॥
कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत् ॥२८१॥

जो शूद्र अभिमानवश हो ब्राह्मण के आसन पर बैठे तो लोहा गरम करके उसकी पीठ दाग दे और देश से निकाल दे या उसके शरीर से मांस पिण्ड कटवा दे ॥ २८१ ॥

अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः ॥
अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥ २८२ ॥

यदि शूद्र अभिमानवश हो ब्राह्मण पर थूक दे तो राजा उसके दोनों होंठ

कटवा दे, यदि मूत्र से अपमान करे तो लिंगेंद्रिय छेदवा दे और गाली गलौज कर अपमान करे तो गुदा छेदन कर दे ॥ २८२ ॥

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन् ॥
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥२८३॥

जो शूद्र अभिमान वश द्विजाति को बाल पकड़ कर पीड़ा दे या पैर या वृषणों को कष्ट दे तो उसके हाथ को काट लेना चाहिये ॥ २८३ ॥

त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ॥
मांसभेत्ता तु षण्निष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थि भेदकः ॥२८४॥

जो अपनी ही जाति के मनुष्य के शरीर से कोई चीज़ गड़ोकर खून निकाले तो उसे सौ पण दण्ड करना चाहिये, जो मांस छेदन करे उसे छः निष्क सुवर्ण दण्ड देना चाहिये और जो अस्थि को छेदन करे उसे देश से निकाल देना चाहिये ॥ २८४ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा ॥
तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ॥ २८५ ॥

वनस्पति, फल फूल इनकी जैसी हानि हुई हो उसी के अनुसार करनेवाले को दण्ड दिया जाय ॥ २८५ ॥

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ॥
यथायथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथातथा ॥ २८६ ॥

मनुष्यों और पशुओं को पीड़ा पहुँचाने के लिये वैसा ही या उससे अधिक कठोर दण्ड देना चाहिये, जैसी पीड़ा हुई हो ॥ २८६ ॥

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ॥
समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥ २८७ ॥

कोई किसी को ऐसा मारे कि हाथ या पैर में घाव हो जाय तो जब तक घायल अच्छा न हो तब तक उसका व्यय मारनेवाले को देना चाहिये और यदि न दे तो शासक जबर्दस्ती दिलवावे ॥ २८७ ॥

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥

स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञे दद्याच्च तत्समम् ॥ २८८ ॥

जो कोई किसी के वर्तन आदि को जाने या अनजाने नाश कर दे वह उसको (जिसका नुकसान हुआ है) वैसे ही रूप में उसका प्रतिफल दे और इस अपराध के लिये शासक उसको उन वस्तुओं के मूल्य के बराबर दण्ड दे ॥ २८८ ॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च ॥
मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥ २८९ ॥

चमड़े की वस्तुएँ जैसे मशक आदि या मिट्टी के वर्तनों को कोई फोड़ डाले तो फोड़ी हुई वस्तु के मूल्य का पाँच गुना अधिक दाम फोड़नेवाला दे और वस्तु देकर मालिक को प्रसन्न करे ॥ २८९ ॥

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ॥
दशातिवर्त्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

रथ, सारथी और उसका मालिक इनको उपर्युक्त दस निमित्त हो जावे तो दण्ड नहीं है, पर इनके अलावा दण्ड है ॥ २९० ॥

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ॥
अक्षभङ्गे च यानस्यचक्रभङ्गे तथैव च ॥ २९१ ॥
छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ॥
आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत ॥ २९२ ॥

बैलकी नाथ टूट जावे, जुवा टूट जावे, ऊँची नीची पृथ्वी पर चलाने से र[illegible] तिरछा हो जावे, रथके पहियों का धुरा टूट जावे, चमड़े से बँधे यन्त्र खुल जा[illegible] बैल के पकड़ने के जोत, या रस्सी टूट जावे या हांकते समय बैल भड़क जा[illegible] यदि इन कारणों से प्राणिहिंसा या द्रव्यनाश हो जाय तो सारथी आदि द[illegible] देने योग्य नहीं हैं ॥ २९१ ॥ २९२ ॥

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ॥
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ॥ २९३ ॥

जब हाँकनेवाले की असावधानी से कोई नुकसान हो जाय तो उस हाँकने

वाले और उसके स्वामी को २०० पण दण्ड करे ॥ २९३ ॥

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ॥
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम् ॥२९४॥

सारथी कुशल होने पर भी यदि कुछ हानि हो जाय तो सारथी को दो सै पण दंड होना चाहिये और वह कुशल न हो तो जो जो लोग उस गाड़ी में बैठे हों वे उस सारथिकी मूर्खता के कारण सौ सौ पण दंड पाने योग्य हैं ॥ २९४ ॥

स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ॥
प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ॥ २९५ ॥

जो सारथि सामने से आती हुई गौओं या दूसरे रथ को देखकर भी अपने रथ को नहीं सम्हालता और प्राणहानि करता है तो वह दंड पाने योग्य है ॥ २९५ ॥

मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् ॥
प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ २९६ ॥

सारथि की असावधानी के कारण यदि प्राणिहिंसा हो जाय तो सब से कठिन दंड दे और यदि गज ऊँट जैसे प्राणियों की हत्या हो तो ५०० पण दण्ड दे ॥ २९६ ॥

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ॥
पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ २९७ ॥

छोटी जाति के पशुओं को मारने के लिये दो सौ पण दंड करना चाहिये और सुन्दर तथा मृदु पक्षी जैसे तोता, मैना, और पशु जैसे मृग आदि मारने में पचास पण दंड करना चाहिये ॥ २९७ ॥

गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः ॥
माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥ २९८ ॥

गदहा बकरी भेड़ इत्यादि मारने में पांच माशा (चाँदी का सिक्का) दंड दे और सूअर या कुत्ता मारने के लिये एक माशा दंड दे ॥ २९८ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः ॥
प्राप्तापराधास्ताड्यः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥२९९॥

स्त्री, पुत्र दासी सहोदर लघुभ्राता आदि से यदि कोई भयंकर अपराध हो जाय तो इनको रस्सी, बांस की कमची या बेंत से शिक्षा देनी चाहिये ॥ २९९ ।

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथंचन ॥
अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥३००॥

इन उपर्युक्त लोगों को यदि मारे भी तो पीठ पर न कि शिर पर या और किसी कोमल स्थान पर । इसके विरुद्ध आचरण करने से चोर की सजा मारनेवाले को होनी चाहिये ॥ ३०० ॥

एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः ॥
स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥ ३०१ ॥

पहले दंड पारुष्य कहा गया है, अब चोर के दंड का विधान करते हैं ॥३०१॥

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः ॥
स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ॥३०२॥

चोरों को दंड देने में राजा जरा भी न हिचकिचावे, क्योंकि इनको दंड देने से ही राजा का यश और राज्य की वृद्धि होती है ॥ ३०२ ॥

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ॥
सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥ ३०३ ॥

जो राजा प्रजा को निर्भय रखता है वह सदा पूजनीय है और उसके दान धर्म भी सदा फलदायक होते हैं ॥ ३०३ ॥

सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः ॥
अधर्मादपि षड्भागोभवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥ ३०४ ॥

अच्छी रीति से प्रजा का पालन करनेवाले शासक को प्रजा के धर्मके छठवें भाग का पुण्य प्राप्त होता है, उसी प्रकार प्रजा की रक्षा न करनेवाला शासक प्रजाके पाप के उतने ही अंश का भागी होता है ॥ ३०४ ॥

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति ॥
तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात् ॥ ३०५ ॥

राज्य का हर एक मनुष्य जो जप यज्ञ दान आदि करता है उसका छठा अंश उसी राजा को प्राप्त होता है जो प्रजा की रक्षा करता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥ ३०५ ॥

रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ॥
यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ३०६ ॥

धर्म से प्रजा की रक्षा करनेवाला और दंडनीय लोगों को दण्ड देनेवाला राजा सवालाख दक्षिणाय उपयज्ञ के फल का भागी होता है ॥ ३०६ ॥

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ॥
प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत् ॥३०७॥

जो राजा प्रजा की रक्षा न करके अपने राजस्व कर आदि में व्यर्थ कष्ट देता है वह मरकर नरक को प्राप्त होता है ॥ ३०७ ॥

अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ॥
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ ३०८ ॥

जो राजा प्रजा की समुचित रक्षा नहीं करता और अपना भाग प्रजा से पूरा ले लेता है, वह संसार भर के पाप का भागी होता है ॥ ३०८ ॥

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् ॥
अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥ ३०९ ॥

जो राजा शास्त्र की मर्यादा त्याग कर नास्तिक बन जावें या अनुचित दंड देकर धन वसूल करे या ब्राह्मणों को क्लेश दे या समुचित रीति से प्रजा की रक्षा न करे उसे नरकगामी अवश्य समझना चाहिये ॥ ३०९ ॥

अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ॥
निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥ ३१० ॥

अधर्मी चोर या लुच्चे लोगों को राजा तीन प्रकार से दण्ड दे-(१) रोक

कर (२) बाँध कर और (३) हाथ पैर तुड़वा कर ॥ ३१० ॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ॥
द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥ ३११ ॥

जिस प्रकार यज्ञादि करने से ब्राह्मण पवित्र हैं होते हैं, उसी प्रकार अधर्मियों को दण्ड देने से और धार्मिक की रक्षा करने से राजा पवित्र होता है ॥ ३११ ॥

क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम् ॥
बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ ३१२ ॥

अपने दुःख को सहते हुए कार्यार्थी और प्रत्यर्थी को राजा को क्षमा करनी चाहिये, उसी प्रकार बाल वृद्ध और रोगी को भी क्षमा करनी चाहिये ॥३१२॥

यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥
यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ ३१३ ॥

जो राजा दुःखी मनुष्यों द्वारा कष्ट पाकर भी उनको क्षमा करता है वह स्वर्ग में पूजा को प्राप्त होता है और जो अपने ऐश्वर्य के अभिमान से क्षमा नहीं करता, वह नरक का भागी होता है ॥ ३१३ ॥

राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ॥
आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम् ॥३१४॥

जो ब्राह्मण के सुवर्ण को चुरा लेवे तो उस चोर को अपने केश खुले रख कर राजा के पास जाना चाहिये और कहना चाहिये कि मैंने ब्राह्मण का सुवर्ण चुराया है, इसलिये आप मुझे दण्ड दें ॥ ३१४ ॥

स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् ॥
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥३१५॥

कन्धे पर मूसल या सोटा या दोनों ओर पैनी बरछी या लोहे का दण्ड लेकर राजा के पास जाय और कहे कि मैंने ब्राह्मण का सुवर्ण चुराया है, इसलिये मुझे दण्ड मिलना चाहिये ॥ ३१५ ॥

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ॥
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥३१६॥

शासन से अर्थात् एक बार मूसल का प्रहार करने पर वह न मरे या राजा उसको छोड़ दे तो ऐसा मनुष्य चोरी के पाप से मुक्त हो जाता है पर यदि ही राजा उसको दण्ड न दे तो स्वयं राजा उस चोर की सजा को प्राप्त हो ॥३१६॥

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ॥
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥३१७॥

जो भ्रूणहत्या करनेवाले का अन्न खाता है वह उसके पाप का भागी होता है उसी प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री के पाप का भागी उसका पति होता है, शिष्य यम नियम से न रहनेवाला भी अपना पाप अपने गुरु में स्थापित करता है और जिस चोर को राजा दण्ड न दे उसका पाप राजा में स्थापित होता है, अतः राजा को चाहिये कि चोर को दण्ड अवश्य दे ॥ ३१७॥

राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ॥
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥ ३१८ ॥

जिस प्रकार पुण्य करनेवाला मनुष्य श्रेष्ठ हो जाता है उसी प्रकार पापी राजा द्वारा दंडित होकर उन पापों से मुक्त हो सकते हैं ॥ ३१८॥

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिन्द्याच्च यः प्रपाम् ॥
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ॥३१९॥

जो आदमी रस्सी या घड़ा कुए पर से चोरी करता है या पौसरा नष्ट करता है वह एक सुवर्ण निष्क दण्ड दे और चोरी किया घड़ा और रस्सी कुआँ पर लाकर रख दे ॥ ३१९ ॥

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ॥
शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ ३२० ॥

दो सौ पल का एक द्रोण और बीस द्रोण का एक कुम्भ होता है। जो कोई इससे अधिक धान्य चुरावे तो वह मृत्यु दण्ड पाने योग्य है। चोरी की गुरुता के अनुसार दण्ड होना चाहिये। यदि १ कुम्भ से लेकर १० कुम्भ तक की

चोरी वा यदि प्राण दंड न देना हो तो धान्य की कीमत का दसगुना देना चाहिये और उक्त धान्य मालिक को वापस करना चाहिये ॥ ३२० ॥

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ॥
सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससम् ॥ ३२१ ॥

जिस प्रकार अन्न के चोर को प्राणदंड की व्यवस्था कही है उसी प्रकार तौलते समय डंडी मारने, सोना चाँदी गायब करने, उत्तम वस्त्र चुराने और १०० से अधिक पशु हरण करने में प्राणदंड की शिक्षा दी जानी चाहिये ॥ ३२१ ॥

पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते ॥
शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ३२२ ॥

यदि कोई पचास पशु चुरावे तो उसका हाथ कटवा दे और यदि इससे भी कम चोरी की हो तो भी खोई हुई वस्तु के मूल्य से ११ गुणा अधिक दण्ड दे ॥ ३२२ ॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ॥
मुख्यानां चैवं रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥ ३२३ ॥

उत्तम काल में जन्मे हुए पुरुष को या कुलीन स्त्री या वैडूर्य अर्थात् हीरा को चुरानेवाले को प्राणदंड ही देना चाहिये ॥ ३२३ ॥

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥
कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥ ३२४ ॥

बड़े पशु जैसे हाथी घोड़ा गौ और उत्तम अस्त्र जैसे खड्ग और घृत तथा औषधियों के चुरानेवाले को अच्छा बुरा प्रयोजन देख कर राजा दंड दे ॥ ३२४ ॥

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदने ॥
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥ ३२५ ॥

जो ब्राह्मण की गौ चुरावे या बोझा ढोने के लिये जो ठाँठ गाय को नकेल पहनावे या पशुओं की चोरी के लिये तयार रहे ऐसे आदमी के पैर तुड़वा देना चाहिये ॥ ३२५ ॥

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ॥
दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥३२६॥
वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च ॥
मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥ ३२७ ॥
मत्स्यानां दक्षिणा चैव तैलस्य च घृतस्य च ॥
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ ३२८ ॥
अन्येषां चैवमादीनां मद्यानामोदनस्य च ॥
पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्‌ द्विगुणो दमः ॥३२९॥

सूत, मदिरा का बीज, गोमय दही दूध, मट्ठा टोकरी निमक, मट्टी के बर्तन, भस्म मछली, तेल घी मांस मधु, चमड़ा, खड्ग आदि से लेकर यावत् खाने पहनने की चीजें हैं इनको चुरानेवाले को जो वस्तु जाय उस वस्तु से दूनी कीमत जो हो उतना दण्ड करना चाहिये ॥३२६॥३२७॥३२८॥३२९॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ॥
अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पंचकृष्णलः ॥ ३३० ॥

फूल, हरा धान्य, वेलि वृक्ष आदि को चुरानेवाले पर पाँच कृष्णल (पाँच सिक्का) दंड करना चाहिये ॥ ३३० ॥

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥
निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥ ३३१ ॥

खेत की सीर में से धान चुरानेवाला यदि मालिक का सम्बन्धी हो तो ५० पण दंड दे और यदि वह सम्बन्धी न हो तो १०० पण दंड दे ॥३३१॥

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ॥
निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापव्ययते च यत् ॥ ३३२ ॥

जो वस्तु मालिक के पीछे ली जाती है वह चोरी है और सामने भी छिपा कर लेना चोरी है, पर यदि कोई मालिक के सामने जबर्दस्ती कोई वस्तु कह

चुन कर उठा ले जाय तो वह चोरी नहीं कही जा सकती और जो ऐसे मामले में ले जाने वाले तो चोरी की सजा ही होनी चाहिये ॥ ३३२ ॥

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ॥
तमाद्यं दण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद् गृहात् ॥३३३॥

जो मनुष्य घृत आदि संस्कार (शुद्ध) किये हुए द्रव्यों को अपने उपभोग के लिये चुराता है उसको राजा प्रथम श्रेणी का दंड देवे ॥ ३३३ ॥

येनयेन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ॥
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३३४ ॥

चोर चोरी करते समय जिस २ अंग से जैसे सेंध लगाने या हाथ से ताला खोलने या जिस प्रकार से धन पाने के लिये जिन जिन अंगों को उपयोग में लावे राजा उन्हीं को कटवा दे ॥ ३३४ ॥

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ॥
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥३३५॥

पिता, गुरु, मित्र, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित ये भी यदि अपने अपने धर्म में स्थित न रहें तो उनको भी राजा दंड दे ॥ ३३५ ॥

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ॥
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥ ३३६ ॥

जिस अपराध के लिये साधारण मनुष्य एक कार्षापण दंड के योग्य हो तो राजा को उसी अपराध के लिये हजार गुना दंड होना चाहिये। राजा अपने ऊपर किया हुआ दंड जल में फेंक दे अथवा ब्राह्मणों में वितरण कर दे ॥३३६॥

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ॥
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥ ३३७ ॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् ॥
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ॥ ३३८ ॥

[illegible] चोरी करने से अठगुना पाप लगता है

उसी प्रकार वैश्य को सोलह गुना और क्षत्रिय को बत्तीस गुना ब्राह्मण को चौंसठ गुणा या पूरा सौ गुणा वा एकसौ अट्ठाईस गुणा पाप लगता है ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ॥
तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥ ३३९ ॥

जिन वृक्षोंका मालिक कोई नहीं है उनके फल मूल और पुष्प, होम के लिये लकड़ी और गऊको खाने के लिये घास लाने में मनुजी के मतानुसार चोरी नहीं है ॥ ३३९ ॥

योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ॥
याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ॥ ३४० ॥

चोर के हाथ से जो ब्राह्मण धन लेने की इच्छा करता है, वह उसी चोर के समान दंडनीय है ॥ ३४० ॥

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ॥
आददानःपरक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति ॥ ३४१ ॥

ब्राह्मण यदि चला जा रहा हो और आस पास उसे भोजन न मिले और खेतमें से दो ऊख या मूली लेकर खावे तो वह दंडनीय नहीं है ॥ ३४१ ॥

असंदितानां संदाता संदितानां च मोक्षकः ॥
दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥३४२॥

दूसरे के पालित अश्व आदि पशुओं को जो बलात् अपने यहाँ बाँध लेवे या दूसरों के बँधे पशुओं को खोल कर उनका हरण करता है, वह चोर की सजा पाने योग्य है उसे चोरी के हलके भारीपन के अनुसार शारीरिक दण्ड भी देना चाहिये ॥ ३४२ ॥

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ॥
यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥३४३॥

इस प्रकार राजा चोरों को दण्ड देने से इस लोक में यश और परलोक में सुख को प्राप्त होता है ॥ ३४३ ॥

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ॥
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥ ३४४ ॥

जो सब राजाओं का अधीश्वर होने की इच्छा करता है और अक्षय सुख की जिसे कामना होती है वह यदि बल से किसी का घर जला डाले या धन हरण कर लेवे तो ऐसे साहसी को राजा क्षण भर भी न रक्खे ॥ ३४४ ॥

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः ॥
साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ३४५ ॥

झूठा चोर और दगाबाज मनुष्य की अपेक्षा अधिक पापी वह है जो साहस से काम करता है ॥ ३४५ ॥

साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः ॥
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ३४६ ॥

जो राजा अति साहसी मनुष्यों को क्षमा करता है वह शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है और राज्य की प्रजा उसकी वैरी हो जाती है ॥ ३४६ ॥

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ॥
समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥ ३४७ ॥

साहसी मनुष्यों से सब को कष्ट पहुँचता है अतः यदि वे दण्ड योग्य हों तो उनके मीठे वचन या धन के लालच में कभी फँसना न चाहिये। उन्हें निश्चय दण्ड देना चाहिये ॥ ३४७ ॥

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ॥
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥ ३४८ ॥

जहाँ धर्म का नाश होने की संभावना हो वहाँ ब्राह्मणों को शस्त्र धारण करना चाहिये और यदि आपत्काल उपस्थित होने से अपने धर्म का पालन न हो सके तो उस समय भी शस्त्रधारण करना चाहिये ॥ ३४८ ॥

आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च सागरे ॥
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ॥३४६॥

अपनी रक्षा के लिये और राज्य पर विपत्ति आने पर जो ब्राह्मण, गौ, स्त्री और विप्रो के लिये शस्त्र धारण कर किसी को मारता है तो वह दोषी नहीं है और न राजा उसको दण्ड ही दे सकता है ॥ ३४६ ॥

गुरुं वा बालवृद्धौ व ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥

गुरु बालक, वृद्ध वेदपाठी और बहुश्रुत ब्राह्मण को जो मारने के लिये कोई आता दिखाई दे तो ऐसे पुरुष को विना विचार किये ही मार दे ॥ ३५० ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्त मन्युमृच्छति ॥ ३५१ ॥

सब लोगों के साभने या एकान्त में जो किसी को मारने का अततायीपन करे तो उसको मारने में तनिक भी दोष नहीं है ॥ ॥ ३५१ ॥

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः ॥
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ३५२ ॥

पराई स्त्री के साथ संभोग करनेवाले को राजा कठोर दंड दे अर्थात् उसको होंठ, कान और नाक काट लेवे ॥ ३५२ ॥

तत्समुत्थो हि लोस्कय जायते वर्णसंकरः ॥
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥ ३५३ ॥

पराई स्त्री के संग मैथुन करने से वर्णसंकर संतान उत्पन्न होतो है और ऐसी संतान से धार्मिक जगत का नाश होता है ॥ ३५३ ॥

परस्या पत्नयारुषः पुरुषः संभाषां योजयन्रहः ॥
पूर्वमान्नारितो दोषः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥ ३५४ ॥

कोई पुरुष किसी की पराई स्त्री के साथ एकांत में अयोग्य वचन बोले और उपहासको प्राप्त हो तो वह कठोर दण्ड के योग्य है ॥ ३५४ ॥

यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ॥
न दोषं प्राप्नुयात्किञ्चिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥३५५॥

जो पुरुष किसी स्त्री की प्रार्थना अभिशाप आदि पर ध्यान नहीं देता और चार लोगों सम्मुख उस बात को कह देता है वह दोषी नही है ॥ ३५५ ॥

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ॥
नदीनां वापि सम्भेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥३५६॥

जो पुरुष जल भरने के मार्ग में, निर्जन देश में या वृक्ष लतायुक्त वन में किसी स्त्री से वार्तालाप करता है, पहले से उससे परिचित नहीं है, फिर भी वह हजार पण दंड के योग्य है ॥ ३५६ ॥

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ॥
सहखट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५७ ॥

माला चन्दन आदि से पर स्त्री को विभूषित करना या उसके आभूषणों को स्पर्श करना, या उसके समीप बैठना इसको संग्रहण कहते हैं और इसमें भी वही उपर्युक्त दण्ड है ॥ ३५७ ॥

स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया ॥
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५८ ॥

जो पुरुष एकान्त में परस्त्री का कुच-मर्दन करे अथवा किसी स्त्री के स्वयं स्पर्श करने से पुरुष चुप रह जावे तो भी वह संग्रहण ही है ॥ ३५८ ॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ॥
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ॥३५९॥

शूद्र यदि बिना इच्छावाली ब्राह्मणी से संसर्ग करे तो वह प्राणदंड का दोषी है। इसलिये चारो वर्णों को स्त्री की सदा अत्यन्त रक्षा करनी चाहिये ॥३५९॥

भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा ॥
संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥ ३६० ॥

भिक्षा मांगनेवाले, स्तुति करनेवाले आदि जनों को अपने लाभ (मतलब) के लिये पराई स्त्रियों से प्रीतिरहित होकर बोलना चाहिये ॥ ३६० ॥

न सम्भाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ॥
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥ ३६१ ॥

परस्त्री से कभी संभाषण न करे और न उससे यह भी आशा रखे। पति से वर्जित स्त्री से संभाषण करने में भी १६ मासे सुवर्ण का दण्ड दे ॥ ३६१ ॥

नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु ॥
मज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ॥ ३६२ ॥

पराई स्त्री के विषय मे जो कथन है वह नटिन या वेश्याओं के विषय में नहीं है क्योंकि उनके पुरुष स्त्रियों से ही अपनी आजिविका चलाते हैं और अन्य पुरुषों को बुलाकर अपनी स्त्रियों से एकांत कराते हैं ॥ ३६२ ॥

किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात्सम्भाषां ताभिराचरन् ॥
प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च ॥३६३॥

वेश्या नटिन आदि स्त्रियों के साथ एकांतवन में बात चीत करने वाले को थोड़ा सा दंड देवे ॥ ३६३ ॥

योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ॥
सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ॥ ३६४ ॥

जो इच्छा न करनेवाली कन्या के साथ मैथुन करता है वह ब्राह्मण के अलावा कोई हो वध करने योग्य है। पर जो पुरुष की इच्छा करती है उसके मैथुन करने से दोष नही होता ॥ ३६४ ॥

कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ॥
जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद् गृहे ॥ ३६५ ॥

जो कन्या उत्तम जाति के पुरुषको प्राप्त करती है उसे कुछ भी दण्ड नहीं हो पर जो नीच जातिके पुरुष का साथ करे उसे बन्द कर देना चाहिये ॥३६५॥

उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ॥
शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि ॥३६६॥

उत्तम कन्या के साथ संग करनेवाला नीच पुरुष वध करने योग्य है और समान जाति की कन्या के संग मैथुन करने से यदि उस कन्या का पिता धन से संतुष्ट हो तो देकर विवाह कर लेना चाहिये ॥ ३६६ ॥

अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानवः ॥
तस्याशु कर्त्ये अंगुल्यौ दण्डंचार्हति षट् शतम् ॥३६७॥

जो पुरुष जबर्दस्ती रोब के साथ कन्या की योनि में अंगुलि प्रक्षेप करे तो उसको अंगुलि कटवा दे और ६०० पण दण्ड दे ॥ ३६७ ॥

सकामां दूषयंस्तुल्यो नांगुलिच्छेदमाप्नुयात् ॥
द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसंगविनिवृत्तये ॥ ३६८ ॥

यदि कन्या इच्छावाली हो तो उस पुरुष को उपर्युक्त दण्ड न दे। किन्तु उसकी अत्यंत आतुरता प्रकट होने के कारण उसे २०० पण दण्ड दे ॥ ३६८ ॥

कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः ॥
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ॥३६९॥

जो कन्या किसी दूसरी कन्या को अंगुलि से दूषित कर देवे तो उसको २०० पण दण्ड देना चाहिये और दस बेंत लगाना चाहिये ॥ ३६९ ॥

या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति ॥
अंगुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा ॥३७० ॥

जो कोई स्त्री कन्या को अंगुलि निर्देश से दूषित करे उस स्त्री का सर मुड़ाकर उसकी गधे पर सवारी निकाले अथवा उसकी अंगुली कटवा दे ॥३७०॥

भर्तारं लंघयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ॥

तां श्वभिःखादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ ३७१ ॥

जो स्त्री अपने पिता भाई आदि लोगों के अभिमान पर अपने पतिकी आज्ञाकारिणी नहीं होती उसे राजा बहुत से मनुष्यों के सामने कुत्तों से नुचवावे ॥ ३७१ ॥

पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ॥
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥३७२॥

पापी, पर स्त्री-रत जार पुरुष को लोहे की गरम शैया पर सुलावे और ऊपर से इतनी लकड़ी छोड़ देवे कि वह भस्म हो जाय ॥ ३७२ ॥

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ॥
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ॥३७३॥

जो पुरुष केवल एक वर्ष से ही पर स्त्री के संग रमण करता हो तो उसे पहले कहे हुए दंडों से द्विगुणित दंड देना चाहिये। जो दुष्टा स्त्री के संग गमन करे और वर्ष हो जाय उसे भी इसी प्रकार दंड देना चहिये ॥ ३७३ ॥

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् ॥
अगुप्तमंगर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥ ३७४ ॥

शूद्र यदि भर्ता आदि द्वारा रक्षित स्त्री के साथ गमन करे तो उसका सर्वस्व राजा हर लेवे और यदि अरक्षित स्त्री के संग गमन करे तो उसका लिंगेंद्रिय कटवा दे ॥ ३७४ ॥

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्सम्वत्सरनिरोधतः ॥
सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्य मूत्रेण चार्हति ॥३७५॥

वैश्य यदि किसी ब्राह्मणी के संग वर्ष दिन पर्यन्त गमन करे तो राजा उसका सर्वस्व हर लेवे और क्षत्रिय यदि ऐसा करता हो तो हजार पण दंड दे और गधे के मूत्र से उसका सर मुड़वा दे ॥ ३७५ ॥

ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ ॥

वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥ ३७६ ॥

बिना रक्षित ब्राह्मणी के संग वैश्य क्षत्रिय मैथुन करें तो वैश्य को ५०० पण और क्षत्रिय को हज़ार पण दंड दे ॥ ३७६ ॥

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ॥
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ॥३७७॥

पति आदि द्वारा रक्षित ब्राह्मणी के संग मैथुन करनेवाले वैश्य या क्षत्रिय के सर्वस्व धन को हरण करले या कंठ दवा कर जला दे ॥ ३७७ ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दंड्यो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन् ॥
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः ॥३७८॥

रक्षित की हुई ब्राह्मणी के सङ्ग यदि कोई ब्राह्मण बलात् मैथुन करे तो उसे १००० पण दंड दे और इच्छा करनेवाली के साथ गमन करने से पांच सौ पण दंड दे ॥ ३७८ ॥

मौण्ड्यं प्राणांतिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ॥
इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणांतिको भवेत् ॥ ३७९ ॥

ब्राह्मण का सिर मुंडवा देना ही शास्त्र में उसको प्राणांतक देना कहा है और अन्यवर्णों को अपराध के अनुसार प्राणदण्ड देना या अंग विच्छेद करना बतलाया है ॥ ३७९ ॥

न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ॥
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥ ३८० ॥

पूर्णपापी ब्राह्मण को भी मारना नहीं चाहिये किन्तु उसे देश से निकलवा देना चाहिये ॥ ३८० ॥

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि ॥
तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् ॥ ३८१ ॥

ब्राह्मण के वध से अधिक बड़ा पाप कोई नहीं है इसलिये राजा कभी ऐसा करने का मनमें भी न लावे ॥ ३८१ ॥

वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वां क्षत्रियो व्रजेत् ॥
यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दंडमर्हतः ॥ ३८२ ॥

वैश्य यदि रक्षित क्षत्राणी के संग और क्षत्रिय यदि वैश्य स्त्री के साथ गमन करे तो बिना रक्षित ब्राह्मणी के संभोग में जो दण्ड बतलाया है वही इन दोनों को दिया जाय ॥ ३८२ ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दंडं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् ॥
शूद्रायां क्षत्रियविशोः सहस्रो वै भवेद्दमः ॥ ३८३ ॥

रक्षित की हुई वैश्य या क्षत्रिय स्त्री के संग यदि ब्राह्मण गमन करे तो उसे हजार पण दण्ड दे, उसी प्रकार जो शूद्र क्षत्रिया तथा वैश्या के संग गमन करे उसे भी हजार पण दण्ड दे ॥ ३८३ ॥

क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः ॥
मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥३८४॥

बिना रक्षित क्षत्राणी के संग गमन करनेवाला वैश्य पांच सौ पण दण्ड पाने योग्य है। और यदि क्षत्रिय अरक्षित वैश्या के साथ गमन करे तो उसे ५०० पण दण्ड दे और गधे के पेशाब से उसका सर मुड़वा दे ॥ ३८४ ॥

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ॥
शतानि पञ्च दण्डयः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम्॥३८५॥

अरक्षित क्षत्राणी या वैश्या के संग गमन करनेवाला ब्राह्मण पांच सौ पण दण्ड पाने योग्य है और यदि चांडाली के संग गमन करे तो उसे १००० पण दंड मिलना चाहिये ॥ ३८५ ॥

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ॥
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥ ३८६॥

जिस राजा के नगर में चोर नहीं है, जहाँ परस्त्रीगमन करनेवाला कोई नहीं है, न कोई अततायी है और न कोई कठोर बोलनेवाला है तो वह राजा इंद्रलोक में जाता है ॥ ३८६ ॥

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ॥
साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥ ३८७ ॥

चोर आदिकों को दबाकर रखनेवाला अपने साथी राजाओं में उत्तम कहाता है और संसार में यश को प्राप्त होता है ॥ ३८७ ॥

ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि ॥
शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतंशतम् ॥ ३८८ ॥

यदि यजमान (दाता) पवित्र तथा उत्तम ब्राह्मण को त्यागता है या जो ऋत्विग व्यर्थ ही अपने यजमान को त्यागता है तो ऐसी दशा में दोनों को १००-१०० पण राजा दण्ड दे ॥ ३८८ ॥

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ॥
त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥३८६॥

माता पिता स्त्री और पुत्र ये सब पालन करने योग्य हैं इनको जो बिना दोष त्यागता है; उसे राजा १०० पण दण्ड देता है ॥ ३८६ ॥

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्येविवदतां मिथः ॥
न विब्रूयन्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥ ३९० ॥

कोई राजा स्वार्थ के वश द्विजातियों के वादविवाद में यह न कहे कि अमुक ठीक है या नहीं ॥ ३९० ॥

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥
सांत्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत ॥ ३९१ ॥

जो जैसी पूजा करने योग्य है उसकी वैसी ही पूजा करनी चाहिये । ब्राह्मणों में यदि कुछ उचित अनुचित समझाने हों तो पहले उनका क्रोध शांत कर तब उनसे कुछ कहना चाहिये ॥ ३९१ ॥

प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशतिद्विजे ॥
अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥ ३९२ ॥

लगाकर उसे वजनी कर लावे अथवा अधिक सूत लेकर कम वजन का कपड़ा दे तो वह राजा को बारह पण दण्ड दे और सूत के मालिक को भी प्रसन्न करे ॥ ३९७ ॥

शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणः ॥
कुर्युरर्घं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत् ॥ ३९८ ॥

जो राज्य के करों को जानता है और क्रय विक्रय की वस्तुओं का दाम जानता है वह व्यापार में जो मुनाफा करे उसका बीसवाँ हिस्सा राजा को दे ॥ ३९८ ॥

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानिच ॥
तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः ॥ ३९९ ॥

राजा से सम्बन्धित जितने द्रव्य हैं जैसे घोड़े वगैरह इनको या दुर्भिक्ष के समय अन्न बाहर ले जाने की मनाही होने पर भी जो वैश्य ऐसा करे उसका सर्वस्व राजा हर लेवे ॥ ३९९ ॥

शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी ॥
मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ॥४००॥

जो वणिक राजस्व न देकर अन्याय मार्ग से खरीद बिक्री करते हैं अथवा अधिक कर देने के डर से धन-संख्या थोड़ी बतलाते हैं उनको राजा मामूली कर का अठगुना दण्ड दे ॥ ४०० ॥

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ॥
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥ ४०१ ॥

खरीदने वालों तथा वेचनेवालों को नुकसान न पहुँचे इसलिये माल आते ही यह देखना चाहिये कि यह कहाँ से आ रहा है, कहाँ जायगा, कितने दिनों से रखा हुआ है, इत्यादि ॥ ४०१ ॥

पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते ॥
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ॥ ४०२ ॥

बाजार में एक मुल्य कायम रखने के लिये राजा को उचित है हर पांचवें या हर पन्द्रहवें दिन सब वैश्यों को इकट्ठा कर सब की राय से मूल्य निश्चित कर दे ॥ ४०२ ॥

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ॥
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ४०३ ॥

सोना चाँदी आदि तौलने की वस्तुओं की जाँच हर छठे महीने राजा करे या चतुर पुरुषों से करावे ॥ ४०३ ॥

पणं यानं तरेदाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे ॥
पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥ ४०४ ॥

खाली गाड़ी पुल के पार जाय तो एक पण शुल्क राजा ले और बोझा लेकर उस पार जाने वाला मुसाफिर आधा पण देवे, गऊ, पशु वृद्ध और स्त्री से चौथाई कर लिया जाय ॥ ४०४ ॥

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः ॥
रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुमांसश्चापरिच्छदाः ॥ ४०५ ॥

बरतनों से भरी गाड़ी को पार ले जाने के लिये माल की कीमत के अनुसार किराया दिया जाय; यदि महसूल देने वाला दरिद्र हो तो उससे कुछ थोड़ा सा दण्ड ले ॥ ४०५ ॥

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् ॥
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥ ४०६ ॥

दूर नाव पर गमन किया जाय तो वहाँ वहाँ पर अवस्था के अनुसार कर लेना चाहिये ॥ ४०६ ॥

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ॥
ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे ॥ ४०७ ॥

दो मास की गर्भिणी स्त्री, सन्यासी, मुनि, ब्रह्मचारी इन लोगों से कर नहीं लेना चाहिये ॥ ४०७ ॥

यन्नावि किञ्चिद्दाशानां विशीर्येतापराधतः ॥
तद्दाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोंऽशतः ॥ ४०८ ॥

नौका में बैठनेवाले का जो कुछ नुकसान मल्लाह से हो जाय उसको सब मल्लाह मिलकर पूरा करें ॥ ४०८ ॥

एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ॥
दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः ॥ ४०९ ॥

उपर्युक्त दण्ड-विधान उस हालत में लिखा है जब कि केवल मल्लाह की ही लापरवाही से ऐसा हुआ हो, पर दैवी प्रकोप यदि हो जाय तो उस हालत में मल्लाह दंडनीय नहीं हैं ॥ ४०९ ॥

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च ॥
पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥ ४१० ॥

वैश्यों से राजा खेती बारी और रोजगार करावे और शूद्रों से द्विजाति की सेवा करावे, यदि वे ऐसा न करें तो राजा उनको दण्ड दे ॥ ४१० ॥

क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितौ ॥
बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन् ॥ ४११ ॥

आजिवीका से रहित जो क्षत्रिय या वैश्य हों उनको ब्राह्मण कुटिलता से रहित हो अपने घर में नोकरी देवे ॥ ४११ ॥

दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणःसंस्कृतान्द्विजान् ॥
अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥४१२॥

संस्कार किये हुए द्विजोंको जो ब्राह्मण अपना दास बना लेता है और अभिमान से अपने पैर दबवाता है उसे राजा ६०० पण दण्ड करे ॥ ४१२ ॥

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ॥
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥ ४१३ ॥

क्रीत दास या ग्राम दास इन्हीं से टहल या सेवा करावे क्योंकि ब्रह्माजी ने शूद्रों को ब्राह्मण का दासत्व करने के लिये ही उत्पन्न किया है ॥ ४१३ ॥

न स्वामिना निसृष्टोपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ॥
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥ ४१४ ॥

ब्राह्मण मालिक द्वारा त्यागा हुआ दास भी अपने दासत्व से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि उसका दासत्व स्वभावतः ही है ॥ ४१४ ॥

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजऽक्रीतदत्त्रिमौ ॥
पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥ ४१५ ॥

दास सात प्रकार के हैं –

(१) युद्ध में जीता हुआ (२) भोजन के वास्ते आया हुआ (३) दासी का पुत्र (४) मूल्य देकर खरीदा हुआ (५) परंपरागत दास (६) दण्ड के वास्ते आया हुआ दास (७) दूसरे का दिया हुआ ॥ ४१५ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ॥
यत्ते समधिगच्छंति यस्य ते यस्य तद्धनम् ॥ ४१६ ॥

स्त्री पुत्र दास ये अधन कहे गए हैं क्योंकि वे जो धन एकत्र करते हैं वह उन्हीं के मालिक का होता है ॥ ४१६ ॥

विस्रब्धं ब्राह्मणःशूद्राद् द्रव्योपादानमाचरेत् ॥
नहि तस्यास्ति किञ्चित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ॥४१७॥

ब्राह्मण उसी शूद्र का धन ले जिसके साथ उसका कोई संबंध नहीं है क्योंकि दास अपना आप मालिक तो है ही नहीं, उसका धन उसके मालिक का होता है ॥ ४१७ ॥

वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ॥
तौ हिच्युतो स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् ॥४१८॥

वैश्यों से वाणिज्य और कृषि कर्म तथा शूद्रों से सब वर्णों की सेवा राजा कराये क्योंकि इनके पथभ्रष्ट होने से सबको हानि पहुँचती है ॥ ४१८ ॥

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ॥
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च ॥ ४१९ ॥

राजा स्पष्ट रूपसे या छिपे छिपे सब बातों को देखता रहे। अपने अश्व आदि वाहनों और खजाने भी निरीक्षण करे ॥ ४१९ ॥

एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समापयन् ॥
व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥४२०॥

इस प्रकार सब व्यवहारों को सावधानी से पूर्ण करनेवाला राजा संपूर्ण पापों को दूर कर उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ४२० ॥

इति मनुस्मृतौ अष्टमोऽध्यायः ।

इति श्रीमनुस्मृति भाषाप्रकाशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः ॥
संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ १ ॥

अब स्त्री पुरुषों के एक साथ और अलग अलग रहने के सनातन धर्म-नियमों को कहते हैं ॥ १ ॥

अस्वतन्त्राः स्त्रियःकार्याःपुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ॥
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ॥ २ ॥

स्त्री सदा अपने पति के अधीन रहनी चाहिये और जो स्त्रियाँ रूप रस आदि में आसक्त हैं उनके पति उनको वश में रखें ॥ २ ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ३ ॥

बचपन में कन्या का पालन पिता करता है, युवावस्था में पति पालक होता है और बुढ़ापे में सन्तान, अतः आशय यही है कि स्त्रियाँ स्वाधीन न रहें ॥ ३ ॥

कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः ॥
मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ४ ॥

कन्या को ऋतुकाल प्राप्त होने के पहले किसी से विवाह करा देना उचित है, पति को भी स्त्री ऋतुमती होते ही उसको गृहण करना उचित है और पति के मर जाने या स्त्री को अपने संतान की रक्षा करना उचित है यदि ये लोग ऐसा न करें तो निन्दा के पात्र होते हैं ॥ ४ ॥

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ॥
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥

थोड़ी सी कुसंगति से भी स्त्रियों की रक्षा करे क्योंकि स्वाधीन होने से ये दोनों कुलों (पिता और पति कुलों) को भ्रष्ट करती है ॥ ५ ॥

इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् ॥
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥

सब वर्णों के लिये स्त्री रक्षण उत्तम धर्म कहा है इसको जानकर दुर्बल पुरुष भी अपनी स्त्रियों की रक्षा करें ॥ ६ ॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ॥
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥ ७ ॥

जो पुरुष यत्न से अपनी स्त्री की रक्षा करता है वह अपने कुल अपनी आत्मा, धर्म अपना चरित्र सब की रक्षा करता है ॥ ७ ॥

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ॥
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥

पति वीर्य के रूप में अपनी स्त्री में प्रवेश करता है और पुत्र रूप से उससे उत्पन्न होता है। जाया शब्द का अर्थ ही यह है ॥ ८ ॥

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ॥
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

स्त्री जैसे पुरुष का समागम करेगी उसी के अनुसार उसे संतान होगी अतः शुद्ध संतान के निमित्त यत्न से स्त्री की रक्षा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् ॥
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ १० ॥

कोई भी पुरुष हठ करके किसी स्त्री को रोक नहीं सकता। आगे कहे हुए मार्गों से स्त्री की रक्षा करना योग्य है ॥ १० ॥

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ॥
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य चेक्षणे ॥११॥

धन एकत्र करने और खर्च करने में, शारीरिक स्वच्छता के रखने में, पतिकी सेवा करने में तथा रसोई बनाने में, घरकी वस्तुओं को देख भाल करने में स्त्रीको लगा दे ॥ ११ ॥

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः ॥
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ता सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

केवल आज्ञा द्वारा रोकी हुई स्त्रियाँ भी रक्षित नहीं हैं। सुरक्षित वे ही हैं जो अपने आपको खूब अच्छी तरह पहचानती हैं ॥ १२ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ॥
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट् ॥१३॥

स्त्री के लिये छः बातें दूषणास्पद हैं —(१) मदिरा पीना (२) नीचों का साथ करना, (३) पति का वियोग (४) जहाँ तहाँ घूमना (५) कुसमय सोना (६) दूसरे के घर में रह जाना ॥ १३ ॥

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ॥
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १४ ॥

ऐसी स्त्रियाँ न उत्तम रूप को देखती हैं न अवस्था का विचार करती हैं, उनको तो केवल पुरुष चाहिये फिर वह चाहे जैसा क्यों न हो ॥ १४ ॥

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैःस्नेह्याच्च स्वभावतः ॥
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥ १५ ॥

पर पुरुष से समागन की इच्छा रखनेवाली स्त्री चंचलता के कारण स्नेह-रहित होती है और पति द्वारा रक्षित होने पर भी वह उससे छल करती है ॥ ५ ॥

एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् ॥
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥

ब्रह्मा जी की सृष्टि में सदा से स्त्रियों का स्वभाव ऐसा ही उद्धत रहा है इसलिये पुरुष इनकी यतन से रक्षा करें ॥ १६ ॥

शय्यासनमलङ्कार कामंक्रोधमनार्जवम् ॥
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥

शैय्या, आसन, अलंकार, काम क्रोध, कठोरता, द्रोह भाव और निंदित

आचार ये दोष स्त्रियों में सृष्टि के आरम्भ से ही प्रविष्ट हैं इसलिये इनकी यत्न से रक्षा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मो व्यवस्थितः ॥
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥१८॥

स्त्रियों का जातकर्म मंत्रों से नहीं है, श्रुति और स्मृति का भी इनको अधिकार नहीं है, जिन मंत्रों के जप से पाप दूर हों ऐसे मन्त्रों की ये अधिकारिणी नहीं हैं, खोटे स्वभाववाली हैं, अतः इनकी यत्न से रक्षा करना उचित है ॥१८॥

तथा च श्रुतयो बह्व्यो निगीता निगमेष्वपि ॥
स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥

व्यभिचार-तत्परता स्त्रियों का स्वभाव ही है और व्यभिचार की परीक्षा के अनेक वाक्य श्रुतियों में है पर इनमें निष्कृती अर्थात् प्रायश्चित्त संबन्धी जो श्रुति है उसको सुनो ॥ १९ ॥

यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता ॥
तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् ॥ २० ॥

यदि मेरी माता मानस व्यभिचार से भ्रष्ट हो अपवित्र हुई हो तो उसके दूषित रज को मेरे पिता ने शोधन किया यही प्रायश्चित्त दिखलाया है ॥ २० ॥

ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसा ॥
तस्यैष व्यभिचारस्य निह्नवः सम्यगुच्यते ॥ २१ ॥

स्त्री अपने पति के विषय में जो कुछ अप्रिय चिंतन करती है उसके इस मानस व्यभिचार का प्रायश्चित्त उसका पुत्र करे ॥ २१ ॥

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ॥
तादृग्गुणासा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ २२ ॥

जैसे गुणवाले पुरुष के साथ स्त्री विधियुक्त विवाही जाती है उसीके अनुसार वह हो जाती है, जैसे समुद्र में नदियाँ मिलती हैं ॥ २२ ॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ॥

शारङ्गीमन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥ २३ ॥

अक्षमाला नाम की स्त्री निकृष्ट योनिवाली थी पर वशिष्ठ के कारण वह पूज्या हुई उसी प्रकार चटका मंदपाल ऋषि के संग व्याही जाने से उत्तम भाव को प्राप्त हुई ॥ २३ ॥

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ॥
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥ २४ ॥

ये और अन्यान्य कई स्त्रियाँ अधमकुल में उत्पन्न होने पर भी अपने पतियों के गुणों के कारण उच्चता को प्राप्त हुईं ॥ २४ ।

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ॥
प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥

स्त्री पुरुष संबंधी यह लोकाचार सदा शुभ कहा है। अब इस लोक और परलोक में जिसका फल सुखदायी हो ऐसी संतान का धर्म सुनो ॥ २५ ॥

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ॥
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ २६ ॥

ये स्त्रियाँ बड़ी उपकारी, गर्भधारण करनेवाली, पवित्र, वस्त्र अलंकार आदि से पूजने योग्य, घरों की शोभा और लक्ष्मी के समान हैं ॥ २६ ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ॥
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ २७ ॥

पुत्र को जन्म देना, पश्चात् पालन करना अतिथि का सत्कार करना ये सब स्त्री के ही काम हैं और वही इसका कारण है ॥ २७ ॥

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ॥
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥ २८ ॥

स्त्री के अधीन ये बातें हैं–उत्तम संतान उत्पन्न करना, धर्मकार्य करना, सेवा शुश्रूषा करना, पति को संग में सुख देना, पितरों का उद्धार करना और अपने लिये स्वर्ग का द्वार खुला करना ॥ २८ ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥२६॥

जो स्त्री मन, वाणी और संपत्ति आदि से युक्त होने पर भी परपुरुष के संग व्यभिचार नहीं करती वह अपने पति के लोक को प्राप्त होती है और साध्वी कही जाती है ॥ २६ ॥

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्रीः लोकेप्राप्नोति निन्द्यताम् ॥
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ ३० ॥

जो स्त्री अन्य पुरुषों के साथ व्यभिचार करती है वह इस लोक में निन्दा को प्राप्त होती है तथा मृत्यु के पश्चात् सियारी के जन्म को पाती है ॥ ३० ॥

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ॥
विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥ ३१ ॥

पहले मुनि लोक और मनु आदि जो हो गए हैं उन्होंने पुत्र को उद्देश्य करके जो जगत के हित की बातें कहीं है, उनको सुनो ॥ ३१ ॥

भर्तुः पुत्रं विजानंते श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि ॥
आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ ३२ ॥

श्रुति में दो प्रकार के भर्ता कहे हैं (१) विवाहित और एक अविवाहित॥३२॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ॥
क्षेत्रबीजसमायोगात्सम्भवः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३ ॥

स्त्री खेत के समान है और पुरुष बीज के समान है अतः क्षेत्र और बीज के संबध होने से फल रुपी देहधारियों की उत्पत्ति होती है ॥ ३३ ॥

विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित् ॥
उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥ ३४ ॥

कहीं पुरुष का बीज प्रधान है और कहीं स्त्री का, पर जहाँ ये दोनों समान हों और पुरुष बीज का आधिक्य दिखाई दे और सन्तान उत्पन्न हो तो ऐसी उत्पत्ति श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ॥
सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥ ३५ ॥

बीज और स्त्री की योनि (क्षेत्र) इनमें प्रधानता बीज की है क्योंकि सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति बीज ही से होती है ॥ ३५ ॥

यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ॥
तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ ३६ ॥

जिस जाति का बीज योग्य समय में वर्षा द्वारा युक्त होकर उत्तम क्षेत्र में बोया जाता है उस क्षेत्र से उत्पन्न होनेवाली वस्तु उसी बीज के अनुसार होगी ॥ ३६ ॥

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ॥
न च योनिगुणा[illegible] [illegible]जं पुष्यति पुष्टिषु ॥३७॥

यह भूमि संपूर्ण भूतों की स[illegible] [illegible]ही गई है। किसी भी बीज में भूमि का असर नहीं पहुँचता किन्तु बीज अपने ही गुणों से बढ़ता है ॥ ३७ ॥

भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः ॥
नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥ ३८ ॥

एक ही जमीन में कृषि करने से समय में बोये हुए बीज अपने स्वभाव से अनेक रूप के होते हैं ॥ ३८ ॥

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः ॥
यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥ ३९ ॥

चावल, मूँग, तिल, उड़द, जौ लहसुन ऊँख आदि सब अपने २ बीज के अनुसार होते हैं ॥ ३९ ॥

अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ॥
उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥ ४० ॥

बोवे कुछ और पैदा करे कुछ सो तो हो नहीं सकता। जो बोया जाता है वही उत्पन्न होता है। यही बात मनुष्यों की भी है ॥ ४० ॥

एवं धर्मं विजानीमः प्राक् प्रजापतिनिर्मितम् ॥४६॥

ब्रह्मा जी के धर्म नियमों के अनुसार बेचने से या त्याग देने से स्त्री पति से अलग नहीं समझी जा सकती अर्थात् उसका पति धर्मनियमों के अनुसार बना रहता है ॥ ४६ ॥

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ॥
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥४७॥

श्रेष्ठ पुरुष जो है वे अपनी पैतृक सम्पत्ति आपस में एक ही बार बाँटते हैं कन्यादान भी एक ही वार करते हैं और गऊ आदि धन भी एक ही बार देते हैं ॥ ४७॥

यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च ॥
नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि ॥ ४८ ॥

जिस प्रकार गाय, घोड़ी, उँटनी, भैंस बकरी और भेड़ इनको क्रमात् उनके उनके जोड़े मिलने से संतान होती है पर वह उस उत्पादक की संतान नहीं कहलाती उसी प्रकार परस्त्री से संतान उत्पन्न करने से उत्पादक उसका भागी नहीं होता ॥ ४८ ॥

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः ॥
तेवै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् ॥४९॥

जो पुरुष क्षेत्राधिकारी नहीं हैं वे यदि अपने बीज को पराये के क्षेत्र में बो दें तो उत्पन्न हुए धान्य और तृण को पाने के वे अधिकारी नहीं हैं ॥ ४९ ॥

यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ॥
गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ॥ ५० ॥

यदि किसी के वृषभ से दूसरे की गौवों को सैकड़ों बछवे हों तो वे बछड़े गऊ के मालिक के होंगे न कि उस बैलवाले के ॥ ५० ॥

तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः ॥
कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम् ॥ ५१ ॥

जैसे गौ के स्वामी के वे बछड़े होते हैं वैसे ही परस्त्री में अपने वीर्य को स्थापित करनेवाला उस स्त्री के मालिक का फायदा करते हैं, उनको उस संतान से कोई लाभ नहीं ॥ ५१ ॥

फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा ॥
प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी ॥ ५२ ॥

जहाँ बीज और क्षेत्र का कोई नियम नहीं है, प्रत्यक्ष धन का अधिकार क्षेत्रवाले का ही दिखाई देता है, अतः बीज से क्षेत्र (योनि) अधिक है ॥ ५२ ॥

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते ॥
तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च ॥ ५३ ॥

जहाँ खेतवाले और बोनेवाले में आधोआध का समझौता होता है वहाँ बराबर हिस्सा देखने में आता है ॥ ५३ ॥

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥
क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥ ५४ ॥

वायु से या जल की प्रचुरता से यदि किसी के खेत में उत्तम फसल हो तो खेत का मालिक ही उस फसल का अधिकारी है न कि बोनेवाला ॥ ५४ ॥

एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च ॥
विहंगमहिषीणांच विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥ ५५ ॥

गाय भैंस बकरी भेड़ आदि की संतान के विषय में जैसा समझौता हो वैसा होता है ॥ ५५ ॥

एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम् ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि योषिता धर्ममापदि ॥ ५६ ॥

अब तक बीज और योनि की प्रधानता और अप्रधनता कही गयी। अब आगे आपत्काल के स्त्रियों के धर्म को कहेंगे ॥ ५६ ॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ॥
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥५७॥

बड़े भाई की स्त्री छोटे के लिये गुरु पत्नी के समान है और छोटे की स्त्री बड़े भाई के लिये पुत्रवधू के समान कही गयी है ॥ ५७ ॥

ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ।

पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ ५८ ॥

संतान के अभाव में या कुल के नाश के दृष्टि को छोड़ कर यदि छोटा बड़े और बड़ा छोटे की स्त्री से संभोग करे तो वह पतित हो जाता है ॥ ५८ ॥

देवराद्वासपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ॥

प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये ॥ ५९ ॥

संतान न होने से या उसका नाश होते जाने से स्त्री अपने देवर से या पति के सापिंड पुरुष के साथ संग कर एक सन्तान उत्पन्न करे ॥५९॥

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि ॥

एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥ ६० ॥

सन्तान के निमित्त विधवा स्त्री के साथ भोग करनेवाला मनुष्य शरीर में घृत लगाकर और मौन धारण कर रात्रि के समय भोग करे ॥ ६० ॥

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः ॥

अनिर्वृतं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥

कई दूसरे आचार्य एक संतानवाले को संतानरहित के समान मानते हैं और स्त्रियों को धर्म से दूसरा पुत्र उत्पन्न करने को कहते हैं ॥ ६१ ॥

विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि ॥

गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ॥ ६२ ॥

विधवा स्त्री में धर्मवत् जब गर्भ धारण हो जाये तब पश्चात् वे देवर और भावज आपस में गुरु और स्नुषा की तरह वर्तें ॥ ६२ ॥

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः ॥

तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥ ६३ ॥

यदि छोटा भाई बड़े भाई की स्त्री के साथ या बड़ा भाई छोटे भाई की स्त्री के साथ उपर्युक्त रीति से मौनव्रत धारण कर केवल एक बार संतान प्राप्ति के निमित्त विधियुक्त न वरते और बराबर संभोग करे तो दोनों पतित हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः ॥
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम् ॥६४॥

द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इनमें विधवा स्त्रियों का अन्य पुरुषों के संग नियोग न होना चाहिये क्योंकि परपुरुष के साथ समागम होने से धर्म नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ॥
न विवाह विधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ ६५ ॥

विवाह के मंत्रों में नियोग कहीं भी नहीं कहा है और न विवाह विधि में अन्य पुरुष के संग स्त्री का फिर विवाह करना ही कहा है ॥ ६५ ॥

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ॥
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥ ६६ ॥

विद्वान ब्राह्मणों में यह नियोग करना निन्दित है। वेन राजा के राज्य में यह धर्म मनुष्यों ने चलाया था ॥ ६६ ॥

स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा ॥
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥ ६७ ॥

यह वेन राजा संपूर्ण पृथ्वी का राजा था इसलिये राजर्षि कहलाया वह धार्मिक तो था ही नहीं; भ्रष्ट बुद्धि हो भाई की स्त्री के साथ रमण कर वर्ण संकर धर्म चलानेवाला हुआ ॥ ६७ ॥

ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम् ॥
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥ ६८ ॥

उस समय से लेकर जो पुरुष अज्ञान वश विधवा स्त्री का नियोग संतान

के वास्ते करता है श्रेष्ठ पुरुष उसको निंदित समझते हैं ॥ ६८ ॥

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ॥
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ ६६ ॥

जिस कन्या का वाग्दान हो जाय और पश्चात् पति मर जाय तो आगे बताए हुए विधान के अनुसार मृतक के छोटे भाई से विवाह कर दे ॥ ६६ ॥

यथाविध्यधिगम्येनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् ॥
मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥ ७० ॥

यह देवर इससे विवाह करे और सफेद वस्त्रों को धारण कर प्रत्येक ऋतु काल में संतान होने तक एक एक बार भोग करे ॥ ७० ॥

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ॥
दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥ ७१ ॥

एक को कन्या देने का वचन देकर फिर दूसरे को न दे अन्यथा वह देनेवाला असत्य भाषण का दोषी होता है ॥ ७१ ॥

विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् ॥
व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ॥ ७२ ॥

विधिवत् गृहण की हुई कन्या निंदिता हो तो उसको त्याग दे और उसी तरह वैधव्य लक्षणों से युक्त रोगिणी दूषित, अधिक अंगवाली अथवा छल से दी हुई कन्या सप्तपदी कर्म के पहले त्याग दी जा सकती है ॥ ७२ ॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् ॥
तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ॥ ७३ ॥

जो पुरुष दोषयुक्त कन्या को विना कहे दान देता है उस दुरात्मा का वह दान निष्फल कर दे अर्थात् उस कन्या को त्याग दे ॥ ७३ ॥

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः ॥
अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥ ७४ ॥

कार्यवान पुरुष परदेश जाते समय भोजन वस्त्र आदि का प्रबन्ध करके तब जाय क्योंकि अन्न आदि की पीड़ा के कारण शीलवती स्त्री भी दूषित हो जाती हैं ॥ ७४ ॥

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ॥
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥ ७५ ॥

पति जब परदेश में जाय तब स्त्री अपने शरीर की खूब सफाई न करे या दूसरे के घर न जाय। पति यदि विना बन्दोबस्त किए चला गया हो तो निन्दा-रहित कार्य जैसे सूत कातना आदि वृत्तियों से अपना निर्वाह करे ॥ ७५ ॥

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ॥
विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥ ७६ ॥

गुरु की आज्ञा मान कर यदि पति धर्म कार्य के लिये बाहर गया हो तो ८ वर्ष, या विद्या पढ़ने के लिये गया हो तो ६ वर्ष और अन्य स्त्री की कामना करके गया हो तो ३ वर्ष तक पति की राह देखे। पश्चात् जहाँ पति हो वहाँ चली जाय ॥ ७६ ॥

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः ॥
ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत् ॥ ७७ ॥

पति से द्वेष करनेवाली स्त्री को एक वर्ष पर्यन्त देखे यदि उसको पश्चात् भी यदि द्वेष करे तो धन अलंकार आदि जो कुछ उसे दिया हो छीन ले और उससे साथ संभोग न करे, केवल अन्न और वस्त्र देता रहे ॥ ७७ ॥

अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्त्तमेव वा ॥

सा त्रीन् मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥७८॥

जुआ खेलनेवाले या मद्यपी या रोग से पीडित अपने पतिकी जो स्त्री सेवा नहीं करती उसका धन वस्त्र और आभूषण छीन कर उसे तीन मास तक त्याग दे ॥ ७८ ॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम् ॥
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम् ॥७९॥

बावला (बेवकूफ) जाति से पतित, नपुंसक, बीजरहित, कुष्ठ रोगवाला ऐसा पति हो और उसके संग स्त्री प्रेम न करती हो तो वह त्याज्य नहीं है और न ऐसी अवस्था में उसका धन या उसके वस्त्रालंकार ही छीने जाने चाहिये ॥ ७९ ॥

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ॥
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नी च सर्वदा ॥८०॥

मदिरा पीनेवाली, दुष्ट व्यवहार करनेवाली, पतिके विरुद्ध आचरण करने वाली, व्याधि से पीडित, नौकरों को सताने वाली स्त्री अधिवेत्तव्या है अर्थात् उसके जीते जी दूसरी स्त्री से विवाह करने में कोई हरज नहीं है ॥ ८० ॥

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ॥
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ ८१ ॥

ऋतुमती होने के पश्चात् आठ वर्ष तक यदि पुत्र न हो तो उस स्त्री को वंध्या जाने, इसके जीते जी पति दूसरा विवाह स्त्री की अनुमति से कर सकता है। ऋतुमती होने के पश्चात् १० वर्ष के बीच संतान हो कर मर जाय तो भी पति दूसरा विवाह कर ले। अप्रिय वचन कहनेवाली और खोटी स्त्री का त्याग कर दूसरा विवाह करे ॥ ८१ ॥

या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ॥

सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥८२॥

जो पति का हित करनेवाली और सुशीला स्त्री रोगी हो जावे तो पति उसकी अनुमति से दूसरा विवाह करे, पर पहली स्त्री का अपमान न करे ॥ ८२ ॥

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात् ॥
सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥८३॥

पति के दूसरा विवाह करने पर पहली स्त्री उसके घर से भाग जाने लगे तो उसे रस्सी से बाँध कर रखना चाहिये। शांत होने पर उस स्त्री को उसके पिता के घर रख दे ॥ ८३ ॥

प्रतिपिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ॥
प्रेक्षासमाजंगच्छेद्वासादण्ड्याकृष्णलानि षट् ॥ ८४ ॥

यदि क्षत्रिय आदि की स्त्रियाँ पति द्वारा वर्जित होने पर कहीं विवाहादि में जाती हैं या मदिरा पीती हैं वह बड़े भारी समाज में घूमती है तो वे ६०० सोने के कृष्णल दण्ड देने की भागी है ॥ ८४ ॥

यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः ॥
तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च ॥८५॥

यदि द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये अपनी जाति की या पराई जाति की स्त्री से विवाह करें तो उनकी जाति के क्रम के अनुसार उनका मान वस्त्र आभूषण आदि से करे ॥ ८५ ॥

भर्तुःशरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम् ॥
स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन ॥ ८६ ॥

अपने पति के शरीर की शुश्रूषा, गरीबों को दान, धार्मिक कार्य अतिथि-सत्कार ये सब नित्य कर्म द्विजातियों की सजातीय स्त्रियाँ ही करें अन्य जाति की स्त्रियाँ न करें ॥ ८६ ॥

यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यया ॥
यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥८७॥

जो पुरुष अपनी सजातीय स्त्री समीप रहते, विजातीय स्त्री से सेवा शुश्रूषा कराता है वह उस चाण्डाल के समान है जो शूद्र द्वारा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होता है ॥ ८७ ॥

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ॥
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्या दद्याद्यथाविधि ॥८८॥

उत्तम कुल का, आचार से युक्त सुन्दर तथा सजातीय वर मिलने पर कन्या का यथाविधि विवाह कर दे ॥ ८८ ॥

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहेकन्यर्तुमत्यपि ॥
न चैवेनांप्रयच्छेत्तुगुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥

मूर्ख तथा गुणहीन वर को कन्या देने की अपेक्षा वह पिताके घर में ही आचार से रह कर मृत्यु को प्राप्त हो तो श्रेष्ठ है ॥ ८९ ॥

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ॥
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ९० ॥

जो कन्या अपने कुल से उच्च कुल में विवाह करना चाहे वह रजस्वाला होने पर भी तीन वर्ष तक ऐसे वर की खोज में रहे। यदि इस समय के पश्चात् अधिक गुणवाला वर न मिले तो समान गुण और समान जातिवाले वर के साथ विवाह कर ले ॥ ९० ॥

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ॥
नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति॥९१॥

पिता आदि की असावधानी से जिस कन्या का विवाह न हो सके यदि वह

उचित काल में स्वयं ही देख कर पति को प्राप्त करले तो वह दोषी नहीं है और न उसका पति ही दोषी है ॥ ९१ ॥

अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा ॥
मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत ॥९२॥

स्वयं अपना पति वरण करनेवाली कन्या पिता माता आदि के गहने जो हों उन्हें लौटा दे अन्यथा वह चोर समझी जायगी ॥ ९२ ॥

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ॥
स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥ ९३ ॥

रजस्वला कन्या से विवाह करनेवाला वर कन्या के पिता को शुल्क न दे क्योंकि ऋतुमती होने पर पिता कन्या का मालिक नहीं ॥ ९३ ॥

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ॥
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥

तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की कन्या और चौबीस वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की कन्या से विवाह करे ॥ ९४ ॥

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः ॥
तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥ ९५ ॥

दैवी मंत्रों को उच्चारण कर पति स्त्री को ग्रहण करता है इसलिये देवताओं द्वारा दी हुई उस कन्याका पोषण पति सदा करे ॥ ९५ ॥

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवाः ॥
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥ ९६ ॥

गर्भ ग्रहण करने के लिये स्त्रियाँ और संतान उत्पन्न करने के अर्थ पुरुष रचे गए हैं इसलिये वेद में स्त्री पुरुष का धर्म समान कहा है ॥ ९६ ॥

कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः ॥
देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥९७॥

जिस कन्या के विवाह की बात चीत हो रही हो उसका अभीष्ट वर यदि

मर जाय तो कन्या की अनुमति से उसे देवर को देना चाहिये ॥ ९७ ॥

आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददन् ॥
शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥ ९८ ॥

शास्त्र को न जाननेवाला शूद्र कन्या को देते हुए शुल्क न ले, शुल्क को लेनेवाला मनुष्य कन्या का गुप्त विक्रय करता है ॥ ९८ ॥

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः ॥
यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥९९॥

अच्छे लोगों में पहले भी ऐसा नहीं हुआ है न अब भी ऐसा होता है कि कन्या को एक घर को देकर फिर दूसरे से व्याही जाय ॥ ९९ ॥

नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ॥
शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम्॥१००॥

पहले भी कभी ऐसा सुना नहीं गया था कि मूल्य लेकर कोई अच्छा मनुष्य अपनी पुत्री को वेचता था ॥ १०० ॥

अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः ॥
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ १०१ ॥

मृत्यु पर्यंत भार्या अपने पति में धर्म अर्थ काम आदि के विषय में प्रीति रखे, यही स्त्री पुरुषों का श्रेष्ठ धर्म है ॥ १०१ ॥

तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ ॥
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम् ॥१०२॥

जिस स्त्री और पुरुष का आपस में धर्म से विवाह हुआ है, उनको इस प्रकार रहना चाहिये कि उनके धर्म अर्थ और काम आदि में विभिन्नता उत्पन्न न हो ॥ १०२ ॥

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः ॥
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥ १०३ ॥

यह स्त्री और पुरुष का आपस का प्रेमयुक्त व्यवहार कहा और संतान

प्राप्ति का विषय भी कहा। अब आगे सम्पत्ति विभाजन के नियम सुनो ॥१०३॥

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् ॥
भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥१०४॥

माता पिता की मृत्युके पश्चात् जितने भाई हों आपस में धन को बाँट लें। माता पिता के जीवित रहते पुत्रों का अधिकार नहीं है। यदि वे अपनी खुशी से जीते जी हिस्सा कर दें तो लड़के पा सकते हैं ॥ १०४ ॥

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ॥
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥ १०५ ॥

पिताके सम्पूर्ण धनको बड़ा बेटा लेवे और छोटा भाई भोजन वस्त्रादि लेवे अर्थात् जैसा पिता के साथ रहता था वैसाही बड़े भाई के साथ रहे ॥ १०५ ॥

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ॥
पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥ १०६ ॥

प्रथम पुत्रके जन्म होने से ही मनुष्य पुत्रवान कहलाता है, और पितरों के ऋण से उऋण हो जाता है। इसलिये बड़ा लड़का ही धन पाने योग्य है ॥१०६॥

यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते ॥
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥ १०७ ॥

जिस पुत्र के जन्म से मनुष्य पितरों के ऋण से उऋण होता है, और मोक्ष आदि को प्राप्त होता है वही धर्म से उत्पन्न समझा जाता है, बाकी सब पुत्र काम से उत्पन्न है ॥ १०७ ॥

पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः ॥
पुत्रवच्चापि वर्त्तेरञ्ज्येष्ठ भ्रातरि धर्मतः ॥१०८॥

बड़ा भाई छोटे भाई को पुत्र के समान माने और छोटा भाई भी उसे पिता तुल्य समझे ॥ १०८ ॥

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ॥
ज्येष्ठः ज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ॥ १०९ ॥

धर्म या अधर्म में पड़ कर ज्येष्ठ पुत्र ही उनको बढ़ाता या नाश करता है। धर्म से रहने वाला पुत्र संसार में पूजनीय है। और श्रेष्ठ पुरुष उसकी निंदा नहीं करते हैं ॥ १०६ ॥

यो ज्यष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः ॥
अज्येष्ठवृत्ति र्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बंधुवत् ॥११०॥

जो बड़ा भाई अपने छोटे भाइयों के साथ पिता की तरह उत्तम बर्ताव करता है वह पूज्य है, पर यदि वह ऐसा न करे तो वह अन्याय भाइयों के बराबर ही है ॥ ११० ॥

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया ॥
पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥१११॥

इस प्रकार बिना बँटवारा किये सब भाई एकट्ठा रहें या धर्म की इच्छा करके अलग अलग रहें तो धर्म की वृद्धि ही होगी ॥ १११ ॥

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् ॥
ततोऽधमध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥ ११२ ॥

बड़े भाई को पिता के धनका २० वाँ हिस्सा, बिचले को ४० वाँ हिस्सा और तीसरे को ८० वाँ हिस्सा और आधा जो बचे वह बराबर बाँट दिया जाय ॥ ११२ ॥

ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् ॥
येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥११३॥

बड़ा और छोटा पूर्वोक्त श्लोक के अनुसार भाग लें और मझला मध्यम भाग ले ॥ ११३ ॥

सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः ॥
यच्च सातिशयं किञ्चिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ॥ ११४ ॥

सम्पूर्ण वस्तुओं में जो श्रेष्ठ और अच्छी हों वह बड़ा पुत्र ले, गौ आदि पशुओं में जो उत्तम हो वह ले। यह सब गुणी पुत्र के लिये है न कि गुण-हीन लिये ॥ ११४ ॥

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ॥
यत्किंचिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम् ॥ ११५ ॥

पहले कहा है कि बड़ा पुत्र इस प्रकार अपना हिस्सा लेवे पर यदि उसकी मान वृद्धि के लिये छोटे भाई अपने में से कुछ उसे दें तो यह योग्य ही है ॥११५॥

एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत् ॥
उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ॥ ११६ ॥

इस प्रकार उपरोक्त कथन के अनुसार भाइयों के बराबर २ सिस्से दें जो बच जाय उसे आगे की व्यवस्था के अनुसार विभक्त करे ॥ ११६ ॥

एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः ॥
अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ११७ ॥

धर्म की व्यवस्था यों है कि एक हिस्सा अधिक अर्थात् २ भाग बड़ा पुत्र लेवे, और १॥ भाग मझला और बाकी सब एक एक सिस्सा पावें ॥ ११७ ॥

स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् ॥
स्वात्स्वादन्शाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः ॥११८॥

सब भाई अपने अपने भाग में से चौथाई हिस्सा अपनी बहनों को देवें। न देने से वे पतित हो जायँगे ॥ ११८ ॥

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ॥
अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥ ११९ ॥

हिस्सा बॉटने पर यदि गाय घोड़ा आदि पशु कुछ बच जायँ तो छोटे भाई उनको बेच कर हिस्सा न करे ; क्योंकि वह भाग बड़े भाई ही का है ॥ ११९ ॥

यवीयाज्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयादिति ॥
समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१२०॥

एक धर्म व्यवस्था यह भी है कि यदि छोटा भाई अपने बड़े भाई की स्त्री से धर्मार्थ संतान उत्पन्न करे तो वह पुत्र अपने चाचा के बराबर हिस्सा पावे ॥ १२० ॥

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ॥
पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् ॥ १२१ ॥

इस शंका के दूर करने के लिये कि बड़े भाई की स्त्री से होने वाला वह क्षेत्रज पुत्र भी पिता की तरह अधिक भाग वाला होगा यह निश्चय है कि वह क्षेत्रज पुत्र अप्रधान है ॥ १२१ ॥

पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः ॥
कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥१२२॥

यदि पहिली विवाहिता स्त्री का छोटा पुत्र हो और और दूसरी का बड़ा पुत्र हो तो वहाँ किस प्रकार विभाग किया जाय ॥ १२२ ॥

एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः ॥
ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ॥१२३॥

प्रथम विवाहित स्त्री का पुत्र छोटा होने पर भी वह बराबर का हिस्सा पावेगा ॥ १२३ ॥

ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद्वृषभषोडशाः ॥
ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ॥ १२४ ॥

पहली स्त्री से उत्पन्न पुत्र हो और उमर में भी सबसे बड़ा हो तो वह एक बैल और पन्द्रह गौ पावे और पीछे जे जन्मे हैं वे सब अपनी छोटाई बड़ाई के हिसाब से अपना अपना भाग लें ॥ १२४ ॥

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः ॥
न मातृतो ज्येष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥१२५॥

सम जाति अर्थात् अपनी जाति की स्त्री से उत्पन्न पुत्रों की छोटाई बड़ाई माता के क्रम से नहीं किन्तु छोटाई बड़ाई जन्म के अनुसार होती है ॥ १२५ ॥

जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् ॥
यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥ १२६ ॥

पहले होनेवाला पुत्र ही ज्येष्ठ है। यदि दो पुत्र एकट्ठा हों तो उनमें जिसने

पहले जन्म ग्रहण किया है। वह जन्म पहले होने से ज्येष्ठ है॥ १२६ ॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ॥
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् ॥ १२७ ॥

यदि किसी को पुत्र न हो और कन्या के विवाह के समय जामाता से कहे कि जो इस कन्या से पुत्र होगा वह मेरी श्राद्ध आदि और्ध्वदैहिक क्रिया करेगा ॥ १२७ ॥

अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः ॥
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥१२८॥

इसी विधान के अनुसार पूर्व में दक्ष प्रजापति ने अपने वंश की वृद्धि के लिये ऐसा ही किया था ॥ १२८ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥
सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥१२९॥

प्रसन्न आत्मा उस दक्ष प्रजापति ने वस्त्र गहने आदि से सत्कार कर दस कन्याओं को धर्म को दिया तेरह कश्यप को और सत्ताइस औषधियों के राजा अर्थात् चन्द्रमा को ॥ १२९ ॥

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ॥
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥ १३० ॥

जैसा अपना शरीर होता है वैसाही पुत्र भी होता है। जैसा पुत्र है वैसी ही कन्या है। इसलिये यदि पुत्री के रहते पिता पुत्रहीन मर जाय तो पिता की संपत्ति की अधिकारिणी वही पुत्री होगी ॥ १३० ॥

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ॥
दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ १३१ ॥

माता का धन पुत्र न होने पर पुत्री ही का होता है। पुत्रहीन नाना के धन की अधिकारी भी उसी लड़की का पुत्र होगा ॥ १३१ ॥

दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ॥
स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥१३२॥

बिना पुत्रवाले नाना के धन का मालिक वही दौहित्र हो और अपनी माता पिता और नाना के अर्थ दो २ पिण्ड वही प्रदान करे ॥ १३२ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ॥
तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥ १३३ ॥

धर्म से पौत्र और दौहित्र में भेद नहीं हैं क्योंकि उनके माता पिता एक ही से उत्पन्न हैं ॥ १३३ ॥

पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते ॥
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः॥१३४॥

मेरी पुत्री को जो पुत्र होगा वह मेरा ही होगा ऐसी अवस्था में पुत्र के पुत्र और पुत्री के पुत्रों में सम भाग विभाग करना चाहिये ॥ १३४ ॥

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन ॥
धनं तत्पुत्रिकाभर्त्ता हरेतैवाविचारयन् ॥ १३५ ॥

यदि पुत्री मर जाय और उसे सन्तान न हो तो उसका सब धन उसके स्वामी के पास रहता है ॥ १३५ ॥

अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सदृशात्सुतम् ॥
पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥ १३६ ॥

पौत्र होने ही से नाना पुत्रवान् कहलाता है। वही नाना को पिंड दे और उसके धन का अधिकारी हो ॥ १३६ ॥

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ॥
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥ १३७ ॥

पुत्र के जन्म से मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त होता है और पौत्र के जन्म से उस स्वर्गलोक में बहुत काल तक स्थित रह सकता है और उसके भी पुत्र अर्थात् प्रपौत्र के उत्पन्न होने से उसे स्वर्गलोक की गति मिलती है ॥ १३७ ॥

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः ॥
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ १३८ ॥

पुन्नाम जो नरक है उससे पिता का उद्धार करनेवाला पुत्र ही है, इसी लिये उसे ब्रह्मा ने पुत्र ही कहा है ॥ १३८ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ॥
दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत् ॥ १३९ ॥

पौत्र और दौहित्र में कोई फरक नहीं है इसलिये दौहित्र भी मनुष्य का परलोक में पौत्र की तरह तारण करता है ॥ १३९ ॥

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥१४०॥

पुत्री का पुत्र पहले माता को पिण्ड दे, फिर माता के पिता को और पश्चात् माता के पिता के पिता को ॥ १४० ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्त्रिमः ॥
स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥ १४१ ॥

औरस पुत्र धन की मालिक है। पर औरस पुत्र के रहते भी यदि पिता दूसरे सदाचारी स्वाध्यायी पुत्र को गोद ले तो धन का छठा भाग उसको मिलना चाहिये ॥ १४१ ॥

गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्त्रिमः क्वचित् ॥
गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥ १४२ ॥

दत्तक पुत्र अपने उत्पन्न करनेवाले पिता का धन नहीं पाता है। वह उस को पिंड देवे जिसके यहाँ वह गोद लिया गया है ॥ १४२ ॥

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् ॥
उभौ तौनार्हतो भागं जारजातककामजौ ॥ १४३ ॥

जो पुत्र अनुचित मार्ग से उत्पन्न हुआ है अर्थात् जार धर्म से जिसकी उत्पत्ति है और कामासक्त होकर पुत्रवती स्त्री अपने देवर से पुत्र प्राप्त करे तो ऐसा उत्पन्न बालक ये दोनों पिता के धन के भागी नहीं है ॥ १४३ ॥

नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः ॥

नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः ॥१४४॥

रखी हुई स्त्री से बिना विधान के जो बालक पैदा होता है वह अपने उत्पादक के धन का अधिकारी नहीं होता ॥ १४४ ॥

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ॥
क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः ॥१४५ ॥

परन्तु यदि वह विधान पूर्वक रखी हुई स्त्री से उत्पन्न हो तो वह अपने पिता के धन का अधिकारी होता है ॥ १४५ ॥

धनं योबिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च ॥
सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥१४६॥

भाई जो मृत्यु के पश्चात् जो उसके धन और उसकी स्त्री को ग्रहण करे वह विधिवत् उसमें पुत्र को उत्पन्न करे और अपने भाई का धन उसी पुत्र को दे ॥ १४६ ॥

या नियुक्तान्यतः पुत्रं देवराद्वाप्यवाप्नुयात ॥
तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥ १४७ ॥

जो गुरु आदि बड़े लोगों की अनुमति विना केवल कामासक्त होकर देवर या किसी दूसरे से पुत्र प्राप्त करती है उस पुत्र को पिता के धन का अनधिकारी कहते हैं और मनु आदि उसे वृथा जन्मा हुआ कहते हैं ॥ १४७ ॥

एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु ॥
बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥१४८ ॥

ऊपर जो विधान बतलाया है वह समान जाति की भार्या में उत्पन्न पुत्र के निमित्त बतलाया है। अब अनेक जातियों की स्त्रियों में एक ही पतिद्वारा उत्पन्न पुत्रों के विभाग को सुनो ॥ १४८ ॥

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ॥
तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधि स्मृतः ॥१४९॥

किसी ब्राह्मण के यदि चार स्त्रियाँ हो अर्थात् १ ब्राह्मणी, दूसरी क्षत्राणी

तीसरी वैश्या और चौथी शूद्रा, तो उनसे जन्मे हुए पुत्रों के विभाग की विधि इस प्रकार है ॥ १४९ ॥

कीनाशो गोवृषो यानमलंकारश्च वेश्म च ॥
विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ॥१५० ॥

गो, वृषभ, हाथी, अलंकार घर आदि जितने प्रधान अंश हैं, उनमें से सब से अच्छा अंश ब्राह्मणी के पुत्र को उद्धार के निमित्त दे और बाकी में आगे कही हुई विधि से बाँट दे ॥ १५० ॥

त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः ॥
वैश्याजःसार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ १५१ ॥

सम्पूर्ण धन में से ब्राह्मणी से उत्पन्न तीन भाग, क्षत्रिया से उत्पन्न दो भाग, वैश्य स्त्री का पुत्र डेढ़ भाग और एक भाग शूद्रा से उत्पन्न सन्तान लेवे ॥ १५१ ॥

सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च ॥
धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्मवित् ॥१५२॥

या संपूर्ण धन का दस भाग कर आगे कही हुई विधि से उसका विभाजन धर्म से करे ॥ १५२ ॥

चतुरोऽशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः ॥
वैश्यापुत्रो हरेद् द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥१५३॥

चार अंशों को ब्राह्मण लेवे, क्षत्रिया से उत्पन्न तीन अंश और वैश्य स्त्री से उत्पन्न दो अंश तथा शूद्र से उत्पन्न १ अंश का भागी हो ॥ १५३ ॥

यद्यपिस्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत् ॥
नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥ १५४ ॥

यदि ब्राह्मण की चारों वर्णों की स्त्रियों के पुत्र जीवित हों तो वहाँ शूद्रा के पुत्र का हिस्सा बाद में करे परन्तु यदि तीनों द्विजाति वर्णों की स्त्रियों के पुत्र न हों केवल शूद्रा ही पुत्रवती हो तो भी उसका पुत्र केवल दसवें हिस्से का हकदार है ॥ १५४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक् ॥
यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत् ॥ १५५ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य पति से शूद्रा को उत्पन्न हुआ पुत्र पिता के धन का भागी नहीं है। यदि पिता उसे दे दे तो उसका हो सकता है ॥ १५५ ॥

समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम् ॥
उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् ॥ १५६ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन वर्णों के पुत्रों को चाहिये कि वे अपने भाई को हिस्सा दें क्योंकि वह उद्धारकर्ता है और बाकी जो बचे वह बड़े भाई के साथ आपस में बाँट ले ॥ १५६ ॥

शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते ॥
तस्यां जाताःसमांशः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ॥१५७॥

शूद्र अपनी समान जाति की स्त्री से ही विवाह करे क्योंकि शास्त्रानुसार वह दूसरे वर्ण की स्त्री नही ग्रहण कर सकता। शूद्रास्त्री से उसे १०० पुत्र भी उत्पन्न हों तो वे सब समान भाग के अधिकारी होंगे ॥ १५७ ॥

पुत्रान् द्वादश यानाह नृणां स्वायम्भुवो मनुः ॥
तेषां षड् बन्धुदायदाः षडदायादबान्धवाः ॥ १५८ ॥

मनु जी ने जो बारह तरह के पुत्र कहे हैं उनमें से ६ धन गोत्र के अधिकारी हैं तथा पिण्डदान कर सकते हैं और बाकी ६ केवल तर्पण के अधिकारी हैं॥१५८॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ॥
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायदा बान्धवाश्च षट् ॥१५९॥

औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम गूढ़ोत्पन्न और अपविद्ध ये ६ पिता के धन के अधिकारी हैं और येही बांधव कहलाते हैं ॥ १५९ ॥

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ॥
स्वयंदत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ॥ १६० ॥

कन्या से उत्पन्न, सहोढ़ अर्थात् आपही से आया हुआ, क्रीत मोल लिया

हुआ और पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र ये छहो पिता के गोत्र और धर्म को प्राप्त होनेवाले नही है पर बांधव ही कहलाते हैं ॥ १६० ॥

यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरञ्जलम् ॥
तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरंस्तमः ॥ १६१ ॥

जैसे हरे जल में मामूली कमजोर नाव खेनेवाला दुख को प्राप्त होता है, उसी प्रकार क्षेत्रज आदि पुत्रों के कारण परलोक के दुःख में कुछ भी कमी नहीं हो सकती, इससे यह सिद्ध हुआ कि ये औरस के समान नहीं है ॥१६१॥

यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ ॥
यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद् गृह्णीत नेतरः ॥१६२॥

निपुत्रीक यदि दूसरे की स्त्री में पुत्र उत्पन्न करे तो वह पुत्र दोनों पिताओं के धन का मालिक है और धर्म से दोनों को पिंड देने योग्य है। पर यदि क्षेत्रज पुत्र के पश्चात् औरस पुत्र उत्पन्न हो तो क्षेत्रज और औरस दोनों पिता के धन के भागी है पर जो धन जिसके पिता का हो वही उसे ले सकता है ॥ १६२ ॥

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ॥
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ॥ १६३ ॥

एक औरस पुत्र ही पिता के धन का मालिक है और क्षेत्रज आदि अनुचित मार्ग से उत्पन्न पुत्र केवल अन्न और वस्त्र पाने योग्य है ॥ १६३ ॥

षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात् ॥
औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा ॥ १६४ ॥

औरस पुत्र पिता के धन को प्राप्त कर तब उसमें से पाँचवाँ या छठा हिस्सा क्षेत्रज आदि को देवे ॥ १६४ ॥

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ ॥
दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥ १६५ ॥

औरस और क्षेत्रज पुत्र पिता के धन के भागी है और बाकी दत्तक आदि जो दस पुत्र हैं वे क्रम से धन को प्राप्त करनेवाले हैं ॥ १६५ ॥

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धियम् ॥
तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ १६६ ॥

अपनी जाति की स्त्री से विधियुक्त विवाह कर जो पुत्र उत्पन्न होता है वही औरस है और यही पुत्र उत्तम तथा उसकी उत्पत्ति श्रेष्ठ है ॥ १६६ ॥

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा ॥
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥ १६७ ॥

पति मर जाय, या नपुंसक हो या और किसी भयंकर रोग से पीड़ित हो ऐसे की स्त्री में जो विनियोग पूर्वक पुत्र उत्पन्न करे तो वह पुत्र क्षेत्रज कहलाता है ॥ १६७ ॥

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रामापदि ॥
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥ १६८ ॥

माता पिता आपस की सम्मति से आपत्काल में भी प्रीतियुक्त हो संकल्प करके जिस पुत्र को जन्म देते हैं वह दत्रिय पुत्र कहलाता है ॥ १६८ ॥

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ॥
पुत्रंपुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥ १६९ ॥

जिसे लड़का गोद लेना हो वह अपनी जाति का होना चाहिये तथा उसके गुण दोषों की पूरी जानकारी रहनी चाहिये। ऐसे पुत्र का नाम कृत्रिम है ॥ १६९ ॥

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः ॥
स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥ १७० ॥

यदि घर में रहनेवाली किसी स्त्री के पुत्र उत्पन्न हो और यह पता न लगे कि किस से पैदा हुआ है, उस हालत में वह पुत्र उसी स्त्री के पति का समझा जायगा ॥ १७० ॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ॥
यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ॥ १७१ ॥

माता पिता द्वारा त्यागा हुआ या इनकी मृत्यु के पश्चात् आप्तजनों द्वारा त्यागा हुआ पुत्र यदि कोई गोद ले तो वह अपविद्ध कहलाता है ॥ १७१ ॥

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ॥
तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥१७२॥

पिता के घर में विना व्याही कन्या जिस पुत्र को गोपन रूप से जन्म देती है वह पुत्र जिसके साथ विवाह होने को होता है उसी का होता है और उसे कानीन कहते हैं ॥ १७२ ॥

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती ॥
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ॥ १७३ ॥

गर्भवती या जिसके गर्भ मालूम नहीं होता ऐसी कन्या किसी से व्याही जाने पर जो उसे पुत्र होता है वह विवाह करनेवाले पति का होता है और उसे सहोढ़ कहते हैं ॥ १७३ ॥

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात ॥
स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ॥ १७४ ॥

यदि कोई किसी को गोद ले और उसे उसके माता पिता के पास से खरीद ले तो वह पुत्र मोल लेनेवाले का है ॥ १७४ ॥

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ॥
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ १७५ ॥

पति द्वारा त्यागी हुई या विधवा स्त्री पति के पीछे दूसरे पुरुष की स्त्री होकर जिस पुत्र को उत्पन्न करती है वह पौनर्भव पुत्र कहा गया है ॥ १७५ ॥

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ॥
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ १७६ ॥

अक्षत योनि वाली स्त्री यदि दूसरे का आश्रय ले तो पौनर्भव पति के साथ वह फिर विवाह योग्य है और यदि कुमार पति को छोड़ दूसरे का आश्रय लेकर पुन उसके पास लौट आवे तो भी कुआर भर्ता के साथ वह पुनः विवाह-संस्कार के योग्य है ॥ १७६ ॥

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ॥
आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयं दत्तस्तु स स्मृतः ॥१७७॥

जिसके माता पिता मर गए हों या जो अपने माता पिता को वैर के कारण त्याग देता है, वह स्वयं दत्त पुत्र कहता है ॥ १७७ ॥

यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् ॥
स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥ १७८ ॥

विवाहित शूद्रा में कामवश होकर जो ब्राह्मण सन्तान उत्पन्न करता है वह जीता ही मुरदे की समान है और उसे पारशव कहते हैं ॥ १७८ ॥

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ॥
सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १७९ ॥

जो शूद्रा की दासी को पुत्र हो दासी अपने ही ऐसा पुत्र प्राप्त कर ले तो वह विवाहित स्त्री के पुत्र की तरह शास्त्र की धर्म मर्यादा के अनुसार समान भाग पानेवाला होता है ॥ १७९ ॥

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान् ॥
पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥ १८० ॥

इन क्षेत्रज आदि ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न करने की विधि का और और सपुत्र द्वारा श्राद्ध आदि होने की विधिका लोप न हो इस लिये मुनियों ने इसका प्रतिपादन किया ॥ ८० ॥

य एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः ॥
यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥ १८१ ॥

इन क्षेत्रज आदि पुत्रों की उत्पत्ति और सपुत्र के प्रसंग में कहीं है वे जिसके बीज से उत्पन्न हुए हैं उसीके पुत्र हैं क्षेत्रवाले के नहीं ॥ ८१ ॥

भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् ॥
सर्वास्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ १८२ ॥

मनुजीका कथन है कि यदि माता पिताके कई पुत्र हो और उनमें से एक

ही ससंतान हो तो सारे भाई उस पुत्रके कारण पुत्रवान समझे जाँयेगे ॥१८२

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ॥
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥ १८३ ॥

उसी प्रकार, यदि किसीको कई स्त्रियाँ हैं और उनमें से एक भी पुत्रवती है तो सब स्त्रियाँ उसके कारण पुत्रवती कहलावेंगी ॥ १८३ ॥

श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान् रिक्थमर्हति ॥
बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥ १८४ ॥

औरस आदि पुत्रोंमें पूर्व पुत्रके न होनेसे अधम पुत्र धनको लेवें और जो बहुत से पुत्र समान होवें तो संपूर्ण बराबर धन के भागी हैं ॥ १८४ ॥

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ॥
पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च ॥ १८५ ॥

जिस मनुष्य के औरस पुत्र न हो और क्षेत्रज हो तो उस मनुष्यके धनको लेनेवाले न सोदर भाई हैं न पिता है, किन्तु औरस पुत्रके अभावमें क्षेत्रज पुत्रही पिताके धनको लेनेवाले हैं। जिसके पुत्र न होवे उसके धनको पिता या भ्राता लेवे ॥ १८५ ॥

त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते ॥
चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥ १८६ ॥

पिता आदि तीन पुरुषोंके याने पिता, दादा, बड़ा दादा इनको तर्पणमें जल देवे और इन्हीं तीनों को पिंड देवे। चौथा पिण्ड जलका देनेवाला है ॥ १८६ ॥

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत् ॥
अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥१८७॥

सपिंडके मध्यमें जो औरस पुत्र है वह पिताके धनका मालिक और औरस के अभावमें पुत्री या पुत्रिका पुत्र धन का भागी है दौहित्रके भी न होनेमें क्षेत्रज आदि ग्यारह पुत्र क्रमसे धनके अधिकारी है इनके अभावमें अपनी स्त्री संपूर्ण धनकी अधिकारी है इनके पीछे समानोदक आचार्य लेवे या शिष्य ही लेवे ॥१८७॥

सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः ॥
त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ॥१८८॥

सब संबन्धी आदिके अभावमें ब्राह्मण धनके भागी हैं परन्तु वे ब्राह्मण तीनों वेदोंको पढ़े हुए और शरीरको बाहर भीतरसे शुद्ध रखनेवाले और इंद्रियोंको जीतनेवाले हों इस प्रकारके मरे हुए धनवाले पुरुषका श्राद्धादिक धर्म नष्ट नहीं होता है ॥१८८॥

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ॥
इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नपः ॥ १८९ ॥

शास्त्रकी मर्यादा है कि ब्राह्मणका धन राजाको न लेना चाहिये और अन्य वर्णोंका अर्थात् क्षत्रियादिकोंका धन पहिले कहे हुए मनुष्योंके अभावमें राजा लेवे ॥ १८९ ॥

संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ॥
तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ॥ १९० ॥

बिना पुत्रवाले पुरुषकी भार्या समान गोत्रवाले पुरुषसे बड़ोंकी अनुमत्ति से नियोग धर्म करके पुत्रको उत्पन्न करे और अपने पतिका धन पुत्रको समर्पण करे ॥ १९० ॥

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने ।
तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः ॥ १९१ ॥

जिस स्त्री का पति मर जावे और उसे एक पुत्र हो और वह स्त्री यदि पतिके धनको ले दूसरे पौनर्भव पतिसे पुत्रको जन्म देवे और वह पति भी मर जावे तब उसके भी धन को ग्रहण कर लेवे तब दोनों लड़के जवान होवें और धन के लिये झगड़ा करें तब जो धन जिसके पिता का हो वही उस उस धनको ले दूसरा न ले ॥ १९१ ॥

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः ॥
भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ॥ १९२ ॥

माता के धन को माता के पीछे संपूर्ण भाई और बिना ब्याही बहन समान

भाग में लेवे और अपने अपने भागको ले लेवें और व्याही हुई बहन को धनके अनुमान से उनके सम्मान के लिये देवें ॥ १६२ ॥

यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः ॥
मातामह्या धनात्किञ्चित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥ १६३ ॥

जो उन पुत्रियोंकी विना विवाही पुत्री हैं उनको भी अर्थात् यथा योग्य यत् किंचित् धन मातामही अर्थात् नानीके धन से दिया जाय ॥ १६३ ॥

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ॥
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥

विवाहके समय में जो पिता द्वारा अग्निके समीप दिया है वह अध्यग्नि स्त्रीधन है और जो गौनेंमें धन दिया है वह अध्यावाहनिक है, और जो भर्त्ताने अपने प्रीतिहेतु कर्म में दिया है और स्त्रीके भाईने या पिता माताने दिया है ऐसा छ प्रकारका यह स्त्री धन कहा है ॥ १६४ ॥

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ॥
पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥ १६५ ॥

विवाह पीछे पति कुलसे या पिता कुलसे जो धन स्त्रीको प्राप्त होता है और जो प्रसन्न होके पतिने दिया है वह धन भर्त्ता के जीते यदि स्त्री मर जावे तो उसके पुत्रीका है ॥ १६५ ॥

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्वसु ॥
अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ॥ १६६ ॥

ब्राह्म, दैव, आर्ष, गांधर्व, प्राजापत्य, इन पांच विवाहों जो छः प्रकारका धन स्त्रियोंको प्राप्त होता है वह निपुत्रिक मरनेवाली स्त्रीका धन पतिका है, यही मनु आदिकोंने कहा है ॥ १६६ ॥

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ।
अप्रजायामतीताया मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ १६७ ॥

जो धन स्त्रीको आसुरी, राक्षसी, पैशाची आदि विवाहोंमें प्राप्त होता है वह धन विना पुत्रके उत्पन्न हुए मरनेवाली स्त्रीके मातापिताओंका है ॥ १६७ ॥

स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन ।
ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥१९८॥

यदि ब्राह्मणको चारों वर्णोंकी स्त्री होवें और उन स्त्रियोंमें जो क्षत्रिय आदि वर्णोंकी विना पुत्र और विना पतिवाली स्त्री मर जावे तो उस स्त्रीके पिताके दिये धनको उस स्त्रीकी सापत्न कन्या अर्थात् ब्राम्हणी सौतिकी कन्या ग्रहण करे और सापत्नेयी कन्याके अभावमें कन्याका पुत्र लेवे ॥ १९८ ॥

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात् ।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥ १९९ ॥

बहुत सामान्य कुटुम्ब धनसे भार्या आदि स्त्रियोंके अलंकारका धन चोरना न चाहिये और अपने भर्त्ताकी आज्ञाके विना पतिके धनसे भी चुराकर संचय न करे, क्योंकि वह स्त्रीका धन नहीं है ॥ १९९ ॥

पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारोद्धृतो भवेत् ।
न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥ २०० ॥

भर्त्ताके जीते पतिकी आज्ञासे जो अलंकार स्त्रियोंने धारण कर रक्खा है उस अलंकारको पतिके मरे पीछे धनको बांटने के समय पुत्र आदि नहीं बाँट सकते यदि बाँटते हैं तो पतित होते हैं ॥ २०० ॥

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ।
उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥ २०१ ॥

नपुँसक पतित जात्यंध वधिर उन्मत्त जड़ मूक और जो कुष्ठ रोगी हो या पागल हो इत्यादि ये सब पिताके धनके भागी नहीं हैं, किन्तु भोजन वस्त्रके भागी हैं ॥ २०१ ॥

सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ।
ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥ २०२ ॥

संपूर्ण इन क्लीव आदिकोंको पिताका धन लेनेवाले बुद्धिमान् मनुष्यको भोजन वस्त्र देना योग्य है और जो नहीं देता है वह पतित होता है याने पापी होता है ॥ २०२ ॥

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन ।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति ॥ २०३ ॥

नपुन्सक आदिकोंका विवाह करना अयोग्य है,यदि किसी प्रकार नपुन्सकादिकोंकी विवाहकी इच्छा होवे तो नपुंसकके क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न होनेसे तिस नपुंसकके भाईयोंके पुत्र नपुन्सकके धनके भागी है ॥ २०३ ॥

यत्किञ्चित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति ।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालितः ॥ २०४ ॥

पिताके मरनेके पीछे सम्पूर्ण धनका विभाग न कर यदि बड़ा भाई अपने भागमे कुछ अधिक धन ले तो उस धनमें विद्यावान् छोटे भाइयोंका भाग है अन्योंका नहीं है ॥ २०४ ॥

अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत् ।
समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ॥ २०५ ॥

संपूर्ण भाइयोंका खेती और व्यापारसे जो धन होता है उस धनमें सब भाइयोंका समान भाग है ॥ २०५ ॥

विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् ।
मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ २०६ ॥

जो धन विद्यासे मिला हो और मैत्री धन जो मित्रतासे मिला हो, औद्वाहिक जो विवाहमें वरको मिला हो, मधुपर्कमें जो मिला हो इत्यादि धन जो जिसको मिला है वह धन उसीका है ॥ २०६ ॥

भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा ।
स निर्भाज्यः स्वकादंशात्किञ्चिद्दत्त्वोपजीवनम् ॥ २०७ ॥

जो राजाकी नौकरी आदि कम करके धनको संचय करता है और भाइयोंके साधारण धनकी इच्छा नहीं करताहै फिर भी भाइयोंके बापको धनमेंसे किंचित् धन उसे देना योग्य है क्योंकि न्यारा करनेसे उसके पुत्रादिक कभी कालांतरमें धनके लिये विवाद न कर सकेंगे ॥ २०७ ॥

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् ।

स्वमीयहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति ॥ २०८ ॥

पिताके धनको नष्ट न कराता हुआ जो अपने श्रमसे धनको कमाता है वह अपने कमाये धनको न देनेकी इच्छा करने पर भाइयोंको नहीं दे । यदि इच्छा हो तो दे ॥ २०८ ॥

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ।
न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥ २०९ ॥

पिता अपने धनको यदि किसीको देकर लेनेको समर्थ न हो और पुत्र अपनी शक्तिसे उस धनको ले लेवे तो फिर उस अपने संचय किये धनको न देनेकी इच्छा करता हुआ पुत्रोंको न देवे ॥ २०९ ॥

विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि ।
समस्तत्र विभागः स्याज्जैष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥२१०॥

पहिले एक वार सोद्धार निरुद्धार वा धनको बांटके फिर संम्पूर्ण भाई जो धनको मिलाके साथ रहते हैं यदि फिर वे विभाग करें तो समान भाग करना चाहिये, वड़ेको अधिक नहीं देना चाहिये ॥ २१० ॥

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः ॥
म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ॥ २११ ॥

जिन भाइयोंमें कोई भाई विभागके समय में संन्यास लेके अपना भाग न ले या मर जाय तो उसका हिस्सा लोप नही होता ॥ २११ ॥

सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम् ॥
भ्रातरो ये च संसृष्टाः भगिन्यश्च सनाभयः ॥ २१२ ॥

किन्तु सहोदर भाई और सहोदरा वहन ये सव इकट्ठे होके उसके भागको समान करके वांट लेवें ॥ २१२ ॥

यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन् यवीयसः ॥
सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियंतव्यश्च राजभिः ॥२१३॥

जो वड़ा भाई लोभ से छोटे भाइयोंको ठगाता है वह अपने वड़ेपन से रहित हो जाता है और सोद्धारको भी लेने योग्य नहीं है उसे राजा

दण्ड दे ॥ २१३ ॥

सर्वं एकविकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ॥
न चादत्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥२१४॥

जो संपूर्ण भाई द्यूत याने जूआं और वेश्याका संग इत्यादिक विकर्मों में आसक्त रहनेवाले हों तो वे पिताका धन लेने योग्य नहीं हैं और न छोटे भाइयोंको न देकर बड़ा भाई जमाकर ले कि मैंने तो दिया ॥ २१४ ॥

भ्रातृणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ॥
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन ॥ २१५ ॥

जो सब भाई पिता के साथ रहते हुए धन को विना बांटे यदि धनसंचय करने को सब साथही उत्थान करें याने परदेश को जावें तो ऐसी अवस्था में विभाग कालमें किसी पुत्रकी अधिक धन पिता न दे ॥२१५॥

ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ॥
संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह ॥ २१६ ॥

जो पिता अपने जीवित कालमें ही पुत्रोंकी इच्छा देखके विभाग कर देवे और पीछे पिताके और पुत्र उत्पन्न हो जावे तो वह पुत्र पिताके मरे पीछे पित के धनको लेवे और जिन पुत्रोंके भागकर दिये थे उन्होंने वह धन फिर पिता के धन में मिला दिया है तो फिर उस पुत्रको उन भाइयोंसे पिता के मरे पीछे समान भाग मिलना चाहिये ॥ २१६ ॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ॥
मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥ २१७ ॥

जिस पुत्रके संतान न हो उस पुत्र के धन के हिस्से को माता ले और माता के मरने के बाद पिता की माता लेवे याने दादी लेवे ॥ २१७ ॥

ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि ॥
पश्चाद्दृश्येत यत्किञ्चित्तत्सर्वं समतां नयेत् ॥ २१८ ॥

जब पिताने ऋण और धन ये सब शास्त्रकी विधिसे विभाग करके पुत्रोंको दे दिये हों और उसके पीछे करजा या धन विना जाने बांटने के समय रह

गया हो उस संपूर्ण का सब भाई समान भाग ले लेवें ॥ २१८ ॥

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः ।
योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥ २१९ ॥

वस्त्र वाहन-आभूषण आदि वस्तु हिस्सा करने करने के पहिले जो जिसने भोगी हैं वे उसीकी हैं । उसका विभाग नहीं करना चाहिए परन्तु यह थोड़े मोलकी वस्तुका क्रम है। बहुत मोलका विभाग कर लेवे। स्त्रियोंका पकाया हुआ अन्न आदि बांटनेको अयोग्य है । दासी आदि, योग क्षेम याने मंत्री पुरोहित आदि और गौ आदिकोंका मार्ग इन सबका विभाग नहीं करना चाहिये ऐसे मनु आदिकोंने कहा है ॥ २१९ ॥

अयमुक्तो विभागो वः पत्राणां च क्रियाविधिः ।
क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥ २२० ॥

यह क्षेत्रज आदि पुत्रोंके धनके हिस्सेका विभाग करनेका प्रकार कहा है । अब द्यूत व्यवस्थाको सुनो ॥ २२० ॥

द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत ॥
राजान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ २२१ ॥

द्यूत अर्थात् जूआ, समाह्वय याने जानवर पक्षी आदिके लड़ाने से हार जीत करनेवालों को राजा अपने राज्यसे निकाल दे क्योंकि ये दोनों दोष राजाओंके नाश करनेवाले हैं ॥ २२१ ॥

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ ॥
तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ २२२ ॥

जूआ और समाह्वय अर्थात् पक्षीआदिकोंकी लड़ाई से हार जीत करना यह प्रत्यक्षमें चोरी है । इन द्यूत समाह्वयके दूर करनेमें राजा यत्न करे ॥ २२२ ॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ॥
प्राणिभिः क्रियते यस्तु सविज्ञेयः समाव्हयः ॥ २२३ ॥

विना पक्षियोंकी लड़ाईके जो हार जीत की जाता है वह लोगोंमें द्यूत

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् ॥
आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः ॥२२९॥

क्षत्रिय वैश्य शूद्र जातिमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य यदि निर्धनतासे दण्ड देने को समर्थ न हों तो अपने अपने कर्म करके दण्ड देवें याने नौकरी करके पूराकर देवे और ब्राह्मण शनैः शनैः देवे अर्थात् ब्राह्मणसे नौकरी न करावे ॥ २२९ ॥

स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ॥
शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥ २३० ॥

स्त्री बालक उन्मत्त वृद्ध दरिद्री रोगी इनोंको राजा बेंत लगावे ॥ २३० ॥

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ॥
धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ॥२३१॥

अदालत में मुकद्मेवालोंके मुकद्मे करनेको जो नियुक्त हैं वे यदि धनके आधीन होकर कामवालोंके कामोंको बिगाड़ देते हैं सो उनका सर्वस्व राजा लेकर उनको निर्धन कर देवे ॥ २३१ ॥

कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।
स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ॥२३२॥

राजाकी झूठी मोहर करनेवाला और मंत्रियोंको दुख देनेवाला और स्त्री ब्राह्मण बालकको मारनेवाला, वैरीसे प्रीति करनेवाला, ऐसे ऐसे मनुष्योंको राजा मरवा देवे ॥ २३२ ॥

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत् ॥
कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्भूयो निवर्तयेत् ॥ २३३ ॥

जहां कहीं करजा लेनेमें जो मुकद्मा शास्त्रव्यवस्थासे निर्णय करके किया जावे और सजा ठीक हो गई हो तो फिर उस मुकद्मे को पुनः न करे ॥ २३३ ॥

अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा ॥
तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् ॥ २३४ ॥

आमात्य अर्थात् मंत्री अथवा प्राड्विवाक याने मुकद्मा करनेवाला हाकिम जो

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ॥
ईशः सर्वस्व जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥२४५॥

महापातकी के दण्ड–धन का स्वामी वरुण है और राजाओं को दण्ड देनेवाला प्रभु है। जैसे वेदों का पार जाननेवाला ब्राह्मण संपूर्ण जगतका स्वामी है इस लिये प्रभु होने से ब्राह्मण और वरुण ये दोनों–दण्ड धन के लेने को योग्य हैं ॥ २४५ ॥

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम् ॥
तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः ॥२४६॥

जिस देश में महापातकी के धन को राजा नहीं ग्रहण करते हैं उस देश में परिपूर्ण काल तक मनुष्य जीते हैं और बड़ी आयुवाले होते हैं ॥ २४६ ॥

निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक् ॥
बालाश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते ॥ २४७ ॥

वैश्यों द्वारा धान्यादि शस्य बोए हुए पृथक् २ उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ऐसे राजाकी प्रजा जन्मती है, अकालमें बालक नहीं मरते हैं और कोई विकार भी नहीं होता है ॥ २४७ ॥

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ॥
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥ २४८ ॥

अपनी इच्छा से ब्राह्मणों को पीड़ा देनेवाले शूद्र को नाना प्रकार के बहुत क्लेश देकर राजा मरवा देवे ॥ २४८ ॥

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ॥
अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ॥ २४९ ॥

जो मनुष्य मारने योग्य नहीं है उस मनुष्यों के मारने में जो अधर्म होता है उतना ही अधर्म मारने के योग्य मनुष्य छोड़ने में है। शास्त्र की रीति से दंड देनेवाले को धर्म होता है इससे पापी को दण्ड देना अच्छा है ॥ २४९ ॥

उदितोयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः ॥
अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥ २५० ॥

अठारह तरह के ऋण याने करजा लेने आदि व्यवहारों में आपस में विवाद करते हुए अर्थी और प्रत्यर्थियोंके कार्यका यह निर्णय कहा गया है ॥२५०॥

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः ॥
देशानलब्धान्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ॥२५१॥

इस कहे हुए प्रकार के धर्म से निर्णय को करता हुआ राजा अपनी प्रजा के अनुराग से वहुत देशों का राज प्राप्त करेगा और प्राप्त देशों का अच्छी प्रकार से पालन करेगा ॥ २५१ ॥

सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ॥
कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ २५२ ॥

शस्य आदि से संपन्न जो देश है उसमें अच्छे प्रकार आश्रित होकर और वहाँ किला बना कर चोररूपी कंटकों को दूर करने में सदा उत्तम यत्न करे ॥ २५२ ॥

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ॥
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥ २५३ ॥

श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा करने से और अति साहस के नाश करने से या शिक्षा देने से प्रजा पालन में तत्पर होनेवाले राजा स्वर्ग को जाते हैं इससे चोररूपी कंटकों के नाश में राजा यत्न करे ॥ २५३ ॥

अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ॥
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥ २५४ ॥

जो राजा चोरों को दण्ड न देते हुए छठा हिस्सा राज्य कर का लेता है उस राजा के राज्य में बसनेवाले मनुष्य असंतुष्ट हो जाते हैं और वह स्वर्ग को भी नहीं प्राप्त होता है ॥ २५४ ॥

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ॥
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ॥ २५५ ॥

जिस राजा की भुजाओं के बल से राज्य में बसनेवाले मनुष्य चोर आदि

के भय से निर्भय रहते हैं उस राजा की प्रजा नित्य वृद्धि को उसी प्रकार प्राप्त होती है जैसे जल के सींचने से वृक्ष बढ़ते हैं ॥ २५५ ॥

द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् ॥
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥ २५६ ॥

दूत है नेत्र जिसके ऐसा राजा दोनों प्रकारसे पराये धनके हरनेवाले चोरों को खोजे-एक प्रगट दूसरे अप्रकट ॥ २५६ ॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ॥
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥ २५७ ॥

उन चोरोंमें जो अनेक प्रकार की दुकानोंसे अनुचित प्रकारके परधन को हरते हैं वे प्रकट चोर हैं जो वनमें छिपकर श्रेष्ठ पुरुषों को मारकर गुप्त धनको लेते हैं वे गुप्त चोर है ॥ २५७ ॥

उत्कोचकाश्चोपधिका वञ्चका कितवांस्तथा ॥
मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह ॥ २५८ ॥

जो मुकदमेवालेसे घूस लेकर कामको बिगाड़ देते हैं वे उत्कोचक कहाते हैं और औपधिक उन्हें कहते हैं कि जो भय दिखाकर धनवालेसे धन लेते हैं और जो किसीको धन मंगलादि को लोभ देकर ठगते हैं वे ठग और पाखंडी भद्र उन्हें कहते हैं कि जो हृदय के पापी हैं और अच्छे होकर धर्म को ठगते हैं ॥ २५८ ॥

असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः ॥
शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥ २५९ ॥

जो दूसरे के लिखे हुये के अच्छे बुरेको जानते हैं, महामात्र अर्थात् हस्तीके पढ़ानेवाले और वैद्य ये दोनों असम्यक् करनेवाले और शिल्पी, मनुष्यको वश करनेमें निपुण जैसे वेश्या स्त्री इन सबोंको प्रगट ठग जाने और जो ब्राह्मणके वेशको धारण करनेवाले शूद्र आदि हैं इन को भी राजा ठग जाने ॥ २५९ ॥

एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाँल्लोककण्टकान् ॥
निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः ॥ २६० ॥

पहले कहे वञ्चकोंको प्रकट संसारके कण्टकरूप जाने और अन्य जो श्रेष्ठ

पुरुषोंके रूपको धारण करके निगूढ अर्थात् गुप्त विचरते हैं और जो अधम पुरुष हैं उन सबको कड़ी सजा देकर राजा अपने वश में करे ॥२६०॥

तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ।
चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत् ॥ २६१ ॥

उन पूर्वोक्त वंचकोंको जो गुप्त आचरण करते हैं उनके कर्म आचरण और उनकी गुप्त जगहों को खोज कर राजा अपने वशमें करे और उन्हें खूब कठिन दण्ड दे ॥ २६१ ॥

तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ॥
कुर्वीत शासनं राजा सम्यक् सारापराधतः ॥ २६२ ॥

ऐसे गुप्त और प्रकट चोरों को संसार में प्रकट करके उनके चौर्य आदि कर्मों को देखकर अपराधके अनुसार और उनके धन और शरीर सामर्थ्यकी अपेक्षाके अनुसार राजा दण्ड दे ॥ २६२ ॥

नहि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ॥
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥ २६३ ॥

जिनकी बुद्धि पापों में है, जो दुष्ट-पुरुषोंके आचरण कर पृथ्वी में विचरते हैं उन चोरोंको दंडके विना पापकर्मसे दूर करने में कौन समर्थ है। इससे उनको दंड देना श्रेष्ठ है ॥ २६३ ॥

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयः ॥
चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥ २६४ ॥

सभा, प्रपा अर्थात् में जलका प्याऊ वेचनेका घर, वेश्या स्त्रीका घर मदिरा और अन्नोंके वेचनेके स्थान, चौराहा, प्रसिद्ध वृक्षोंकी जड़, जनसमूहोंके स्थान, चौराहा आदि और देखने भालने की जगहों में इन्हें खोजे ॥ २६४ ॥

जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ।
शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥ २६५ ॥

जीर्ण धर्मशाला, अरण्य वन, शिल्पी जनोंके घर, शून्य मकान, ग्राम आदिके घने बगीचे ॥ २६५ ॥

एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥ २६६ ॥

इस प्रकारके स्थानों में राजा वेल वृक्ष आदिकों में एकांत स्थित होनेवाले और पैदल विचरनेवाले अपने जसूसों से और सिपाही वगैरोंसे चोरोंका निवारण करे। ऐसे स्थानोंमें विशेष करके चोर छिपे रहते हैं ॥ २६६ ॥

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ।
विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥ २६७ ॥

उनकी सहायता करनेवाले और उनके पीछे चलनेवाले वा अनेक प्रकारके कर्मोंको करनेवाले, पहले स्वयं चोरकी वृत्ति करनेवाले, अत्यन्त निपुण ऐसे जसूसों के द्वारा राजा उन चोरोंका पता लगावे ॥ २६७ ॥

भक्ष्यभोज्योवदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ।
शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥ २६८ ॥

वे जसूस उन चोरोंको खानेपीने के वहानें से अथवा हमारे देशमें उत्तम ब्राम्हण है उसके दर्शन करेंगे ऐसे दर्शनके वहानेसे अथवा कुश्ती आदिके बहाने से लाकर राजाके आगे पेश करादें ॥ २६८ ॥

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये ।
तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान् ॥ २६९ ॥

जो चोर वहाने से पकड़ जाने की शंका को जानकर न आवें और यदि उन जसूसों के मारने के वास्ते वे सावधान हो जायँ तो राजा उनको जबर्दस्ती से पकड़ कर उनके भाई बन्धु मित्र पुत्र आदि सब को कुटुम्ब समेत मरवा देवे ॥ २६९ ॥

न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः ॥
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥ २७० ॥

धार्मिक राजा द्रव्य हरना, लूट मारपीट वगैरह दोष का निश्चय करके चोरों को न मरवावे किन्तु द्रव्य आदिकोंकी चोरी की सावूती देखकर उनको निस्संदेह मरवा देवे ॥ २७० ॥

ग्रामेष्वति च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ॥
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥ २७१ ॥

ग्रामोंमें जो कोई चोरोंको जानकर उनको भोजन आदि देते हैं और उनके योग्य बरतन देते हैं तथा उनको अपने घरों में छिपाते हैं उनको भी राजा मरवा डाले ॥ २७१ ॥

राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांचैव चोदितान् ॥
अभ्याघातेषु मध्यस्थान् शिष्याच्चौरानिव द्रुतम्॥२७२॥

राज्यकी रक्षामें नियुक्त रहनेवाले अर्थात् पुलिस आदिके आदमी और सीमापर रहनेवाले सीपाही वगैरह बागी होकर या क्रूर चोरोंके उपदेशमें मध्यस्थ होवें उनको भी राजा शीघ्रही चोरोंके समान दण्ड देवे ॥ २७२ ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ॥
दण्डेनैव तमत्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥ २७३ ॥

जो ब्राह्मण एकके यज्ञ आदि कराके दूसरे को दान आदि धर्म बतलाकर उन प्रतिग्रहोंको लेते हैं ऐसे धर्मकी आजीविकासे जीनेवाले और अपने धर्मसे भ्रष्ट ब्राह्मणोंको राजा दण्ड देकर पीड़ा देवे ॥ २७३ ॥

ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने ॥
शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥२७४॥

डाकू आदिकोंसे ग्रामके लूटनेमें और पुल आदिकोंके लूटनेमें, मार्गमें चोरको देखने पर जो वहाँके निकट रहनेवाले मनुष्य अपनी शक्ति अनुसार रक्षा नहीं करते हैं उनको राजा उनके असबाब सहित अपने देशसे निकाल देवे ॥ २७४ ॥

राज्ञः कोषापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ॥
घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥ २७५ ॥

राजा अपना खजाना हरनेवालो को या हुक्म के प्रतिकूल चलनेवालो को और शत्रुओं को, राजा के संग वैर बढ़ानेवालो को कसूर के अनुसार उनकी जीभ नाक आदि काट कर अनेक प्रकार के दंडों से ताड़न करे ॥ २७५ ॥

संधिं छित्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥
तेषां छित्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ॥२७६॥

जो चोर रात्री में दिवाल फोड़के चोरी करते हैं राजा उनके हाथों को कटवा के फिर उनको पैनी शूली में लटकवा देवे ॥ २७६ ॥

अंगुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ॥
द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥ २७७ ॥

जो चोर वस्त्र में बँधे हुए सुवर्ण आदि की गाँठ को काट लेते हैं पहली बार पकड़ने में उनकी अंगुली कटवा दे और दूसरी बार पकड़ने में उनके हाथ पैर कटवा दे और तीसरी बार उनको कहीं पकड़े तो फांसी देवे ॥ २७७ ॥

अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ॥
संनिधातृंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥ २७८ ॥

गांठ काटने और चोरी करनेवालों को जानकर जो मनुष्य अग्नि देते हैं वा भोजन देते हैं वा शस्त्र देते हैं अथवा जो उनको रहने के वास्ते मकान देते हैं वा उस चोरी के धन को जो रख लेते हैं उनको भी राजा चोर की तरह ही दंड देवे ॥ २७८ ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ॥
यद्वापि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥ २७९ ॥

जो तलाव बावडी आदि जलाशयों, पुल या और किसी बाँध को तोड़वा देता है उसको जल में डुबो कर मरवा देवे और जो यदि उस तुड़वाये हुएको फिर से बनवा देवे तो उसको उत्तमसाहस संज्ञक पहले कहा हुआ दण्ड देवे ॥ २७९ ॥

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् ॥
हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥ २८० ॥

राजा के खज़ाने के मकानों को अथवा शस्त्रों के मकानों को अथवा देवताओं के मंदिरों को अथवा विनाश करनेवाले जनों को अथवा हाथी घोड़ा रथ हरण करनेवालों को राजा शीघ्रही मरवा देवे ॥ २८० ॥

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ॥
आगमं वाप्यपा भिद्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥२८१॥

जो कोई पुरुष प्रजा के वास्ते पहले किसी बनाये हुए सब जलशयादि का नाश कर देता है वह वध के योग्य है और जो तलाव में जाते हुए जल को रोकता है वह प्रथम साहस दण्ड पाने के योग्य है ॥ २८१ ॥

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ॥
स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत ॥२८२॥

रोग के विना जो पुरुष राजमार्ग में शौच कर देता है वह दो पण दण्ड दे और मलको शीघ्र ही उठा डाले ॥ २८२ ॥

आपद्गतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा ॥
परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥२८३॥

व्याधिवाला पुरुष, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री, बालक ये दण्ड देने को योग्य नहीं हैं किन्तु उन पर गुस्सा अवश्य करना चाहिये। उस जगह को शुद्ध करवा लेना चाहिये, ऐसी शास्त्र की मर्यादा है ॥ २८३ ॥

चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः ॥
अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ २८४ ॥

कायशल्य आदि सब प्रकार की चिकित्सा करनेवाले वैद्य जो अच्छा इलाज न करते हों तो उन्हें दण्ड देना योग्य है। गौ अश्व आदि पशुओं के खराब इलाज करनेको प्रथम साहस दण्ड देवे और मनुष्यों के खराब इलाज करने में मध्यमसाहस दण्ड देवे ॥ २८४ ॥

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ॥
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥ २८५ ॥

प्रतिमा और लकड़ी आदिकों की छोटी मूर्तियों, ध्वजा, नदी, कुवा, आदि की छकड़ी इनकी प्रतिमाओं को तोड़नेवाला पुरुष इन सबको फिर से बनवा देवे और पाँच सौ पण ५०० दण्ड देवे ॥ २८५ ॥

अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ॥

मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ २८६ ॥

श्रेष्ठ द्रव्यों में दूषित द्रव्य मिला कर उनको दूषित करने में और विना छेद की हुई मणि आदिकों के फोड़ने में और मोती आदिकों को खराब छेदने में प्रथम साहस दण्ड देवे ॥ २८६ ॥

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ॥
समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥ २८७ ॥

बराबर के मूल्य देनेवाले को जो घटिया बढ़िया चीज देने का व्यवहार करता है अथवा जो समान मूल्य के द्रव्य को देकर, अर्थात् किसी चीज को देकर किसी से घटा बढ़ाके मूल्य लेता है वह मनुष्य प्रथम साहस वा मध्यम साहस दण्ड पाने योग्य है ॥ २८७ ॥

बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत् ॥
दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः ॥ २८८ ॥

राजा बंधन बेड़ी या और मामूली सज़ा देने के मकानों को मार्ग में बनवावे जहां पाप करनेवाले उन विकृत दुःखित पुरुषों को सब लोग देख सकें ॥२८८॥

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ।
द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ २८९ ॥

राजाके कोट की दीवालको तोड़नेवाला या खाहीको भरनेवाला या उसके दरवाजोंको तोडनेवाले पुरुषको राजा शीघ्रही अपने देशसे निकलवा देवे॥२८९॥

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ।
मूलकर्मणि चानाप्तेः कृत्यासु विविधासु च ॥ २९० ॥

संपूर्ण अभिचारों में अर्थात् शास्त्रोक्त मारण मंत्र यंत्र होम आदि, घायलके कर्तव्योंमें और किसीको मोहसे धनग्रहणके वास्ते वशीकरणमें तथा अनेक प्रकार के उच्चाटन आदि कर्मोंमें दोसौ २०० पण दण्ड देवे और जो इन कामोंमें मरण हो जावे तो करनेवालेको खूनीकी सजा देवे ॥ २९० ॥

अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च ।
मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम् ॥ २९१ ॥

जो न जमनेलायक बीजको अच्छा बताकर बेचता है और जो खराब बीजको सबसे अच्छा कहकर बीजको वेचता है, जो आदि मर्यादको तोड़ता है उसके नाक कान आदि काटनेके योग्य हैं ॥ २९१ ॥

सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः ॥
प्रवर्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः ॥ २९२ ॥

सब ठगोंमें अत्यंत पापवाला जो सुनार कांटेसे तौले हुए सुवर्ण में मेल मिलाकर के उस सुवर्णको अन्याय से हर लेवे उसका कसूर देखके संपूर्ण शरीर शस्त्रसे काट डाले या टुकड़े बना देवे ॥ २९२ ॥

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥
कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ २९३॥

हल, कुश आदि कृष्यमाण भूमिद्रव्योंके हरनेमें, शास्त्रोंके हरनेमें वा औषधों के हरनेमें राजा कालकी और प्रयोजन की अपेक्षा देख कर दण्ड देवे ॥ २९३ ॥

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ॥
सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ २९४ ॥

राजा मंत्री राजाका नगर, राज्य, देश, खजाना दण्ड, अर्थात् हाथी योद्धा पियादे, मित्र ये सात प्रकृति कहाती हैं। ऐसे सात अंगोंवाला राज्य कहाता है ॥ २९४ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ॥
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत् ॥ २९५ ॥

इन सात राजप्रकृतियोंमें पूर्वोक्त प्रकृतियाँ पिछली प्रकृतिके नाश होनेसे पहली प्रकृतियोंको अत्यंत दुःख होता है उसके अभावमें राज्यको इस क्रमसे जानो ॥ २९५ ॥

सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत् ॥
अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किञ्चिदतिरिच्यते ॥ २९६ ॥

इस राज्यके सप्ताङ्ग में अर्थात् सात अंगों में यतीके प्रसिद्ध त्रिदण्डकी तरह कोई अधिक नहीं है : वैसेही अन्योन्य आपसके गुणोंकी अपेक्षा होने से इन प्रकृतियो में कोई अधिक नहीं है ॥ २९६ ॥

तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्ग विशिष्यते ॥
येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यत्ते ॥ २६७ ॥

जिन जिन कृत्योंमें जिस जिस अंगसे जो जो कार्य सिद्ध होता है वही अंग उस कार्यमें श्रेष्ठ है और दूसरे अंगसे उस कार्यकी सिद्धि न होने से एकही विशिष्ट अंगकी प्रधानता है ॥ २६७ ॥

चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम् ॥
स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥ २६८॥

सप्तम अध्यायमें कहे हुए जासूसोंसे अथवा सेनाके उत्साह योगसे और कामोंकी कारवाईको देखनेसे राजा अपनी शक्तिको और शत्रुकी सामर्थ्यको सदा जान लेवे ॥ २६८ ॥

पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ॥
आरभेत् ततः कार्यसंचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥ २६६ ॥

सब प्रकारके पीडनोंको और काम क्रोध आदि दुःखोंको अपने तथा शत्रुके बलाबलका विचार कर राजा सुलह कर लेवे, अथवा युद्धमें प्रवृत्त हो ॥२६६ ॥

आरभेतव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ॥
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीनीषेवते ॥ ३०० ॥

श्रान्त हुआ राजा भी अपने राज्यकी वृद्धिके वास्ते वरंवार कामोंको प्रारंभ करता है क्योंकि कर्मों को प्रारंभ करता हुआ पुरुष लक्ष्मी को पाता है ॥ ३०० ॥

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ॥
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥ ३०१ ॥

सत्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग ये चार युग राजा की चेष्टा वर्ताव आदि हैं क्योंकि राजासे ही सत्य आदि युगोंकी प्रवृत्ति होती है इस वास्ते राजाको युग कहते हैं ॥ ३०१ ॥

कलिः प्रसुप्तो भवति सजाग्रद्वापरं युगम् ॥
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ ३०२ ॥

जब अज्ञान आलस्य आदिकोंसे राजा सोता है तब कलियुग है, जब जानता हुआ राजा उन कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता है तब द्वापर है और जब कर्मोंके अनुष्ठानमें स्थित होताहै तब त्रेता है और जब शास्त्रके अनुसार वारंवार कर्मोंके का अनुष्ठान करता है और विचरता है तब सत्ययुग है ॥ ३०२ ॥

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ॥
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥ ३०३ ॥

इन्द्र सूर्य वायु यम वरुण चन्द्रमा अग्नि पृथ्वी इनके तेजरूप कर्मको राजा करे ॥ ३०३ ॥

वार्षिकांश्चतरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ॥
तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥ ३०४ ॥

जैसे चातुर्मासमें इन्द्र शस्योंकी समृद्धिके अर्थ जल वरसाता है वसेही इन्द्रके चरित्र का अनुष्ठान करता हुआ राजा अपने देशमें आये हुए साधुजनोंके वांछित मनोरथ पूर्ण करे ॥ ३०४ ॥

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ॥
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥ ३०५ ॥

जैसे सूर्य मृगशिर आदि नक्षत्रों में महीनों तक अपनी किरणों द्वारा जलको सुखाता है वैसेही राजा अपने राज्य से कर लेता रहे, क्योंकि यह राजा का नित्यकर्म कहा है ॥ ३०५ ॥

प्रविश्यसर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ॥
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ३०६ ॥

जैसे प्राण वायु सब जीवों के भीतर प्रवेश होकर विचरता है वैसेही राजा जासूसों द्वारा अपने और पराये राजा के अन्तर में प्रवेश होके सब कामों को जाने क्योंकि यह मारुतव्रत कहाता है ॥ ३०६ ॥

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ॥
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥ ३०७ ॥

जैसे यम पुण्यात्मा वा पापी से प्राप्त काल में प्रीति और द्वेष करता है वैसेही राजा अपराध काल में प्रजा को दंड दे और अन्य काल में रक्षा करे यह यमव्रत कहाता है ॥ ३०७ ॥

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते ॥
तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥३०८॥

पापी पुरुष वरुण की फाँसी से बँधा हुआ ही जैसे दिखाता है वैसेही राजा पापियों को निःशंक होके शिक्षा देवे यह वारुणव्रत कहाता है ॥ ३०८ ॥

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ॥
तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥ ३०९ ॥

जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देख के सब मनुष्य प्रसन्न होते हैं वैसेही हर्ष उत्पन्न करने से राजा को सब प्रकृति प्रसन्न रहें यह राजा का चन्द्रव्रत कहाता है ॥ ३०९ ॥

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु ॥
दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥

पाप करनेवालों पर नित्यप्रति दंड करने से प्रतापयुक्त और तेजस्वी रहे और दुष्ट मन्त्री आदिकों के मारने में तत्पर हो, अग्निव्रत कहा है ॥ ३१० ॥

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ॥
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥३११॥

जैसे पृथ्वी सब भूत जीव मात्रों को बराबर धारण रखती है वैसेही सब प्राणियों का राजा समान रक्खे, इसको पार्थिवव्रत कहते हैं ॥ ३११ ॥

एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः ॥
स्तेनान्राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च ॥३१२॥

इन उक्त उपायों से और अन्य उपायों से राजा आलस्यरहित हो अपने राज्य में अथवा पर राज्य में चोरों को पकड़ सजा देवे ॥ ३१२ ॥

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ॥

ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥ ३१३ ॥

खजाने आदि के नाश को प्राप्त हुआ राजा ब्राह्मणों को क्रोध नहीं करवावे क्योंकि कुपित हुए वे ब्राह्मण इस राजा को बल वाहनों समेत शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं ॥ ३१३ ॥

यै कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ॥

क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ३१४

जिन ब्राह्मणों के शाप के कारण अग्नि सब वस्तुओं को भक्षण करनेवाला हो गया और समुद्र अपेय अर्थात् खारा हो गया चन्द्रमा कलाओं से क्षीण हो गया उन ब्राह्मणों को क्रोधित कराके कौन नहीं नष्ट होगा ॥ ३१४ ॥

लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः ॥

देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ॥३१५॥

जो स्वर्ग आदि लोकोंको और लोकपालों को अन्य रच सकें ऐसी सम्भावना है और कोप होके देवताओं को मनुष्य करदें उनको पीड़ा देता हुआ कौन समृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ३१५ ॥

यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा ॥

ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तान् जिजीविषुः ॥३१६॥

यज्ञ आदि करने कराने से जिनके आश्रय हुए स्वर्गादिक लोक ठहरते हैं और सर्वदा देवता जिनके आश्रय हैं जिनका मोक्ष साधन वेदधन है ऐसे ब्राह्मणों को जीने की इच्छा करनेवाला कौन मार सकता है ॥ ३१६ ॥

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ॥

प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ ३१७ ॥

ब्राह्मण मूर्ख हो अथवा विद्वान् वह महान् देव है जैसे मन्त्रादिकों से संस्कार किया हुआ अथवा विना संस्कार किया हुआ अग्नि महान् देव है ॥ ३१७ ॥

श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ॥

हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभि वर्धते ॥ ३१८ ॥

तेजवाला अग्नि श्मशान में भी शव को जलाता हुआ दोषभागी नहीं होता किन्तु यज्ञ में आव्हान किया हुआ फिर बढ़ाता है ॥ ३१८ ॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ॥
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥ ३१९ ॥

ब्राह्मण यद्यपि सम्पूर्ण अनिष्ट कर्मोंमें भी वर्त्तते हैं परन्तु तब भी सब प्रकार से पूजने योग्य हैं। वे प्रकृत देवता हैं यह स्तुति का वचन है कहीं विरोध की शंका नहीं करनी चाहिये ॥ ३१९ ॥

क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ॥
ब्रह्मैव संनियन्तृस्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥ ३२० ॥

ब्राह्मणों के प्रति पीड़ा से अनुवृत्त हुए क्षत्रियों के उद्धार का सर्वदा ब्राह्मण ही बन्दोवस्त करे क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मणों से ही उत्पन्न भये हैं ॥ ३२० ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ३२१ ॥

जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है। इसी वास्ते अग्नि क्षत्रिय लोहा इनका सब जगह बल रहता है परन्तु अपनी योनिमें तेज नहीं रहता अर्थात् जल ब्राह्मण पत्थर इनमें ये अग्नि आदि शांत हो जाते हैं ३२१ ॥

नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते ॥
ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते ॥ ३२२ ॥

ब्राह्मण रहित क्षत्रिय नहीं बढ़ता है और क्षत्रिय रहित ब्राह्मण नहीं बढ़ता है किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों मिलके आपसमें इस लोक में वा परलोक में वृद्धि को प्राप्त होते हैं अर्थात् आपसकी सहायता से बढ़ते हैं ॥ ३२२ ॥

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ॥
पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं हरेः ॥ ३२३ ॥

ब्राह्मणोंके वास्ते संपूर्ण दण्डके धनको देकर और अपने पुत्रके वास्ते राज्य

सौंपकर मरने के समीप राजा बैकुण्ठलोक की प्राप्तिके वास्ते युद्धमें अथवा अनशन आदि व्रतमें प्राणोंका त्याग करे ॥ ३२३ ॥

एवं चरन्सदा युक्तो राजा धर्मेषु पार्थिवः ॥
हितेषु चैव लोकस्य सर्वान् भृत्यान्नियोजयेत् ॥३२४॥

इस तरह पूर्वोक्त कहे हुए राजधर्मोंमें युक्त इन आचरणों को करता हुआ राजा संपूर्ण प्रजाके हित के वास्ते अपने सब भृत्योंको नियुक्त करे ॥ ३२४ ॥

एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ॥
इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥ ३२५ ॥

यही परंपरासे चली आती हुई राजाके सनातन कर्मकी संपूर्ण विधि कही है। अब क्रमसे वैश्य और शूद्रके कर्मविधिको आगे कहते हैं ॥ ३२५ ॥

वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ॥
वार्ताया नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥ ३२६ ॥

उपनयन अर्थात् यज्ञोपवीत आदि संस्कार किया हुआ वैश्य विवाह करके आगे कही हुई कृषिकर्म या अन्य आजीविकामें और पशुओंके पालनमें सदा युक्त रहे ॥ ३२६ ॥

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ॥
ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ॥ ३२७ ॥

क्योंकि ब्रह्माजी ने पशुओंको रचकर वैश्यके वास्ते दिया है इस वास्ते वैश्यको पशु पालना चाहिये और ब्रह्माजीने अपनी रची हुई सब प्रजाकी रक्षा के वास्ते ब्राह्मणको तथा राजाको दिया है ॥ ३२७ ॥

न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति ॥
वैश्ये चेच्छति नाऽन्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥३२८॥

मैं पशुओंकी रक्षा नहीं करूँगा ऐसी इच्छा वैश्यको कभी न करनी चाहिये और जब वैश्य पशुकी रक्षा करता हो तब अन्य किसीको रक्षा करनी योग्य नहीं है ॥ ३२८ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ॥

गन्धानां च रसाना च विद्यादर्घबलाबलम् ॥ ३२६ ॥

मणि, मोती, मूँगा, लोहा, वस्त्र और कपूर आदि गंध–वस्तु, लवण आदि रस इनका भाव देश कालकी अपेक्षा से वैश्य सदा जाने ॥ ३२६ ॥

बीजानामुप्तिविच्चि स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ॥
मानयोगं च जानीयात्तु लायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३० ॥

वैश्य सब बीजोंके बोने की विधिको जानने वाला हो और ऊसर भूमि वगैरह खेतके गुण दोषको भी जाननेवाला हो और तौलको भी जाननेवाला हो ॥ ३३० ॥

सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ॥
लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम् ॥ ३३१ ॥

भाण्डोंका सार असार जाने अर्थात् यह द्रव्य श्रेष्ठ है यह निकम्मा है, देशों के गुणदोषोंको जाने अर्थात् इस देशमें यह फायदा है यह नुकसान है, बेचनेके द्रव्योंको लाभालाभ जाने अर्थात् इसको इतने काल रखनेसे यह फायदा है यह नुकसान है और इस देशमें इस समयमें इस पानी घास आदिसे पशु बढ़ते हैं और इससे नाश होते हैं ॥ ३३१ ॥

भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् ॥
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥ ३३२ ॥

नौकरों की तनखाहको जाननेवाला और अनेक देशके मनुष्योंकी बोलीको पहिचाननेवाला, मालके अच्छी तरह रहनेका स्थान जाननेवाला और बेचना खरीदना जाननेवाला ऐसा वैश्य हो ॥ ३३२ ॥

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ।
दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ॥ ३३३ ॥

धर्म करके बेचने खरीदने के व्यवहार करके द्रव्य बढाने में उत्तम यत्न करे और संपूर्ण प्राणियोंको विशेषकरके अन्नही देवे अर्थात् अन्नका व्यवहार विशेष रक्खे ॥ ३३३ ॥

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ।

शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः ॥ ३३४ ॥

वेदके पढ़ेहुए विद्वान् गृहस्थ अपने धर्मके अनुष्ठानसे यश प्राप्तिवाले ऐसे ब्राह्मणोंकी सेवा करना यही शूद्रका परमधर्म है और स्वर्ग आदिका हेतु है ॥ ३३४ ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ।

ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥ ३३५ ॥

पवित्र रहनेवाला, अच्छी टहल करनेवाला, धीमेसे बोलनेवाला, अहंकारसे रहित और ब्राह्मण आदि तीन जातियोंके आश्रयमें रहनेवाला शूद्र अपनी योनि में उत्तम कहलावेगा ॥ ३३५ ॥

एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः ।

आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ३३६ ॥

यह शुभकर्मविधि सब वर्णोंकी आपत्ति रहित समयके लिये कही गयी है अब जो आपत्कालकी विधि है उसको क्रमसे सुनो ॥ ३३६ ॥

इति मानव धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इति मनुस्मृति भाषाप्रकाशे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

—***—

अथ दशमोऽध्यायः ।

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥

अपनें कर्ममें सावधान ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों जाति वेदको पढें और इनके पढ़ानेवाला ब्राह्मण हो। क्षत्रिय वैश्य आदिको नहीं पढावे अर्थात् ब्राह्मणके सकाशसे आप पढ़ लेवे ऐसा निर्णय कहा है ॥ १ ॥

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधि ।
प्रब्रूयादितेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥ २ ॥

सब वर्णोंके आजीवनका उपाय शास्त्रके अनुसार ब्राह्मण जाने क्षत्रिय आदिकोंके वास्ते ब्राह्मण उपदेश करे और आप भी वैसेही शास्त्रोक्त नियमोंका आचरण करे ॥ २ ॥

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ३ ॥

जातिकी उत्कर्षतासे और ब्रह्माजीके उत्तम अंग मुखसे उत्पन्न होनेसे और वेदके पठनपाठन करनेसे तथा संस्कारकी अधिकता होने से सब वर्णोंका प्रभु ब्राह्मण है ॥ ३ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्त शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥ ४ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंका संस्कार होनेसे ये द्विजाति हैं और चौथा वर्ण शूद्र है इनसे जुदा पांचवा कोई वर्ण नहीं है ॥ ४ ॥

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ ५ ॥

संपूर्ण वर्णोंमें समान जातिकी और परपुरुषके संपर्कसे रहित शुद्ध कन्या से शास्त्रके अनुसार विवाह करके जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वे उसी अपनी जातिके होते हैं ॥ ५ ॥

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥

अर्थात् अन्य जातियोंकी स्त्रियोंमें द्विजों द्वारा उत्पन्न पुत्र अर्थात् ब्राह्मणसे क्षत्रियामें, क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्न हुए पुत्रोंको मन्वादिक पिताकी सदृश कहते हैं क्योंकि वे माताके दोषसे निंदित हैं इससे साक्षात् पिताकी जाति नहीं हैं ॥६॥

अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः ।
द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम् ॥७॥

अपनी जातिसे एक श्रेणी हीन जातिवाली स्त्रियोंमें संतान उत्पन्न होनेकी यह सनातन विधि कही । अब दो श्रेणी हीन जातियोंवाली स्त्रियोंमें उत्पन्न होनेकी अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्यामें, क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न जो हो ऐसेंकी आगे आगे कही हुई विधि जानो ॥ ७ ॥

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥ ८ ॥

ब्राह्मणसे विवाही हुई वैश्यकी कन्यामें उत्पन्न होनेवाला अंबष्ठ नाम जातिका कहाता है और ब्राह्मणसे शूद्रकी कन्यामें उत्पन्न होनेवाला निषाद जाति कहाता है और इसको पारशव भी कहते हैं ॥ ८ ॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ॥
क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ ९ ॥

क्षत्रियके सकाशसे शूद्रकी कन्यामें जो उत्पन्न होता है वह क्रूर आचरण करनेवाला और क्षत्रिय-शूद्रके मिश्र स्वभाववाला उग्रनामका पुत्र कहता है ॥९॥

विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः ॥
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥ १० ॥

ब्राह्मणके सकाशसे क्षत्रिय आदि तीन वर्णोंकी स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए और क्षत्रियके वैश्य शूद्र इन दो वर्णोंकी स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए वैश्यके शूद्रामें उत्पन्न हुए ये छह पुत्र अपसद कहाते हैं, अर्थात् सजातीया स्त्रीके पुत्रोंसे निकृष्ट कहाते हैं ॥ १० ॥

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ॥
वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ ॥ ११ ॥

जो क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हो वह सूत कहाता है और वैश्यसे क्षत्रियामें उत्पन्न होवे वह मागध कहाता है तथा वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न होवे वह वैदेह कहाता है ॥ ११ ॥

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चण्डालश्चाधमो नृणाम् ॥
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

शूद्रसे वैश्यामें वा क्षत्रियामें वा ब्राह्मणीमें उत्पन्न होनेवाले क्रमकरके आयोग अधम चंडाल ये वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ॥
क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि ॥ १३ ॥

एक वर्णके अनुलोम अर्थात् एक दर्जे निकृष्ट योनिकी स्त्रीमें उत्पन्न हुए पुत्र जैसे अम्बष्ठ और उग्र नामवाले कहे हैं वैसेही प्रतिलोमसे जन्म होनेमें क्षत्ता और वैदेह ये दो पुत्र कहे हैं ॥ १३ ॥

पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजा क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम् ॥
ताननन्तरनाम्नास्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

क्रम से जो द्विजन्माओंके सकाशके अनतर अर्थात् निकृष्ट योनिकी स्त्रीमें उत्पन्न हुए पुत्र हैं वे माताके दोष से होने के कारण अनंतर कहाते हैं ॥ १४ ॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते ।
आभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वणः ॥१५॥

ब्राह्मणके सकाशसे उग्र जाति की कन्या में उत्पन्न हुआ पुत्र आवतनामवाला कहाता है और अम्बष्ठ जातिकी कन्यामें उत्पन्न हुआ आभीर कहाता है और ब्राह्मण के सकाश से पूर्वोक्त आयोग्य जातिकी कन्यामें उत्पन्न हुआ पुत्र धिग्वण कहा जाता है ॥ १५ ॥

आयोगवश्च क्षत्ता च चण्डालश्चाधमो नृणाम् ।

प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥ १६ ॥

आयोग व क्षता चंडाल ये मनुष्योंमें अधम तीनों प्रतिलोम शूद्रके सकाश से ब्राह्मणी आदि स्त्रियोंमें होते हैं और ये तीनों निकृष्ट हैं ॥ १६ ॥

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु ।
प्रतीपमेते जायन्ते परेऽप्यपसदास्त्रयः ॥ १७ ॥

वैश्य से क्षत्रिया और ब्राह्मणी में उत्पन्न हुए मागध वैदेह और क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न सूत ये भी प्रतिलोम से उत्पन्न होनेके कारण तीनों निकृष्ट कहाते हैं ॥ १७ ॥

जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुल्कसः ।
शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ॥१८॥

निषाद जातिसे शूद्रामें उत्पन्न हुआ पुत्र पुल्कस कहाता है और शूद्र पुरुषसे निषाद जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ कुक्कुटक कहाता है ॥ १८ ॥

क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ।
वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नोवेण उच्यते ॥ १९ ॥

क्षत्ताके सकाशसे उग्राजाति स्त्रीमें होनेवाला श्वपाक कहाता है। वैदेह से अम्बष्ठा में उत्पन्न होनेवाला वेण जातिका कहाता है ॥ १९ ॥

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान् ।
तान्सावित्रिपरिभ्रष्टान् व्रात्यानिति विनिर्दिशेत ॥२०॥

द्विजाति पुरुष जो अपनी सजातीया स्त्रीमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं वे यदि उपनयन संस्कारसे रहित हो जाते हैं तो उनको व्रात्य कहते हैं ॥ २० ॥

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥ २१ ॥

व्रात्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुआ पुत्र पापस्वभाव वाला भूर्जकंटक जातिवाला होता है और आवन्त्य वाट धान पुष्पध ये भी होते हैं अर्थात् देश भेदसे इन नामोंके भेद उसी जातिके हैं ॥ २१ ॥

झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च ।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥

व्रात्य संज्ञक क्षत्रियसे सवर्णा क्षत्रियामें उत्पन्न होनेवाला झल्ल मल्ल तिच्छिवि नट करण खस और द्रविड ये पुत्र होते हैं ये सब नाम देशभेद से एकही के हैं ॥ २२ ॥

वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च ।
कारूषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥ २३ ॥

व्रात्यसंज्ञक वैश्यसे अपनी सजातीया स्त्री वैश्याही में उत्पन्न होनेवाला सुधन्वा आचार्यकारुष,विजन्म, मैत्र, सात्वत,पुत्र हैं ये भी सब एकही जातिके नाम भेद हैं ॥ २३ ॥

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदने न च ।
स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥ २४ ॥

ब्राह्मण आदि वर्णोंके पर स्त्रीके संग गमन करने वा सगोत्रा आदिके संग विवाह कराने से अथवा उपनयन आदि अपने कर्मोंका त्याग करने से वर्णसंकर संज्ञक पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः ।
अन्योन्यव्यतिषक्तांश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २५ ॥

जो संकीर्ण अर्थात् परस्पर जातिके मिलापसे प्रतिलोम अनुलोम करके परस्पर संबन्धसे उत्पन्न हुए हैं उन सबको आगे कहेंगे ॥ २५ ॥

सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः ।
मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽयोगव एव च ॥ २६ ॥

सूत वैदेह मनुष्यों में अधम चडाल मागध क्षत्ताजाति, आयोगव इनको भी कहेंगे ॥ २६ ॥

एते षट् सदृशान्वर्णान् जनयन्ति स्वयोनिषु ।
मातृजात्यां प्रसयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥ २७ ॥

ये पूर्वोक्त छह जातिया अपनी योनिमें माताकी जातिमें और ब्राह्मणी आदि उत्तम जातिकी स्त्रीमें जो पुत्र उत्पन्न करते हैं वे उन पिताओंके ही समान होते हैं जैसे शूद्रके सकाशसे वैश्या स्त्रीमें आयोगव होता है सो अपनी जाति आयोगवीमें वा माताकीयोनि वैश्यामें वा उत्तम जाति ब्राह्मणी आदिकमें तथा शूद्रामें जो पुत्र उत्पन्न करता है वह उस आयोगव के ही समान है ॥ २७ ॥

यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य जायते ।
आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात् ॥२८॥

जैसे तीनों वर्णोंमें अनुलोमकरके ब्राह्मणसे क्षत्रिया वा वैश्यामें भी द्विज उत्पन्न होता है और ब्राह्मणीमें भी द्विज उत्पन्न होता है तैसेही अपनी योनिसे भिन्न पुरुष से अपनी योनिमें उत्पन्न होनेवाला है वा बाह्यके जनों में भी यह क्रम है जैसे वैश्यसे क्षत्रियामें क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें-ऐसे द्विजोंके आपस में प्रतिलोमसे संतान होना द्विजही है यह बचन शूद्रसे ब्राह्मणी आदिकमें प्रति लोमसे उत्पन्न हुओंको श्रेष्ठ कहने के वास्ते है ॥ २८ ॥

ते चापि बाह्यान् सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान् ॥
परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥ २९ ॥

पूर्वोक्त वे छह आयोगव आदिक परस्पर अनुलोम करके आपसकी जातिकी स्त्रियोंमें बहुत सी संतानको उत्पन्न करते हैं और वह संतान उनसे भी अधिक दूषित और निन्दित होती हैं ॥ २९ ॥

यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते ॥
यथा बाह्यश्वरं बाहश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥

जैसे शूद्र ब्राह्मणी में नीच जाति चंडाल को उत्पन्न करता है वैसेही चार वर्णों की स्त्रियों में वे अधम चंडाल उस पूर्व चंडाल से भी हीन जाति को उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥

प्रतिकूलं वर्तमानबाह्यावाह्यतरान्पुनः ॥
हीना हीनान्प्रसूयन्तो वर्णान्पञ्चदशैव तु ॥ ३१ ॥

प्रतिकूल वर्तनेवाले अधम चांडाल आदि तीन जातियाँ चार वर्णों की स्त्रियों में अपने से निकृष्ट और हीन जाति की संतान को उत्पन्न करते हैं।

एक से एक हीन होता है। जैसे चार वर्णों की स्त्रियों में तीन अधमों से तीन तीन होके १२ हुए और तीन उत्पन्न करनेवाले ऐसे कुल पंद्रह निकृष्ट जाति के जन उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् ॥
सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥ ३२ ॥

वाल आदि धोना, हाथ पैर आदि धोना, दावना ऐसे कामों को करके जीवन करनेवाला या यज्ञ आदि के वास्ते मृग आदि शिकार मारनेवाला और सैरंध्र नामवाला ऐसा पुत्र आगे कहे हुए दस्यु से आयोगवी स्त्रीमें उत्पन्न होता है। शूद्र से वैश्या में होनेवाली सन्तान आयोगवी होती है ॥ ३२ ॥

मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं सम्प्रसूयते ॥
नॄन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ॥ ३३ ॥

वैश्य से ब्राह्मणी में हुआ वैदेह, आयोगवी स्त्री में मधुर बोलनेवाला मैत्रेय नाम पुत्र को उत्पन्न करता है। वह मैत्रेय प्रात.काल घंटा बजा के राजा आदिकों की निरन्तर स्तुति करता है यही उसकी वृत्ति है ॥ ३३ ॥

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम् ॥
कैवर्तमिति यं प्राहुरार्यावर्तनिवासिनः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मण से शूद्रा में उत्पन्न हुआ निषाद आयोगवी स्त्री में मार्गव अर्थात् दास को उत्पन्न करता है। आर्यावर्त्त के निवासी उसीको कैवर्त्त अर्थात् नौका वहनेवाला धीमर कहते हैं ॥ ३४ ॥

मृतवस्त्रभृत्सु नारीगर्हितान्नाशनासु च ॥
भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक् त्रयः ॥ ३५ ॥

सैरिंध्र, मैत्रेय, मार्गव, ये तीन हीन जाति पुरुष मृत के वस्त्रों को पहिनने वाली, क्रूर उच्छिष्ट भोजन करनेवाली, ऐसी आयोगवी स्त्री में उत्पन्न होनेवाले पुरुष पिता की जाति से अलग २ होते हैं ॥ ३५ ॥

कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते ॥
वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥ ३६ ॥

निषाद से वैदेहिक जाति की स्त्री में उत्पन्न होनेवाला कारावर कहाता है और चाम के कर्मों को करनेवाला कहाता है और वैदेहक सैरिंध्र इन भेदोंवाले ग्रामसे बाहिर रहनेवाले होते हैं ॥ ३६ ॥

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् ॥
आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते ॥ ३७ ॥

चंडालसे वैदेहीमें व्यतीत कर उत्पन्न होनेवाला पांडु सोपाक कहाता है और बांसके पंखे तथा चटाई वगैरह बनाके जीने वाला होता है और निषाद से वैदेही स्त्रीमें आहिण्डिक नामवाला उत्पन्न होता है ॥ ३७ ॥

चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान् ।
पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥ ३८ ॥

शूद्रा स्त्री में निषादसे जन्मी हुई को पुक्कसी कहते हैं उसी पुक्कसीमें चंडाल से जन्मा हुआ सोपाक कहाता है वह पापात्मा है और साधु पुरुषोंसे निन्दित होता है और जल्लाद की वृत्तिवाला होता है ॥ ३८ ॥

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् ॥
श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥ ३९ ॥

निषाद जातिकी स्त्रीमें चंडालसे जन्मा हुआ पुत्र अन्त्यावसायी जातिका कहाता है और चंडालसे भी अत्यंत नीच सबसे अधम श्मशानमें रहनेवाला और श्मशानकीही वृत्ति करनेवाला होता है ॥ ३९ ॥

संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः ॥
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥४०॥

वर्णसंकरके विषयमें ये जातियाँ इस वास्ते दिखाई गई हैं कि इनकी ये माताएँ हैं और ये बाप हैं इस भेदके जानने के वास्ते और गुप्त अथवा जाहिर जातियोंको अपने अपने कर्मोंसे जाने ॥ ४० ॥

सजातिजानन्तरजाऽषट् सुता द्विजधर्मिणः ॥
शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाऽस्मृताः ॥ ४१ ॥

द्विजातियोंके तीन पुत्र सजातीया स्त्रीमें जैसे ब्राम्हणके ब्राम्हणीमें इस क्रमें से ३ हैं और तीन अनुलोम करके जैसे ब्राम्हण से क्षत्रिया, वैश्यामें, क्षत्रिय से वैश्यामें ऐसे छह पुत्र द्विजधर्मवाले हैं और अन्य पतिलोम होनेवाले सूत आदि सब पुत्र शूद्रके समान धर्मवाले हैं ॥ ४१ ॥

तपोवीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे ॥
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥

सजातीय स्त्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले वा अन्य स्त्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले पुरुष तपके प्रभाव से युगयुगके प्रति उत्कर्ष जातिको प्राप्त हो जाते और आगे कहे हुए हेतुसे निकृष्ट जातिको भी प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥

क्षत्रिय जातिमें उपनयन आदि क्रियाओंके लोप होने से और याजन अध्यापन आदि प्रायश्चित्त आदिके वास्ते ब्राम्हणोंके दर्शनके अभाव होनेसे शनैः शनैः संसारमें शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥

पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ।
पारदापह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥ ४४ ॥

पौंड्र चौड्र द्रविड कांबोज यवन शक पारद अपल्हव चीन किरात दरद खश इन देशोंमें उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय क्रिया लोप होनेसे शूद्रताको प्राप्त हुए ॥४४॥

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥४५॥

ब्राम्हण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनकी जो क्रिया लोप होनेसे बाह्य जाति हुई हैं सब म्लेच्छ भाषासे युक्त अथवा अनार्य भाषासे युक्त दस्युसंज्ञक कहाते हैं॥४५॥

ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः ॥
ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥ ४६ ॥

जो पहले द्विजोंमें अनुलोम से उत्पन्न होनेवाले अपसद संज्ञक कहे हैं औ

हैं और प्रतिलोमसे उत्पन्न होनेवाले उपध्वंसन कहे हैं वे द्विजातियोंके उपकारक आगे कहे हुए निन्दित कर्मोसे आजीवन करें ॥ ४६ ॥

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् ॥
वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मगधानां वणिक्पथः ॥ ४७ ॥

सूतोंकी जीविका साईसी की है अम्बष्टोंको शरीर के शल्य आदि की चिकित्सा, वैदेहोंके वास्ते जनाने महलों का काम, मागधोंके वास्ते बनिया का काम आदि इनकी आजीविकाएँ हैं ॥ ४७ ॥

मत्स्यघातो निषादानां त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च ॥
मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ॥ ४८ ॥

निषादोंके वास्ते मच्छियोंका मारना आजीवन है। आयोगवके वास्ते काष्ठ का छीलना, घसना आजीवन है और भेद अंध्र चंचु मद्गु इनके वास्ते बनमें मृग पशु आदि जानवर इनके मारनेको ही आजीवन कहा है। चंचु मद्गु ये वैदेहक वंदी स्त्रियोंमें ब्राह्मणसे होते हैं ॥ ४८ ॥

क्षत्तुग्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् ॥
धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ॥ ४६ ॥

क्षत्ता, उग्र पुक्कस इनका आजीवन बिलमें रहनेवाले गोह आदि जीवोंका मारना कहा है और धिग्वणोंका आजीवन चामका काम बनाना है और उनको बेचना है और वेणोंका आजीवन तासे ढफले नफीरी आदि बजाना है ॥ ४६ ॥

चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ॥
वसेयुरेते विज्ञाना वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥ ५० ॥

ग्रामोंके समीप बड़े वृक्षके नीचे वा श्मशानभूमिमें पर्वतके समीप, बाग बगीचोंमें अपने कर्मोंको करते हुए प्रसिद्ध हुए ये पूर्वोक्त निषाद आदि वास करें ॥ ५० ॥

चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ॥
अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥ ५१ ॥
वासांसि मृतचेलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ॥
५२

काष्र्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥ ५२ ॥

चंडाल और श्वपाकोंका निवास ग्रामसे बाहिर होना चाहिये ये निषिद्ध पात्रवाले होवें और इनका धन कुत्ता वा गदहा है। मृतपुरुषके वस्त्र वा पुराने चिथरे इनके कपड़े हों खपरेल आदि फूटे बरतन भोजनके वास्ते हों लोहेके कड़े आदि आभूषण हों और ये रातदिन भ्रमते रहें ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ॥
व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥ ५३ ॥

धर्मके अनुष्ठान के समय इन चंडाल आदिकों का दर्शन आदि व्यवहार न करे और इनका विवाह तथा लेन देन सब बराबर वालोंके साथ आपसमें ही हो ॥ ५३ ॥

अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ॥
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥

इनके वास्ते अन्न अपने हाथसे न देवे किन्तु अन्य पात्रमें रखके भृत्य आदि के हाथसे दिवावे और ये चांडाल श्वपच आदि रात्रिके समयमें ग्राम तथा शहरोंमें नहीं फिरें ॥ ५४ ॥

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ॥
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥

अपने कामके वास्ते ग्रामादिकों में राजाकी आज्ञासे किसी वस्तुका चिन्ह किये हुए दिनमें विचरें और जिसका कोई वारिस न होवे ऐसे मुरदे को ग्रामसे बाहिर ले जावे यही शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ५५ ॥

वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ॥
वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥५६॥

शूली फांसी होनेलायक वध्य पुरुषोंको ये चण्डाल आदि शास्त्रके अनुसार राजाकी आज्ञासे फांसी आदि देके वध करें और उस वध्य पुरुषके वस्त्र गहिने शय्या आदिका ग्रहण करें ॥ ५६ ॥

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ॥

आर्यरूपमिवानार्थं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥ ५७ ॥

वर्णसंकर मनुष्य गुप्त हो और किसी को मालूम न हो, आर्य संतान की तरह वर्णमें मिला हो तो उसके निन्दित कर्मोंके ऐसे आचरणोंसे उसे पहिचाने ॥५७॥

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ॥
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ५८ ॥

दुष्टपना, कठोरता, क्रूरपना, शील तथा कर्मानुष्ठानसे रहितता इन लक्षणों से संसार में वर्णसंकररूप जन्मे हुए को प्रगट करते हैं ॥ ५८ ॥

पित्र्यं वा भजते शीलं मातर्वोभयमेववा ॥
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥ ५९ ॥

यह वर्णसंकर दुष्ट जाति पिता संबंधी स्वभावको भजती है तथा माता संबंधी स्वभावको भजती है अथवा दोनोंके स्वभाव को भजती है यह कभी भी अपने कारणको छिपा नहीं सकती ॥ ५९ ॥

कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसंकरः ।
संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ६० ॥

महान् कुलमें भी जिसकी वर्णसंकर योनि हो जाती है वह थोड़ा या अधिक पिताके स्वभावका होता है ॥ ६० ॥

यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः ।
राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ ६१ ॥

जिस राजाके देशमें वर्णोंके दूषक ये वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं वह राज्य वहाँके निवासी जनोंसहित शीघ्रही नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ।
स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ ६२ ॥

ब्राह्मण गौ स्त्री बालक इनके प्राणोंकी रक्षाके वास्ते दुष्ट प्रयोजनसे रहित होके प्रतिलोमज अर्थात् वर्णसंकरोंका जो प्राणत्याग है वह उनको स्वर्गप्राप्तिका हेतु है ॥ ६२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥

जीवोंकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, अन्यायआदिसे पराया धन न हरना, पवित्र रहना, इंद्रियोंको वशमें करना, यह धर्म संक्षेपमात्रसे चारों वर्णोंका है। यही मनुजीने कहा है ॥ ६३ ॥

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥६४॥

शूद्रा स्त्रीमें ब्राह्मणके सकाशसे पारशव वर्ण उत्पन्न होता है यदि वह कन्या ही उत्पन्न होवे और वह कन्या दूसरे ब्राह्मणके साथ विवाही जाय और उसे भी कन्या हो और किसी अन्य ब्राह्मणके साथ विवाही जावे और इस प्रकार सातवें कुलमें बीज प्रधान हो जाय तो वह पारशववर्ण ब्राह्मणजातिका हो जाता है॥६४॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥

ऐसेही इस पहले श्लोककी रीतिसे शूद्र अर्थात् ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न हुआ पारशव सातव कुलमें ब्राह्मणत्वको प्राप्त होजाता है और केवल शूद्राकेही संग विवाह होता रहे तो सातवें कुलमें ब्राह्मण शूद्र हो जाताहै ऐसेही क्षत्रियसे वा वैश्यसे भी शूद्रामें उत्पन्न हुओंका उत्कर्ष अपकर्ष क्रम से जाने ॥ ६५ ॥

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया ।
ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत् ॥ ६६ ॥

जो इच्छाकरके विना विवाही हुई शूद्रामें ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ है वह बीज-प्रधान होनेसे श्रेष्ठ है। या ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न हुआ है श्रेष्ठ है, इन दोनोंमें संशय होता है इसलिये उनका निर्णय कहते हैं ॥ ६६ ॥

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः ।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥ ६७ ॥

शूद्रा स्त्रीमें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न हो वह यदि शास्त्रके अनुसार यज्ञ यागा-

दिक अनुष्ठानोंमें युक्त रहे तो श्रेष्ठ कहा है। शूद्रसे ब्राह्मणीमें जन्मनेवाला पुरुष प्रतिलोमसे उत्पन्न होनेसे शूद्रसे भी निकृष्ट है ऐसी धर्मशास्त्रकी मर्यादाहै॥६७॥

तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः।
वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः॥ ६८॥

पारशव चंडाल ये दोनोंही संस्कार उपनयन आदि कर्मके योग्य नहीं हैं ऐसी धर्मकी व्यवस्थाहै। पहिला तो शूद्रामें उत्पन्न होनेके कारण जातिकी विगुणतासे और दूसरा शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न होनेसे ये दोनों उपनयनके योग्य नहीं है॥ ६८॥

सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा।
तथाऽर्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति॥ ६९॥

जैसे उत्तम बीज अच्छे खेतमें बोया हुआ अच्छी तरह बढ़ता है वैसे ही द्विजाति पुरुषसे द्विजातिकी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ पुरुष संपूर्ण उपनयन आदि कर्मोंके योग्य है॥ ६९॥

बीजमेके प्रशंसंति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः॥ ७०॥

कई पंडित बीजको प्रधान कहते हैं, कई क्षेत्रको प्रधान कहते हैं और कई बीज-क्षेत्र इन दोनोंको प्रधान कहते हैं ऐसी अवस्था में आगे कही हुई व्यवस्था है॥ ७०॥

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति।
अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत्॥ ७१॥

अक्षेत्र अर्थात् ऊसर भूमिमें बोया बीज फल नहीं देता, नाशको प्राप्त होताहै, वैसेही सुन्दर खेत विना बीज किस कामका क्योंकि उसमें अनाज नही होगा। इस कारण सुन्दर खेत और सुन्दर बीज दोनों प्रधान हैं॥ ७१॥

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन्।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते॥ ७२॥

जो कि वीर्यके प्रभावसे तिर्यक्योनि अर्थात् हरिण आदिकसे उत्पन्न हुये

शृंगी ऋष्यादिक पूजित हुए और वेदके ज्ञान आदिसे स्तुतिके योग्य हुए सो भी बीजहीके प्रभावसे ॥ ७२ ॥

अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम् ।
संप्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥ ७३ ॥

शूद्र द्विजातिके कर्म करता हुआ और द्विजाति शूद्रके कर्म करता हुआ ब्रह्माजी के विचारसे न तो सम हैं और न विषम हैं अर्थात् द्विजाति शूद्रके कर्म करनेसे शूद्रके समान नहीं, जातिका उत्कर्ष होनेसे और निषिद्ध आचरण करने से ये दोनों विषम भी नहीं हैं ॥ ७३ ॥

ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः ।
ते सम्यगुपजीवेयुः षट् कर्माणि यथाक्रमम् ॥ ७४ ॥

जो ब्राह्मण ब्रह्म ध्यानमें निष्ठा रखते हैं और अपने कर्मोंके अनुष्ठानमें युक्त रहते हैं वे सम्यक् प्रकारसे आगे कहे हुए इन छह छह कर्मोंका क्रमसे अनुष्ठान करें ॥ ७४ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजगं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः ॥ ७५ ॥

पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना और अन्योंसे कराना, दान देना, प्रतिग्रह लेना यह छह कर्म ब्राह्मणोंके हैं ॥ ७५ ॥

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ ७६ ॥

इन छह कर्मोंके मध्यमें यज्ञ कराना पढ़ाना द्विजातिसे प्रतिग्रह दान लेना ये तीन कर्म ब्राह्मणकी आजीविकाके हैं ॥ ७६ ॥

त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥ ७७ ॥

ब्राह्मणकी अपेक्षासे क्षत्रियके अध्यापन अर्थात् पढ़ाना, यज्ञ कराना प्रतिग्रह-दान लेना ये तीन कर्म गौण हैं याने योग्य नहीं हैं ॥ ७७ ॥

वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः ।

न तौ प्रतिहितान् धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥ ७८ ॥

वैश्यके प्रति भी ये तीनों कर्म छूट जाते हैं यह शास्त्र की मर्यादा है क्योंकि प्रजापति मनुने इन वैश्य, क्षत्रियोंके लिये आजीविकाके के वास्ते उन कर्मोंको नहीं कहा है ॥ ७८ ॥

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्यवणिक्पशुकृषिविशः ।
आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥

प्रजाकी रक्षाके वास्ते शस्त्र अस्त्र अर्थात् वाण आदि धारण करना क्षत्रियों का धर्म है और बनियाका धर्म पशुओंको पालना, खेती करना, और वाणिज्य करना ये दोनोंके धर्म आजीविकाके वास्ते हैं और दान देना पढ़ना यज्ञ करना ये कर्म दोनोंके वास्ते धर्मके कहे हैं ॥ ७९ ॥

वेदाभ्यासो ब्राह्मस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

ब्राह्मणको वेदका अभ्यास करना और क्षत्रियको प्रजाकी रक्षा करना वैश्यको वाणिज्य व पशुपालन व खेती ये कर्म करना आजीवनके वास्ते श्रेष्ठ कहे हैं ॥८०॥

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण सह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥ ८१ ॥

ब्राह्मण यथोक्त अध्यापन आदि अपने कर्मकरके नित्य प्रति कुटुम्बके वास्ते आजीवन करे और जो उसमें निर्वाह न होवे तो प्रजा-रक्षण आदि क्षत्रियके कर्मसे आजीवन करे क्योंकि क्षत्रिय इसके समीप है ॥ ८१ ॥

उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥ ८२ ॥

यदि ब्राह्मण वेदाभ्यास आदि अपने कर्मसे वा क्षत्रियके कर्मसे आजीविका न कर सके तो 'कौनसा कर्म करके आजीविका करे, ऐसी अवस्थामें खेती पशु-पालन इत्यादि वैश्यकी आजीविकाको करे ॥ ८२ ॥

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ।
हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत ॥ ८३ ॥

वैश्य वृत्तिकरके आजीविका करते हुए भी ब्राह्मण वा क्षत्रिय बहुत हिंसा वाली और पराधीन वृत्तिवाली ऐसी कृषिको अर्थात् खेतीको यतनसे वर्ज देवें ॥ ८३ ॥

कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता ।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥ ८४ ॥

बहुतसे लोग खेतीको श्रेष्ठ कहते हैं परन्तु वह वृत्ति श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा निंदित है, क्योंकि उसके करनेमें हल कुदाल आदिकोंसे पृथ्वीके खोदनेमें बहुतसी जीवहिंसा होती है ॥ ८४ ॥

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् ।
विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥ ८५ ॥

ब्राह्मण वा क्षत्रिय का यदि अपनी वृत्तिमें आजीवन नहीं हो तो जो वैश्यको द्रव्यमात्र वर्ज करना कहा है उसको वर्ज करके और आगे कहे हुए इन द्रव्योंको वर्ज करके बाकी रही वस्तुओंको वेचके आजीवन करे ॥ ८५ ॥

सर्वान् रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह ।
अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ॥ ८६ ॥

संपूर्ण रसोंको और पकाये हुए अन्न तिलोंका पाक पत्थर लवण पशु मनुष्य इनको नहीं वेचे ॥ ८६ ॥

सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च ।
अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥ ८७ ॥

संपूर्ण सूतके लाल वस्त्र, सनके कपड़े वा रेशमी कपड़े वा भेड़की ऊनके कपड़े ये सब लाल नहीं होवें तो भी इनको वा फल मूलको तथा औषधियोंको न वेचे ॥ ८७ ॥

अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः ।
क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥ ८८ ॥

जल लोह विष मांस सोमवल्ली दूध दही शहद, तेल मधु गुड़ कुशा और सब प्रकारके कपूर आदि गंध इन सबको वर्ज देवे अर्थात् नहीं वेचे ॥ ८८ ॥

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च ॥
मद्यं नीलिं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥८९॥

बन में होनेवाले हस्ती आदि पशु दंष्ट्री, सिंह आदि कबूतर आदि जानवर जल के जीव मदिरा नील लाख एकशफ घोड़ा आदि पशु को भी न बेचे ॥८९॥

काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः ॥
विक्रीणीत तिलान् शूद्रान् धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥९०॥

खेती करनेवाला खेतिहर अपने खेत में उपजे हुए तिलों को अन्य वस्तु से मिले हुओं को बहुत दिन तक घर में रखके फिर किसी समय में धर्म के वास्ते बेचे तो उसमें दोष नहीं है ॥ ९० ॥

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ॥
कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥ ९१ ॥

भोजन अभ्यञ्जन अर्थात् उबटन आदि दान इनके विना अन्य किसी जगह जो तिलों को बेचता है वह कुत्ते की विष्टा में पितरों सहित कृमि होकर वास करता है अर्थात् उसके पितर भी कृमि होके कुत्ते की विष्टा में पड़ते हैं ॥ ९१ ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥
त्र्यहेण शूद्रीभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥

ब्राह्मण, मांस लाख लवण इनके बेचने से तात्काल पतित हो जाता है और दूध के बेचने से तीन दिन में शूद्रता को प्राप्त हो जाता है, यह वचन अत्यन्त कठिन दोष और प्रायश्चित्त के वास्ते कहे हैं ॥ ९२ ॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः ॥
ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥ ९३ ॥

ब्राह्मण इन मांसादिकों से पृथक् अन्य वस्तुओं के इच्छा से बेचने से सात दिन में वैश्यपन को प्राप्त हो जाता है ॥ ९३ ॥

रसा रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ॥
कृतान्नं चाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ॥ ९४ ॥

गुड़ आदि रस घृतादिकों से बदला कर लेवे और नमक को इन रसों के लिये नहीं बदले। पकाये हुए अन्न को कच्चे अन्न से बदला लेवे और तिलों को अन्य धान्य के समान देके बदला लेवे ॥ ९४ ॥

जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ॥
न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित् ॥९५॥

क्षत्रिय आपत्काल में इन निषिद्ध रस आदि को बेंच कर वैश्य की वृत्ति से आजीवन करे, परन्तु, कभी भी ब्राह्मण की वृत्ति से आजीविका न करे ॥ ९५ ॥

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ॥
तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥

जो अधम जातिका पुरुष लोभ से उत्तम जातिके विहित कर्मोंसे आजीविका करता है, उसको राजा निर्धन करके शीघ्र ही अपने राज्य से निकाल दे ॥९६॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ॥
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥ ९७ ॥

अपना कर्म गुणरहित भी हो तो भी करना योग्य है और परजातिका उत्तम धर्म होने पर भी न करे। पराये कर्म को करनेवाला पुरुष शीघ्रही जाति से पतित हो जाता है ॥ ९७ ॥

वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्तयेत् ॥
अनाचरन्नकार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान् ॥ ९८ ॥

वैश्य अपनी वृत्ति से आजीवन नहीं कर सके तो आपत्काल में शूद्र की वृत्तिका आचरण करे,परंतु द्विजाति का उच्छिष्ट भोजन आदि अकार्योंको वर्ज दे और जब शक्तिमान् हो जावे अर्थात् आपत्काल निवृत्त हो जावे तब शूद्रवृत्ति से निवृत्त हो जाय ॥ ९८ ॥

अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् ॥
पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ॥ ९९ ॥

जो शूद्र आपत्काल में द्विजातियों की शुश्रूषा सेवा करने में समर्थ न हो

और उसका कुटुम्ब क्षुधा से पीड़ित होता है तो वह कारुककर्म अर्थात् चटाई, छाज बनाने आदिके कामों से आजीवन करे ॥ ९९ ॥

यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः ॥
तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ॥१००॥

जिन कर्मों से, द्विजातियों की शुश्रूषा होती है तिन कारुककर्म और शिल्पी-कर्म अर्थात् अनेक प्रकार के चित्राकारी आदि का काम वा काष्ठ गढ़ने का काम करे ॥ १०० ॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः ॥
अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् ॥ १०१ ॥

अपनी वृत्ति में स्थित हुआ ब्राह्मण जो आजीविका नहीं कर सके तो वैश्यवृत्ति को न करके आगे कहे इस धर्म का आश्रय करे ॥ १०१ ॥

सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः ॥
पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ॥ १०२ ॥

आपत्काल को प्राप्त हुआ ब्राह्मण सब से अर्थात् निंदित जनों से भी प्रतिग्रह दान ले लेवे क्योंकि पवित्र जो है वह दूषित नहीं होता है जैसे गङ्गाजी रास्ते के जल से दूषित नहीं होती तैसे धर्म शास्त्र की रीति से उसको दोष नहीं है ॥ १०२ ॥

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् ॥
दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥ १०३ ॥

ब्राह्मणों को आपत्काल में निंदित पुरुषों को पढाना वा निंदितों को यज्ञ कराना वा प्रतिग्रह दान लेना इनका दोष नहीं है, क्योंकि वे ब्राह्मण पवित्र होने से अग्नि वा जल के समान हैं ॥ १०३ ॥

जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ॥
आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ १०४

जो ब्राह्मण मरणासन्न अवस्था में जहां कहीं प्रतिग्रह दान लेके अ

करता है वह पाप से नहीं लिप्ता है जैसे कीच से आकाश नहीं लिपता तैसे ॥ १०४ ॥

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद् बुभुक्षितः ॥
न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥ १०५ ॥

अजीगर्त नामक ऋषि भूख से पीड़ित हुआ, अपने पुत्र को मारने को चला परन्तु क्षुधा निवृत्त करने के वास्ते ऐसा आचरण करने पर भी पाप में वह लिप्त नहीं कहा गया ॥ १०५ ॥

श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः ॥
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ १०६ ॥

धर्म अधर्म को जाननेवाला वामदेव नामक ऋषि क्षुधा से पीड़ित हुआ प्राणों की रक्षा के वास्ते कुत्ते के मांस को खाने की इच्छा करता हुआ पाप से लिप्त नहीं हुआ ॥ १०६ ॥

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने ॥
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥१०७॥

पुत्र सहित भरद्वाज नामक महामुनि ने निर्जन वन में उपवास के कारण क्षुधा से पीड़ित वृधु नामवाले तक्ष शिली की बहुत सी गौओं को ग्रहण किया ॥ १०७ ॥

क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ॥
चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ १०८ ॥

क्षुधा से पीड़ित धर्म अधर्म को जाननेवाला विश्वामित्र ऋषि चांडाल के हाथ से कुत्ते के मांस को ग्रहण करके खाने को तैयार हुए ॥ १०८ ॥

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ॥
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥ १०९ ॥

ब्राह्मणको निंदित अन्नोंको पढ़ाना, यज्ञ करना उनका प्रतिग्रह दान लेना इन सबोंमें प्रतिग्रह सबसे निंदित है जब तक पढ़ाना यज्ञ करना आदिसे गुज-

रान हो जब तक प्रतिग्रह न लेवे, बिलकुल गुजर न हो तब असत् पुरुषोंका प्रतिग्रह लेके गुजर करे ॥ १०६ ॥

याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम् ॥
प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रदप्यन्त्यजन्मनः ॥ ११० ॥

यज्ञ कराना अध्यापन अर्थात् वेद आदिका पढ़ाना ये कर्म संस्कारवाले द्विजातियोंके ही कराये जाते हैं और प्रतिग्रह दान तो अन्त्य जन्मवाले शूद्रसे भी किया जाता है ॥ ११० ॥

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् ॥
प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च ॥ १११ ॥

जो निंदित पुरुषोंको याजन अध्यापन करानेके पापका भागी होता है वह आगे कहे हुए जप होमके प्रायश्चित्तसे दूर हो जाता है और प्रतिग्रह निमित्तका पाप प्रतिग्रह द्रव्य त्यागनेसे और तपकरनेसे दूर होता है ॥ १११ ॥

शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः ॥
प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयमांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते ॥ ११२॥

जहां अपनी आजीविका ब्राह्मण किसी प्रकार न कर सके तो वह शिलोंछ वृत्तिको ग्रहण करे शिलवृत्तिसे उंछ अर्थात् एक एक दाना चुगके लाना और भी श्रेष्ठ है ॥ ११२ ॥

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः ॥
याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ॥ ११३ ॥

धन के न होने से कुटुम्बको पीड़ा हो रही हो तब गृहस्थी ब्राह्मणोंको धान्य वस्त्र आदिके वास्ते धार्मिक क्षत्रियसे याचना करनी चाहिये । जो देनेकी इच्छा नहीं करता है उसे त्याग देवे ॥ ११३॥

अकृतं च कृतात्क्षेत्राद्गौरजाविकमेव च ॥
हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ॥ ११४ ॥

खेतमें जो विना बोया हुआ धान्य उत्पन्न हुए है वह बोए खेतके धान्यसे

दोषरहित है। गो बकरी भेड़ी सुवर्ण धान्य ये सात वस्तु पहले बार प्राप्त हुई, दोष रहित हैं ॥ ११४ ॥

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ॥
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ ११५ ॥

कुटुम्बके हिस्सेका धन, मित्र आदिसे निधि आदि धनका लाभ और ये तीनों बातें चारोवर्णों को धनके आगमनके वाणिज्य के वास्ते कहीं हैं। जीतकर पाया हुआ धन क्षत्रिय का है और सूद ब्याजकी आजीविका वाणिज्य ये कर्म धनवृद्धि के वास्ते वैश्यके हैं श्रेष्ठ प्रतिग्रह धन ब्राह्मण का है ॥ ११५ ॥

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः ॥
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥ ११६ ॥

वैद्यक तर्क चित्राम गंध युक्ति शिल्पकर्म सेवावृत्ति अर्थात् नौकरी गौओं की रक्षा दुकान, खेती संतोष, भिक्षा ग्रहण करना, ब्याजकी आजिविका ये दश धर्म आपत् कालमें आजीवनके वास्ते कहे हैं ॥ ११६ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि नैव प्रयोजयेत् ॥
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ॥ ११७ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय आपत् कालमें भी ब्याज धनको न बढ़ायें किन्तु निकृष्ट कर्म करके अपने धर्मके वास्ते कही हुई वृत्तिसे आजीवन करें ॥ ११७ ॥

प्रजा रक्षन् परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते ॥
चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि ॥ ११८ ॥

खेतोंके उपजे धान्य आदिका चौथा हिस्सा लेता हुआ राजा आपत् कालमें परम शक्तिसे प्रजाकी रक्षा करता हुआ सब पापसे छूट जाता है ॥ ११८ ॥

स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः ॥
शस्त्रेण वैश्यान् रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥ ११९ ॥

युद्ध में जय पाना राजा का स्वधर्म है, राजा युद्धमें पराङ्मुख न हो अर्थात् पीठ दिखाकर भागे नहीं। चोरादिकोंसे वैश्योंकी रक्षा करके उनसे धर्मके अनुसार यथायोग्य अपना कर ले लेवे ॥ ११९ ॥

धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम् ॥
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥ १२० ॥

राजा अपत्तिकालमें धान्यके समूह से वैश्यसे आठवां भाग कर लेवे और दुकान आदिकी विक्रीकी चीजोंका वीसवां भाग लेवे कारव शिल्पी शूद्र इनसे काम करवा लेवे, पर अन्य कर नहीं लेवे ॥ १२० ॥

शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन् क्षत्रमाराधयेद्यदि ॥
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ॥ १२१ ॥

शूद्र जो ब्राह्मणकी सेवा वा टहल करता हुआ अपना गुजारा नहीं कर सके तो क्षत्रियकी परिचर्या करे क्षत्रियके अभावमें धनी वैश्यकी सेवा करके आजीवन करे इन तीनोंके अभावमें पहले कहे शिल्पी आदिके कर्मों को करे ॥१२१॥

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तुसः ॥
जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ १२२ ॥

स्वर्गलोककी प्राप्तिके वास्ते और इस लोकमें अपने गुजारेके वास्ते शूद्र ब्राह्मणोंही की सेवा करे, क्योंकि वह ब्राह्मणका सेवक है। सेवक शब्दसे शूद्रकी कृतकृत्यता है ॥ १२२ ॥

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ॥
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् ॥ १२३ ॥

ब्राह्मण की सेवा करना शूद्र का परम धर्म कहा है और शूद्र जो अन्य कर्म करता है वह सब निष्फल हो जाता है ॥ १२३ ॥

प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः ।
शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम् ॥१२४॥

परिचारक शूद्रके कर्मका उत्साह और परिचर्याकी सामर्थ्यको देखके तथा उसके कुटुम्बके खर्चको देखकर और उसकी चतुराई देखकर ब्राह्मण अपने घरके अनुसार उनको आजीविका कर दें ॥ १२४ ॥

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च ।

पुलकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः ॥ १२५ ॥

सेवक शूद्रके वास्ते ब्राह्मण उच्छिष्ट भोजन, पुराने वस्त्र और धान्योंके बाकी रहे कण पुराने बरतन भांडा वगैरह दें ॥ १२५ ॥

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥ १२६ ॥

शूद्रको लस्सन आदि भक्षण करनेमें कुछ पातक नहीं है । शूद्र उपनयन आदि संस्कारके योग्य नहीं है । यज्ञ आदि धर्म करने भी इसका कुछ अधिकार नही है । पाक यज्ञादिक धर्मों से इस शूद्रका निषेध भी नहीं है ॥ १२६ ॥

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ १२७ ॥

जो अपने धर्मको जाननेवाले धर्मप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंके आचारका अनुष्ठान करनेवाले शूद्र हैं वे मंत्रको वर्जके नमस्कार मात्रसे पंचयज्ञों को करते हुए दोषको नहीं प्राप्त होते हैं, अपितु उत्तम प्रशंसाको प्राप्त होते हैं ॥ १२७ ॥

यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।
तथातथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥ १२८ ॥

शूद्र जैसे जैसे अच्छे पुरुषोंका आचरण करता है और पराये गुणोंकी निंदा नहीं करता है तैसे तैसे इस लोकमें विख्यातिको प्राप्त होता है, और परलोक में उत्कृष्टताको प्राप्त होता है ॥ १२८ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ।
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥ १२९ ॥

धन कमानेको समर्थ शूद्र कुटुंबके निर्वाहमात्र और पंचयज्ञ आदि कर्मके योग से अधिक धनका संचय नहीं करें क्योंकि अधिक धन होनेसे धनके मदसे वह शूद्र ब्राम्हणोंको ही पीड़ा देता है ॥ १२९ ॥

एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्तिताः ।

यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् ॥ १३० ॥

ये चारों वर्णोंके आपत् कालके धर्म कह दिये हैं इन सबको इसी विधिसे करते हुए मनुष्य परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ १३० ॥

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ १३१ ॥

यह चारों वर्णोंकी संपूर्ण कर्मकी विधि कही है अब इससे आगे प्रायश्चित्तके शुभ अनुष्ठानको कहेंगे ॥ १३१ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इति मनुस्मृति भाषाप्रकाशे दशमोध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ।

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ।
गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १ ॥
नवैतान् स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान् ।
निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २ ॥

संतान उत्पन्न करनेके वास्ते, विवाहके वास्ते, यज्ञ आदिके वास्ते, मार्गमें चलनेके वास्ते यज्ञ किये हुए गुरुके वास्ते वा माता पिताके वास्ते मांगनेवाला विद्यार्थी, ब्रह्मचारी, रोगी ये नौ ब्राह्मण भिक्षा मांगनेके योग्य हैं, सो ऐसे धन-रहित के वास्ते गौ सुवर्ण आदि धनको इनके विद्या गुणके अनुसार अवश्य देवे ॥ १-२ ॥

एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् ।
इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥ ३ ॥

इन नौ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके अर्थ दक्षिणासहित अन्न देना चाहिये और अन्योंके लिये वेदीसे बाहर पकाया हुआ अन्न मात्र देना योग्य है ॥ ३ ॥

सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

राजा वेदको जाननेवाले ब्राह्मणोंको संपूर्ण प्रकारके मणि मोती आदि रत्नोंको दे और बहुत सा धन भी देवे ॥ ४ ॥

कृतदारोऽपरान्दारान् भिक्षित्वा योऽधिगच्छति ।
रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुस्तु संततिः ॥ ५ ॥

जो विवाहा हुआ ब्राह्मण भिक्षा मांग कर दूसरा विवाह करता है उसको रमण मात्रका फल है और उससे उत्पन्न हुई संतान धन देनेवालेकी है इस वास्ते भिक्षा मांगके दूसरा विवाह न करे ॥ ५ ॥

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ६ ॥

जो पुरुष वेदके जाननेवाले कुटुम्बी ब्राह्मणके अर्थ गौ सुवर्ण आदि धनको देता है वह मरने पर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ॥
अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥ ७ ॥

जिस ब्राह्मण के तीन वर्ष तक अथवा कुछ अधिक दिनों तक कुटुम्ब पोषण के वास्ते घर में खर्च चलने योग्य धन हो वह सोमयाग करने को योग्य है ॥ ७ ॥

अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः ॥
स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥ ८ ॥

इस वास्ते जिसके पास इससे थोड़ा द्रव्य है वह जो यदि सोमयाग करता है तो उसका किया हुआ सोमयाग नित्य ठीक संपूर्ण नहीं होता है; उसको अवश्य दूसरा सोमयाग करना चाहिये ॥ ८ ॥

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ॥
मध्वापातो विषास्वादः सधर्मप्रतिरूपकः ॥ ९ ॥

जो बहुत धनी पुरुष पालन योग्य माता पिता आदि तथा ज्ञातिजनों की दुखी अवस्था होते हुए भी यश के वास्ते अन्य जनों के अर्थ दान देता है वह दान धर्म का प्रतिरूपक है, कुछ साक्षात् धर्म नहीं। मध्वापात, अर्थात् सोमयाग करना प्रथम यशकारक है, अन्त में विष के समान है। इस वास्ते नरक फल का हेतु होने से ऐसा न करे ॥ ९ ॥

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ॥
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥ १० ॥

भृत्य अर्थात् पुत्र स्त्री आदिकों को क्लेश देकर जो परलोक के वास्ते दान आदिक करते हैं वह दान उस दाता को जीवनकाल में तथा मरने पर भी दुःखी के फल को देनेवाला होता है ॥ १० ॥

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ॥
ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥ ११ ॥

यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ॥
कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥ १२ ॥

धार्मिक राजा के राज्य में क्षत्रिय आदि किसी का अथवा विशेष करके किसी ब्राह्मणके यज्ञमें किसी अंग की कमी से रुक रहा हो वहां यदि कोई वैश्य पशु आदिकों की समृद्धि से युक्त हो और पञ्च यज्ञादिकों से रहित हो और सोमयाजी नहीं हो, तो उसके घर से उस यज्ञ के अंग समाप्ति योग्य द्रव्य को चोरी से अथवा बल से राजा हर लेवे ॥ ११ ॥ १२ ॥

आहरेत्त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः ॥
न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥ १३ ॥

यज्ञ के दो अंग अथवा तीन अंग हीन होने में अपने प्रयोजन के वास्ते दो अंगों की वस्तु को अथवा तीन अंगों की वस्तु को शूद्र के घर से जबर्दस्ती अथवा चोरी से हर लेवे क्योंकि शूद्र का यज्ञ से सम्बन्ध कभी भी नहीं है। इस वास्ते उसके घर से मांग के नहीं लेवे ॥ १३ ॥

योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ॥
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥ १४ ॥

जो अग्निहोत्र आदि कर्म नहीं करनेवाला ब्राह्मण सौ १०० गौओं के प्रमाण के समान धनवाला हो और जो अग्निहोत्र सोमयाग आदिकों को नहीं करनेवाला है वह हजार गौओं के समान धनवाला हो तो ऐसे दोनों के घर से भी निश्शंक होके धन को हर लेवे ॥ १४ ॥

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः ॥
तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥ १५ ॥

जिसके नित्य प्रति प्रतिग्रह दान का ही धन है ऐसे ब्राह्मण को जो यदि माँगने से धन नहीं मिले तो विना देनेवाले के धनको जबर्दस्ती से हरके यज्ञ के वास्ते लेवे ऐसा करने से इसकी ख्याति बढ़ती है और धर्म बढ़ता है ॥ १५ ॥

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता ॥

अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

तीन दिन के उपवास व्रत में चौथे दिन प्रातःकाल भोजन के समय दान आदि धर्म के वास्ते धन से रहित होवे तो एक दिन के गुजारे लायक चोरी से धन का हरना योग्य है ॥ १६ ॥

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते ॥
आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥ १७ ॥

धान्य निकालने की जगह से वा खेत से तथा घर से जो धान्यादिक लाया गया हो उसको यदि उसका स्वामी पूछे तो कह देना चाहिये कि अमुक निमित्त के वास्ते यह चोरी की है ॥ १७ ॥

ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन ॥
दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन् हर्तुमर्हति ॥ १८ ॥

क्षत्रिय को ब्राह्मण का धन कभी भी नहीं हरना चाहिये और क्षुधा से पीड़ित हुआ क्षत्रिय निषिद्ध आचरण और चोरी की वृत्ति करनेवाले ऐसे ब्राह्मण क्षत्रियों के धन को हरने को योग्य है ॥ १८ ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ॥
स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥ १६ ॥

जो पुरुष हीन कर्मोंवाले दुष्ट जनों के पास से धनको चोर के उत्तम कर्मोंवाले साधु जनों के अर्थ देता है वह अपने आत्मा को नौका रूप करके उन दोनों को दुःख से पार उतार देता है ॥ १६ ॥

यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः ॥
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥ २० ॥

सर्वदा यज्ञ करनेवालों का जो धन है उसको यज्ञ आदिकों में नियुक्त करने से बुद्धिमान् जन देवस्व अर्थात्-देवताओं का धन कहते हैं और यज्ञ नहीं करनेवालों के धन को राक्षससंबंधी धन कहते हैं ॥ २० ॥

न तस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥
क्षत्रियस्य हि बालिश्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥२१॥

उक्त प्रयोजन के वास्ते धन को हरनेवाले ब्राह्मण को धार्मिक राजा दण्ड नहीं दे क्योंकि क्षत्रिय और राजाके ही मूर्खपन से ब्राह्मण क्षुधा से पीडित होता है ॥ २१ ॥

तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः ॥
श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

राजा उस ब्राह्मणके भृत्य कुटुम्ब आदिकों को विचारके और उस ब्राह्मणको वेदको जाननेवाला समझके उसकी आजीविकाका बंदोवस्त कर देवे ॥ २२ ॥

कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः ।
राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात् ॥२३॥

राजा इस ब्राह्मणकी आजीविका का बंधान करके फिर इसकी सब तरफसे रक्षा करे क्योंकि उसकी रक्षा करनेसे उस ब्राह्मणके धर्मका छठा हिस्सा राजा को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित् ।
यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते ॥ २४॥

ब्राह्मण यज्ञके वास्ते शूद्रसे धनको कभी भी नहीं मांगे क्योंकि शूद्रसे धन मांगके यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण मरने पर चंडाल होता है ॥ २४ ॥

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ।
स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः ॥२५॥

सो ब्राह्मण यज्ञके वास्ते धनको मांगकर फिर उस सम्पूर्ण धनको यज्ञमें नहीं लगाता है वह मरकर जुगनू तथा कुत्ता होता है अथवा सौ १०० वर्ष तक कौआ होता है ॥ २५ ॥

देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः ।
स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥ २६ ॥

जो पापी पुरुष देवताके द्रव्यको अथवा ब्राह्मणके द्रव्यको लोभसे हरता है वह मरने पर परलोकमें गीधके जूठे मांस आदिसे जीता है अर्थात् निकृष्ट जीव की योनिमें जाता है ॥ २६ ॥

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ।
क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभवे ॥ २७ ॥

वर्ष समाप्त होनेपर दूसरे वर्षके पर्यंत अर्थात् चैत्र शुक्ल आदिमें जो विहित सोमयाग है उसके न होनेसे उसकी दोषनिवृत्तिके वास्ते यज्ञ की जाती है वह वैश्वानरी इष्टि कहाती है। इस इष्टिकी सिद्धिके अर्थ सर्वदा उक्त रीतिसे शूद्र आदिकसे धनको ग्रहण करे ॥ २७ ॥

आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः ।
स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥ २८ ॥

जो द्विज आपत्कालके विना आपत्काल में कहे हुए धर्मके अनुसार वर्त्तता है वह परलोकमें उस धर्मके फलको प्राप्त नही होता है ऐसा मनु आदि ऋषियों का विचार है ॥ २८ ॥

विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥ २९ ॥

विश्वेदेव साध्यसंज्ञक देवता महर्षि ब्राह्मण इन्होंने आपत्कालमें मृत्युके भयसे सोमयज्ञादिकोंकी प्रतिनिधि वैश्वानरी आदि कल्पित की है सो मुख्य विधिका संभव होनेमें कल्पित विधिको न करे ॥ २९ ॥

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते ।
न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥ ३० ॥

जो पुरुष मुख्य अनुष्ठान कर्म करने में समर्थ हो वह उसके अभावमें कहे हुए प्रतिनिधि कर्मको न करे क्योंकि उस दुर्बुद्धिवाले को परलोमें उसका फल नहीं होता है ॥ ३० ॥

न ब्राह्मणोऽवेदयेत किञ्चिद्राजनि धर्मवित् ।
स्ववीर्येणैव तान् शिष्यान्मानवानपकारिणः ॥ ३१ ॥

धर्मको जाननेवाला ब्राह्मण अपराध करनेवाले पुरुषोंको राजाके वास्ते न कहे किंतु उन अपमान करनेवाले जनोंको अपनेही शाप आदि के बलसे दंड दे ॥ ३१ ॥

स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् ॥

तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन् द्विजः ॥३२॥

राजसामर्थ्य पराधीन है अपनी सामर्थ्य स्वाधीन और अधिक बलवाली है इस वास्ते ब्राह्मण शत्रुओंको अपनेही बलसे वशमें करे ॥ ३२ ॥

श्रुतीरथर्वांगिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः ॥३३॥

अथर्वण वेदकी दुष्टाभिचारवाली श्रुतिके अनुसार निस्संदेह होके वर्त्ते उसमें यही आशय है कि ब्राह्मणकी वाणी शस्त्ररूप है इस वास्ते द्विज उस वाणीरूप शस्त्रसे शत्रुओंका नाश करे ॥ ३३ ॥

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः ।
धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥

क्षत्रिय अपनी अपात्तिको भुजाके पराक्रमसे दूर करे और वैश्य तथा शूद्र धन देके शत्रु आदिको दूर करें और ब्राह्मण अभिचारात्मक जप होम आदिकोंसे आपत्तिको दूर करे ॥ ३४ ॥

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥
तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥ ३५ ॥

विहित कर्मों का अनुष्ठान करनेवाला और पुत्र शिष्य आदिकों को शिक्षा देनेवाला प्रायश्चित्त आदि धर्मों का कहनेवाला, संपूर्ण प्राणियों से प्यार रखनेवाला ऐसा ब्राह्मण कहाता है उसके वास्ते खोटा वचन नहीं कहे और धिक्कार आदि शुष्क वचन नहीं कहे ॥ ३५ ॥

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः ॥
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥ ३६ ॥

तरुण अवस्थावाली विना विवाही हुई कन्या, थोड़ी विद्यावाला जन, मूर्ख, व्याधि से पीड़ित संस्कार कर्म उपनयन आदि से रहित पुरुष, ये सब सायं प्रातःकाल अग्निहोत्र होम न करें ॥ ३६ ॥

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत् ॥
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ॥ ३७ ॥

ये पूर्वोक्त कन्या आदिक होम करते हुए नरक को प्राप्त होते हैं और जिस किसी की बदले में होम करते हैं वह भी नरक में जाताहै; इस वास्ते वेद के कर्म में निपुण वेद को जाननेवाला श्रेष्ठ ब्राह्मण 'होता' करना चाहिये ॥ ३७॥

प्राजापत्यमदत्त्वाश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम् ॥
अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति ॥ ३८ ॥

धन संपत्ति होने में ब्राह्मण आधानकर्म में अग्न्याधेय की दक्षिणा प्रजापति दैवत अश्व को देवे और जो अश्व की दक्षिणा नहीं देता है तो वह अनाहिताग्नि हो जाता है आधान के फल को प्राप्त नही होता है ॥ ३८ ॥

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥
न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजन्तो ह कथंचन ॥ ३९ ॥

श्रद्धावान् और जितेन्द्रिय ब्राह्मण तीर्थयात्रा आदि अन्य पुण्य कर्मों को करे परन्तु कम दक्षिणावाले यज्ञों को कभी न करे ॥ ३९ ॥

इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजाः पशून् ॥
हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥ ४० ॥

थोड़ी दक्षिणावाले यज्ञ चक्षु आदि इन्द्रिय यश स्वर्ग आयु मृत हुए की विख्याति सन्तान पशु इन सब का नाश करते हैं इस वास्ते थोड़ी दक्षिणावाले यज्ञ न करे ॥ ४० ॥

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन् ब्राह्मणः कामकारतः ॥
चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ ४१ ॥

अग्निहोत्री ब्राह्मण इच्छा से सायं प्रातःकाल में अग्नि में हवन न करे तो एक महीना तक चांद्रायण व्रत करे क्योंकि अग्निहोत्री को इसका पुत्रहत्या के समान दोष है ॥ ४१ ॥

ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते ॥
ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥ ४२ ॥

जो शूद्र से धन को ग्रहण करके अग्निहोत्र कर्म करते हैं वे ब्राह्मण वेदवादी ब्राह्मणों में निन्दित होते हैं, क्योंकि वे शूद्रोंके ही याजक हैं, वह फल उन ब्राह्मणों का नही ॥ ४२ ॥

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ॥
पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि संतरेत् ॥ ४३ ॥

शूद्र का धन लेकर यज्ञ करनेवाले उन मूर्ख ब्राह्मणों के मस्तक पर पैर रखके वह शूद्र उस दान के कारण परलोक में दुःखों से पार हो जाता है और उन ब्राह्मणों को कुछ फल नहीं होता है ॥ ४३ ॥

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ॥
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥ ४४ ॥

विहित नित्य नैमित्तिक कर्मों को नहीं करता हुआ और निन्दित कर्मों का आचरण करनेवाला और इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रहनेवाला ऐसा पुरुष प्रायश्चित्त करने योग्य है ॥ ४४ ॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ॥
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४५ ॥

विना इच्छा से अज्ञानवश किये पाप में प्रायश्चित्त है ऐसा पण्डित लोग कहते हैं और कई एक पंडित वेद के देखने से कहते हैं कि इच्छा किए हुए पापका भी प्रायश्चित्त है ॥ ४५ ॥

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुद्ध्यति ॥
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥

विना इच्छा के किया हुआ पाप वेद के अभ्यास से नष्ट हो जाता है और इच्छा करके किए हुए पाप के अनेक प्रकार के जुदे २ प्रायश्चित्त हैं ॥४६॥

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा ॥
न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥ ४७ ॥

दैव से अथवा प्रमाद से पूर्वजन्म में अन्य शरीर से किये हुए दुष्कृत से क्षयीरोग आदिकों से सूचित होने से उस पाप का प्रायश्चित्त किये विना उत्तम पुरुषों में याजन आदि का साथ नहीं करे ॥ ४७ ॥

इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा ॥
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

इस जन्म में कई एक पुरुष निषिद्ध आचरणों को करके और कई पूर्व जन्म के कर्त्तव्यों से दुष्ट स्वभाववाले होते हैं और कुनखी आदि विपरीत रूपवाले होते हैं ॥ ४८ ॥

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् ॥
ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥

सोना चोरी करनेवाला कुनखी अर्थात् बुरे नखोंवाला होता है और मदिरा पीनेवाला के काले दांत होते हैं और ब्रह्महत्यावाला क्षयरोगी और गुरु की स्त्री की शय्या पर शयन करनेवाला बुरे चामवालाहोता है ॥ ४९ ॥

पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम् ॥
धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्रकः ॥ ५० ॥

चुगलखोर की नासिका में दुर्गन्ध का रोग, सूचक के मुख का रोग, धान्य का चोरनेवाला अंगहीन, चीज को मिलानेवाला अतिरिक्त अर्थात् सब बातों की कमीवाला ऐसे ये रोग जन्मान्तर में हो जाते हैं ॥ ५० ॥

अन्नहर्तामयावित्वं मौक्यं वागपहारकः ॥
वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पंगुतामश्वहारकः ॥ ५१ ॥

अन्न को चुरानेवाला मन्दाग्नि रोगी, चुरा के पढ़नेवाला गूँगा, वस्त्र को हरनेवाला श्वित्रकुष्टी, अश्व को हरनेवाला पागल ॥ ५१ ॥

एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्भिर्गर्हिताः ॥
जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥ ५२ ॥

ऐसे कर्मों के अनुसार श्रेष्ठ पुरुषों से निंदित जन होते हैं तथा मूर्ख गूँगा अन्धा बधिर और विकृत आकृतिवाले होते हैं ॥ ५२ ॥

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥
निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥ ५३ ॥

जिन्होंने पूर्व जन्म में अपने किये हुए पापों का प्रायश्चित्त आदि से नाश नहीं किया है वे कुनखी आदि इन उपर्युक्त लक्षणोंवाले होते हैं । इस वास्ते उनकी विशुद्धि के अर्थ प्रायश्चित्त को नित्य करे ॥ ५३ ॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः ॥
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥ ५४ ॥

ब्रह्महत्या मदिराका पीना चोरी करना गुरुकी स्त्रीके संग मैथुन करना इनको महापातकी कहते हैं और इनके साथ रहनेवाले भी महापातकी कहाते हैं ॥५४॥

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥
गुरोश्चालीकनिर्बंधः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ५५ ॥

जातिकी उत्कर्षताके वास्ते मैं ब्राह्मण हूं ऐसा कहनेवाला और राजद्वारमें चोर आदिकोंको भयंकर अपराध न होते हुए फांसी दिलानेवाला गुरुको झूठा कहनेवाला ये सब दोष ब्रह्महत्याके समान हैं ॥ ५५ ॥

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ॥
गर्हितानद्यतोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥ ५६ ॥

पढे हुए वेदको अभ्यास बिना भूल जाना, नास्तिक युक्तियोंसे वेदकी निंदा करना, झूठी गवाही देना, मित्रका वध करना, निंदित वस्तु जैसे लहसुन आदि का भक्षण करना, ये छह मदिरापानके समान हैं ॥ ५६ ॥

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ॥
भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥ ५७ ॥

किसीकी धराहर जमाका हरना, मनुष्य, अश्व, चांदी इनका हरना, भूमि हीरा मणि इनका हरना ये सब सोनेकी चोरीके समान है ॥५७॥

रेतःसेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥ ५८ ॥

माता भौजाई बहन चंडाली सखी पुत्रवधू इनसे व्यभिचार करना गुरुकी भार्याके संग मैथुन करनेके समान है ॥ ५८ ॥

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ॥
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥ ५९ ॥

गो-वध करना, जातिके कर्मोंसे दूषित पुरुषोंद्वारा यज्ञ आदि कराना, पर-स्त्रीगमन, आत्माका बेचना, गुरु माता पिता इनका त्याग करना अर्थात् इनकी

सेवा न करना, स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञका त्यागना, श्रौत स्मार्त अग्निमें होम न करना, पुत्रका त्यागना ॥ ५९ ॥

परिवित्तितानुजेऽनूढे परिवेदनमेव च ॥
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याचनम् ॥ ६० ॥

पहले छोटे पुत्रका विवाह करनेसे बड़ेकी परिवित्ति संज्ञा हो जाती है और छोटेकी परिवेत्ता संज्ञा हो जाती है उन दोनोंके अर्थ कन्या दान देना और उन दोनोंके यज्ञ आदि करानेमें ऋत्विक होना ॥ ६० ॥

कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम् ॥
तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६१ ॥

कन्याके अंग प्रदोष आदिसे दोष लगाना व्याजकी आजीविका करना, ब्रह्मचर्यमें मैथुन करना, तलाव बगीचा स्त्री संतान इनका बेचना ॥ ६१ ॥

व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च ॥
भृताच्चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः ॥ ६२ ॥

व्रात्यता अर्थात् यथायोग्य कालमें उपनयन संस्कार नहीं करना, पितृव्य आदि बांधवोंका त्याग, रुपया लेकर पढ़ाना और रुपया देकर पढ़ना, तिल आदि अविक्रिय वस्तुओं का बेचना ॥ ६२ ॥

सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम् ॥
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥ ६३ ॥

सुवर्ण आदिकी संपूर्ण खानियोंके स्थानका राजाकी आज्ञासे अधिकार जल रोकने के वास्ते बड़े प्रवाहोंको बांधने के अर्थ पुल आदि बांधना औषधियोंके लिये जातिमात्रकी हिंसा करना, अपनी स्त्रीको वेश्या बनाकर आजीवन करना मारण वा मंत्र औषधी आदिको वशीकरण करना ॥ ६३ ॥

इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ॥
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥६४॥

ईंधनके वास्ते हरे गीले वृक्षोंका तोड़ना, देवता पितर आदिकोंके उद्देश बिना पाक करना, निंदित पुरुषोंका अन्न भक्षण करना ॥ ६४ ॥

अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया ॥
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥ ६५ ॥

अधिकार होने पर अग्निहोत्र न करना, चोरी करना, कर्जको कबूल नकरना, श्रुतिस्मृतियोंसे विरुद्ध शास्त्र की शिक्षा मानना, नृत्य गीत बाजा आदिकोंका सेवन करना ॥ ६५ ॥

धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥ ६६ ॥

धान्य तांबा लोहा पशु इनकी चोरी करना, मदिरा पीनेवाली स्त्रीके संग मैथुन करना, स्त्री शूद्र वैश्य क्षत्रिय इनका वध करना, नास्तिकपना से सब उपपातक हैं ६६ ॥

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्या घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः ॥
जैह्म्यं च मथुनं पुन्सि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणको लाठी वगैरहसे पीडा देना, लहसुन विष्ठा आदि अघ्रेय वस्तुओं का सूँघना, कुटिलता, पुरुषके मुख गुदा आदिमें मैथुन करना, इन कामको करने वाले जाति भ्रन्शकर अर्थात् जातिको भ्रष्ट करनेवाले कहे गए हैं ॥ ६७ ॥

खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा ॥
संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६८ ॥

गदहा घोडा ऊंट मृग हस्ती बकरी भेड़ी मच्छी सर्प भैंसा इनके प्रति एक एकका वध करना शंकरी करण कहाता है ॥ ६८ ॥

निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ॥
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ॥ ६९ ॥

निन्दित पुरुषोंसे धनका दान लेना, वणज करना, शूद्रकी सेवा करना, झूठ बोलना, इन कृत्येकोंको अपात्रीकरण जाने ॥ ६९ ॥

कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् ॥
फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७० ॥

कृमि, छोटे जीव, बड़े कीड़े मक्खी आदि जीव इनका मारना मदिरामें मिला हुआ भोजन करना फल ईंधन पुष्प इनकी चोरी करना, धीरज नहीं करना इनको मलिनीकरण "मैलापन" कहते हैं ॥ ७० ॥

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ॥
यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानि सम्यङ्निबोधत ॥ ७१ ॥

ये ब्रह्महत्या आदि यथोक्त जुदे जुदे कहे हुए सब पाप जिन जिन व्रतोंके करनेसे नष्ट होते हैं उन सबोंको सुनो ॥ ७१ ॥

ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् ॥
भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥ ७२ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष अपने मस्तकमें मुरदेके शिरका चिन्ह बनाके बन में कुटी बना वहां बारह वर्षतक वास करे और अपने पाप दूर होनेके अर्थ भिक्षा मांगके भोजन करे ॥ ७२ ॥

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः ।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः ॥७३॥

अथवा ब्रह्महत्यावाला पुरुष शस्त्रोंको धारण करके मरण पर्यन्त युद्धमें सन्मुख रहे, अथवा जलती हुई अग्नि में नीचेको शिर करके तीन चार अपने शरीरको पटक देवे ॥ ७३ ॥

यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा ।
अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥७४॥

अथवा अश्वमेध यज्ञ करे वा स्वर्जित यज्ञ करे तथा गोसव यज्ञ करे अथवा अभिजित् त्रिवृत अग्निष्टुत इन यज्ञ विशेषोंको करे ॥ ७४ ॥

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ।
ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ्नियतेन्द्रियः ॥ ७५ ॥

अथवा ब्रह्महत्या दूर होने के वास्ते थोड़ा भोजन करता हुआ जितेन्द्रिय रहे और चारों वेदोंमें से किसी एक वेदको जपता हुआ चारसौ कोश तक गमन करे ॥ ७५ ॥

सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ ७६ ॥

अथवा ब्रह्महत्या दूर होनेके वास्ते अपना सब धन वेदको जाननेवाले ब्राह्मण के अर्थ दे देवे तथा उस ब्राह्मणको जीवनपर्यन्त भोगने लायक धन देवे अथवा धन धान्य आदि सब वस्तुओंसे युक्त घर दान देवे ॥ ७६ ॥

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् ।
जपेद्वा नियताहारस्त्रिवैं वेदस्य संहिताम् ॥ ७७ ॥

पसही आदि हविष्य अन्नोंका भोजन करे और प्रतीची सरस्वती नदीके प्रति गमन करे अथवा नियमपूर्वक आहार करता हुआ तीनों वेदों की संहिता को पढ़े ॥ ७७ ॥

कृतवापनोतु निवसेद्ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ।
आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥ ७८ ॥

बाल, नख, डाढ़ी, मूंछ, इनको मुँडाये हुए रहे और ग्रामके वाहर वास करे अथवा गौओंके स्थानमें वास करे तथा पवित्र आश्रममें वा वृक्षकी जड़के नीचे वास करे और गौ ब्राह्मणोंके हितमें रत रहे ॥ ७८ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥ ७९ ॥

ब्राह्मणोंके वास्ते अथवा गौओंके वास्ते शीघ्रही प्राणोंको त्याग देवे क्योंकि गौ ब्राह्मणकी रक्षा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्यासे छूट जाता है ॥ ७९ ॥

त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा ।
विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥ ८० ॥

ब्राह्मणका सर्वस्व धन हरनेमें तीन वार शक्तिके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त हुआ पुरुष उस सर्वस्व धन हरणकी ब्रह्महत्यासे छूट जाता है और उस धन हरनेके निमित्तमें जो ब्राम्हणका मरना हो जावे तो भी इसी विधानके करनेसे उस दोषसे छूट जाता है ॥ ८० ॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ।
समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८१ ॥

इस प्रकारसे नित्य प्रति ब्रह्मचर्यमें सावधान रहनेवाला पुरुष बारह वर्ष व्यतीत होनेमें ब्रह्महत्याके पापको दूर कर देता है ॥ ८१ ॥

शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे ।
स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥ ८२ ॥

अथवा अश्वमेध यागमें ऋत्विक् ब्राह्मणोंमें और क्षत्रियोंके समागमोंमें ब्रह्महत्याके पापको कहके फिर अवभृथस्नान करके उस ब्रह्मत्यासे छुट जाता-है ॥ ८२ ॥

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ।
तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति ॥ ८३ ॥

धर्मका उपदेश करनेसे ब्राह्मण धर्मका मूल है और उसका अनुष्ठान करनेसे राजा अग्रभाग कहाता है इसवास्ते उनके समागममें अश्वमेध यज्ञमे पापका निवेदन करके अवभृथस्नान करनेसे वह शुद्ध हो जाता है ॥ ८३ ॥

ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि दैवतम् ।
प्रमाणं चैव लोकस्य ब्रह्मात्रैव हि कारणम् ॥ ८४ ॥

ब्राह्मण उत्पत्ति मात्रसेही देवताओंका देव है, यहां मनुष्योंमें प्रत्यक्ष वेदही का प्रमाण है, उस वेदको धारण करनेवाला ब्राह्मणही है ॥ ८४ ॥

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनः सुनिष्कृतिम् ।
सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक् ॥८५॥

वेदको जाननेवाले ब्राह्मणोंको मध्यमें तीनों वेदोंको जाननेवाले तीन वि-द्वान् उस पापके प्रायश्चित्तको कहें, उनकी वाणी उसके पवित्र करनेके वास्ते हैं, क्योंकि विद्वानोंकी वाणी पवित्र कही है ॥ ८५ ॥

अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः ।
ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥ ८६ ॥

इस प्रायश्चित्त गुणविधिसे अन्य कोईसे प्रायश्चित्तको समाधान होके ब्राह्मण आदि जो करता है वहभी ब्रह्महत्याके पापको दूर कर देता है अर्थात् इन विधियोंके बीचमें एक कोई भी विधि करनेसे बह्महत्या दूर हो जाती है ॥ ८६ ॥

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ।
राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥ ८७ ॥

ब्राह्मणीके विना जाने हुए गर्भको मारनेपर, या क्षत्रिय वैश्या रजस्वली ब्राह्मणी इन स्त्रियोंको मारने पर इसी व्रतको करनेसे हत्या दूर होत है ॥ ८७ ॥

उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा ।
अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥ ८८ ॥

सुवर्ण भूमि आदिके विषय में झूठी साक्षी देकर और गुरुके प्रति क्रूर वचन कहकर प्रतिरोध करके किसीको धरोहर मारकर स्त्री मित्र इनका वध करके ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ।
कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ८९ ॥

यह सम्पूर्ण ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त विशेष करके इच्छा किये विना ब्राह्मण के वधमें कहा है और जो इच्छासे अर्थात् जानके ब्राह्मण का बध करता है उसका कुछ प्रायश्चित्त नहीं कहा है ॥ ८९ ॥

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥ ९० ॥

द्विज अज्ञानसे मदिरा को पीयेतो वह गरम जलती हुई मदिरा को पीकर उस

जलती हुई मदिरा से उसका जब शरीर दग्ध हो जावे तब वह उस पापसे छूटता है ॥ ९० ॥

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिवेदुदकमेव वा ।
पयो घृतं वामरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ॥ ९१ ॥

गोमूत्र जल दूध घृत गोवरका रस इनमेंसे एक कोइलेके अग्निसे गरम-करके मरणापर्यन्त पीवे ॥ ९१

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।
सुरपानापनुत्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥ ९२ ॥

अथवा पी हुई मुख्य मदिरापानके दोष निवृत्तिके वास्ते वर्षदिन पर्यंत जीर्ण वस्त्र रक्ख जटा धारण करे और मदिरा पीनेका चिन्ह बना लेवे और रात्रिके समयमें एक वार चावलों के किणकोंको अथवा तिलोंकी खरी को भक्षण करे ॥ ९२॥

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च नसुरां पिवेत् ॥ ९३ ॥

सुरा मदिरा अन्नोंका मल है और वह मल पापरूप कहाता है इस वास्ते ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये मदिराको न पीवें ॥ ९३ ॥

गौडी पैठी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ ९४ ॥

गौड़ी याने गुड़से बनाई हुई पैष्टी, पीठीसे बनाई हुई माध्वी, अर्थात् महुवा वृक्षके पुष्पोंसे बनाई हुई ऐसे तीन प्रकारकी मदिरा होती है इनमें जैसी एक पीयी तैसे सब पीई इसवास्ते द्विजोत्तमोंको नहीं पीनी चाहिये ॥ ९४ ॥

यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥ ९५ ॥

मदिरा मांस मदिराका आसव ये यक्ष राक्षस पिशाच इनके अन्न हैं इस वास्ते देवताओं के हविषको भोजन करनेवाले ब्राह्मणों को इनका भक्षण नहीं

करना चाहिये ॥ ९५ ॥

अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत् ।

अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः । ९६ ॥

मदिरापानके मदसे मूढ हुआ ब्राह्मण पतित हो जावे अथवा अपवित्र हुआ वेदके वचनोंको उच्चारण करे अथवा ब्रह्महत्या आदि अकार्यको कर देता है ॥ ९६ ॥

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ।

तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥ ९७ ॥

जिस ब्राह्मणके शरीरगत जीवात्मा एक वार भी मदिरासे मिल जाता है तथा एक वार भी जो ब्राह्मण मद्यपीता है उसका ब्राह्मणपना दूर हो जाता है और वह शूद्रभावको प्राप्तहो जाता है ॥ ९७ ॥

एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥ ९८ ॥

यह मदिरापानका अनेक प्रकारका प्रायश्चित्त कह दिया है अब इसे आगे सुवर्णकी चोरीका प्रायश्चित्त कहेंगे ॥ ९८ ॥

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ।

स्वकर्म ख्यापयन् ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥ ९९ ॥

सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण राजाके पास जाके अपने चोरीके सब कर्मोंको कहै और राजासे यह कहै कि मुझको आप सजा दो । यहां ब्राह्मण शब्दसे मनुष्यमात्रका ग्रहण है ॥ ९९ ॥

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ।

वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥ १०० ॥

उस चोरसेहीं दिये हुए, मूसलको राजा ग्रहण करके एकवार तिस चोरको

हनन करे वह चोर तिस वधसे शुद्ध होजाता है और ब्राह्मण चोर तप करनेसे शुद्ध होता है ॥ १०० ॥

तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ १०१ ॥

सुवर्णकी चोरीके पापको तप करके दूर करनेकी इच्छावाला ब्राह्मण पुराने वस्त्रधारण कर वनमें पूर्वोक्त ब्रह्मवध प्रायश्चित्तमें कहा व्रतका आचरण करे १०१

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ।
गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ १०२ ॥

इन कहे हुए व्रतोंकरके सुवर्णकी चोरीके पापसे द्विज दूर होता है और गुरुकी स्त्रीके सङ्ग गमनके पापको आगे कहेहुए इन व्रतोंकरके दूर करे ॥ १०२ ॥

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये ।
सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना न विशुद्ध्यति॥१०३॥

गुरुकी स्त्रीसे गमनकरने वाला तथा मातासे गमनकरनेवाला पुरुष जलते हुए लोहाके अंगारोंपर शयन करे अथवा लोहाकी अग्निसे जलती हुई स्त्रीकी मूर्त्तिको पकड़के मर जानेसे शुद्ध होता है ॥ १०२ ॥

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ ।
नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥ १०४ ॥

अथवा अपने लिङ्गको और वृषणोंको आपही काटके अपनी अंजलीमें लेके मरणपर्यन्त नैर्ऋत दिशामें चला जावे, कुटिलतासे न चले ॥ १०४ ॥

खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने ।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः ॥ १०५ ॥

खटियाके पाया आदिको धारण रक्खे और पुराने वस्त्रोंको धारण करे डाढी आदि नखोंको और वालों वढावे विजन वनमें विचरता हुआ कृच्छ्र प्रापजात्य व्रतको समाधान होके वर्षपर्यंत करे ॥ १०५ ॥

चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः ।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये ॥ १०६ ॥

गुरुकी स्त्रीके संग मैथुन दोषकी निवृत्तिके वास्ते जितेंद्रिय होके तीन महीनोंतक चांद्रायण व्रतको करे शामक आ दि हविष्यान्न वा शाक मूल फल यवागू इनका भोजन करे ॥ १०६ ॥

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम् ।
उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नाना विधैर्व्रतैः ॥ १०७ ॥

इन उक्तव्रतोंकरके ब्रह्महत्या आदि महापतकीके पापीको दूर करवावे और गोवध आदि उपपातकी पुरुषके पापोंको आगे कहेहुए इन अनेक प्रकारके व्रतोंकरके दूर करे ॥ १७ ॥

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत् ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ १०८ ॥

गौकी हिंसा करनेवाला जन एक महीनातक जवोंका दलिया पीवे और शिखा नख मूंछ डाढी सहित क्षौर करवाके तिस मृत गौके चामको ओढके गौओंके स्थानमें तीन महीनोंत कवास करे ॥ १०८ ॥

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥१०९॥

गोमूत्रसे स्नान करे, जितेंद्रिय रहे, कृत्रिमलवणके विना थोडासा भोजन करे, एकदिन भोजन करके दूसरे दिन सायंकाल भोजन करे ऐसा विधान दो महिनो तक करे ॥ १०९ ॥

दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥ ११० ॥

दिनमें प्रातःकाल तिन गौओंके पीछे पीछे अनुगमन करे और उनकी रजको [illegible] भोजनकरे वा जलपान करे और तिनकी टहलकरके प्रणाम

कर फिर रात्रिमें भीत आदिके सहारे होके स्थित रहे ॥ ११० ॥

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ।
आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥ १११ ॥

और जब वे गौ खडी होवें तब आप भी खडा हो जावे जब तब वे चलैं चलै जब बैठें तब बैठें ऐसे नियममें रहे मत्सरतासे रहित रहे ॥ १११ ॥

आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥ ११२ ॥

और व्याधिसे पीडित, चोर व्याघ्र आदिकोंके भयसे आक्रांत पडी हुई कीचमें घसी हुई ऐसी गौको सब उपायोंकरके शक्तिके अनुसार छुटवा देवे ॥ ११२ ॥

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥ ११३ ॥

और घाम पड़ता हो, मेघ वर्षता हो, शीत पडती हो, अत्यंत वायु चलती हो ऐसे समयमे गौकी रक्षा किये विना अपनी रक्षा न करे अर्थात् बनसके तो अवश्य गौकी रक्षा करे ॥ ११३ ॥

आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवाखले ।
भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ ११४

अपने अथवा अन्य जनके घरमें तथा खेतमें वा धान्यमे इकट्ठा करनेकी जगह गौको चरती हुईको तथा बच्छेको दूध पीते हुएको देखके कहे नहीं ॥ ११४ ॥

अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ।
स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ ११५ ॥

इस उक्त विधिसे जो गोवध करनेवाला पुरुष गौओंका अनुचर होता है वह गोहत्याके किये हुए पापसे तीन महिनोंमे छूट जाता है ॥ ११५ ॥

वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ ११६ ॥

दश गौ एक वृपभ ऐसे ग्यारह गौओंका दान करे और जो यदि सम्यक् प्रायश्चित करनेवाला वह पुरुष इनको न दे सके तो अपना सर्वस्व धन वेदको जाननें वाला ब्राह्मणोंके अर्थ दे देवै ॥ ११६ ॥

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ।
अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥ ११७॥

गोवध आदि उपपातकी पुरुष इन्हीं व्रतोंको करेऔर शुद्धिकेवास्ते आगे कहे गुण अवकीर्णीके विना चांद्रायण व्रतको भी करे ॥ ११७ ॥

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ।
पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ ११८ ॥

आगे कहा हुआ अवकीर्णी जन रात्रीमें चौराहेमें काने गधेके पाकयज्ञके विधानसे नैर्ऋति देवताका पूजन करे ॥ ११८ ॥

हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा ।
वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाहुतीः ॥ ११६ ॥

पीछे वहां चतुष्पथमें विधिपूर्वक होमकरके उसके अंतमें समासिञ्चन्तु मरूतः इस ऋचा करके मारुत इन्द्रवृहस्पति अग्नि इन देवताओंके अर्थ घृतकी आहुति देवे ॥११६॥

कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः ।
अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः॥ १२० ॥

जो ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित हुवा द्विजाति इच्छासे स्त्रीकी योनिमें वीर्यको छोड देता है उसके व्रतके अतिक्रम होनेसे धर्मको जाननेवाले और सब वेदोंके जाननेवाले पुरुष उसको अवकीर्णी कहते है ॥ १२० ॥

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेवच ।
चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥ १२१ ॥

वेद विद्या पढ़ने के व्रत ब्रह्मचर्य व्रत से रहनेवाला जो यदि अवकीर्णी हो जावे तो फिर उसके ब्राह्म तेजको मारुत इन्द्र बृहस्पति और अग्निये चार देते हैं इस वास्ते इनके अर्थ आहुति दे ॥ १२१ ॥

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् ।
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ १२२ ॥

जब अवकीर्णी पाप उत्पन्न हो जाये तब पूर्वोक्त गर्दभयाग आदि करके

गधा के चामको धारण करके अपने कर्मको कहता हुआ सात घरों में भिक्षा मांगे ॥ १२२ ॥

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ॥
उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुद्ध्यति ॥ १२३ ॥

उन सातों घरोंसे प्राप्त हुई भिक्षाको दिनमें एक समय भोजन करे और सायकाल प्रातःकाल मध्यान्ह इन तीन कालों में स्नान करता हुआ एक वर्षमें शुद्ध होता है ॥ १२३ ॥

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया ॥
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥ १२४ ॥

ब्राह्मण इच्छा से जातिभ्रंश करनेवाले कर्मको करके आगे कहे हुए कृच्छ्र सांतपन व्रतको करे और जो इच्छा विना किया हो तो आगे कहे हुए प्राजापत्य व्रतको करे ॥ १२४ ॥

संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ॥
मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥ १२५ ॥

पूर्वोक्त संकरीकरण और अपात्रीकरण, उच्चाटन आदि जो कृत्य हैं इनके मध्य में एक किसीको इच्छा से करनेमें महीने तक चान्द्रायण व्रतको करे और मलिनीकरणमें किसी कर्मके करनेमें गरम गरम यवागूको तीन दिनतक पीवे १२५

तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥ १२६ ॥

अच्छे नियममें रहनेवाले क्षत्रियके वध होने में ब्रह्महत्याका ,चौथा भाग, तीन वर्षका प्रायश्चित है और व्रतस्थ वैश्यके वध करनेमें आठवां भाग प्रायश्चित्त है और शूद्रके वधमें सोलहवां भाग प्रत्यश्चित्त कहा है १२६

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्यद्विजोत्तमः ।
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ॥ १२७ ॥

इच्छा किये बिना क्षत्रियके मारने के प्रायश्चित्त के वास्ते सुन्दर व्रतका आचरण करनेवाला द्विजोत्तम, एक वृषभ सहित हजार गौओं को अपनी शुद्धि

के अर्थ ब्राह्मणोंके देवे ॥ १२७ ॥

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ।
वसन्दूरतरे ग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः ॥ १२८ ॥

जटा धारण करके ग्रामके समीप वृक्षके मूलमें निवास करता हुआ ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्तके व्रतको नियमपूर्वक तीन वर्षतक करे ॥ १२८ ॥

एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥ १२९ ॥

श्रेष्ठ आचारमें स्थित हुए वैश्यको इच्छा विना मार के ब्राह्मण आदि द्विजाति इसी व्रतको एक वर्षतक करे अथवा एक सौ एक १०१ गौओं को ब्राह्मणोंके अर्थ देवे तब शुद्ध होता है ॥ १२९ ॥

एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहा चरेत् ।
वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥ १३० ॥

इच्छाके विना शूद्रको मारनेवाला पुरुष भी इसी व्रतको छ महीनों तक करे और एक वृषभ और दस सफेद गौओं को ब्राह्मणके अर्थ दान देवे ॥ १३० ॥

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च ।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ १३१ ॥

विलाव नेवला चातक मेंडक कुत्ता गोह उल्लू काग इनके मारने में हत्या निवृत्तिके अर्थ पूर्वोक्त शूद्रहत्याके व्रतका प्रायश्चित्त करे ॥ १३१ ॥

पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनो व्रजेत् ।
उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दैवतं जपेत् ॥ १३२ ॥

अज्ञान से इन विलाव आदिकोंके मारने में तीन रात्रितक दूध पीवे अथवा चार कोशतक मार्गमें चले अथवा नदी आदि स्रोतकेजलमें स्नान कर आपोहिष्ठा० इत्यादिक सूक्त जपे ॥ १३२ ॥

अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ।
पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम् ॥ १३३ ॥

सर्पकी हिंसा करनेवाला मनुष्य ब्राह्मणके अर्थ पैना अग्रभागवाला लोहेका दण्ड दान देवे और नपुंसक सर्पके मारने में पलाल धान्य तुषका भार देवे और एक माषक सीसा दान देवे ॥ १३३ ॥

घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ ।
शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायणम् ॥१३४॥

सुअरके मारनेमें घृतसे भरे घडेका दान देवे; तित्तर पक्षीकी हिंसा करनेवाला द्रोणभर तिल दान देवे तोता पक्षीको मारनेवाला दो वर्षके बछड़ेको दान देवे, क्रौंच पक्षीको मारने पर तीन वर्षके बछड़ेको ब्राह्मणके अर्थ दान देवे ॥ १३४ ॥

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च ।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् ॥१३५॥

हंस बलाका अर्थात् बगुलाका भेद, मोर वानर सिकरा भास पक्षी इनमेंसे एक कोई भी मारनेकी हिंसामें ब्राह्मणके वास्ते गौ दान देवे ॥ १३५ ॥

वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम् ।
अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥ १३६ ॥

घोडाको मारनेपर ब्राह्मण के वास्ते वस्त्र दान देवे और हस्तीको मारके पांच नील वृषोंको दान देवे और बकरा मेंढा इनको मारने पर बैलका दान देवे, गधा मारा जाय तो एक वर्षके बच्छाका दान देवे ॥ १३६ ॥

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।
अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥ १३७ ॥

कच्चे मांसको भक्षण करनेवाले हिंसक व्याघ्र आदिकों को मारने पर दूध वाली गौका दान देवे और मांसको भक्षण नहीं करनेवाले हिरण आदिकों को मारने पर जवान बछडाका दान देवे । ऊंटको मारने पर कृष्णल प्रमाण रत्तीभर सोना देवे ॥ १३७ ॥

जीवनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये ।
चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनवस्थिताः ॥ १३८ ॥

चारों वर्णोंकी स्त्रियाँ जो जारत्व से बिगड़ी हुई हैं ऐसों को मारने पर अपनी शुद्धिके वास्ते चर्मपुट अर्थात् मृगछाला आदि धनुष बकरा मेंढा इनका दान ब्राह्मण आदि यथार्थ क्रमके अनुसार देवे ॥ १३८ ॥

दानेन वध निर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन् ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापनुत्तये ॥ १३९ ॥

जो यदि कोई द्विज सर्पादिक इन जीवोंकी हिंसाके प्रायश्चित्तमें कहे दोनोंको करनेमें समर्थ न होवे तो एक एक पापके प्रायश्चित्तके वास्ते कृच्छ्र प्राजापत्य आदि व्रत करे ॥ १३९ ॥

अस्थिमतां तु सत्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ।
पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ १४० ॥

किरल कांट आदि अस्थिवाले हजार प्राणियोंके वध होनेमें शूद्रकी हत्याके व्रतको करे और अस्थिरहित प्राणियोंको गाडा भरनेके प्रमाण तुल्य मारके शूद्रहत्याके इसी व्रतको करे ॥ १४० ॥

किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे ।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्धयति ॥१४१॥

अस्थिवाले सूक्ष्म जीवोंके वधमें किंचित् दान देना योग्य है और अस्थि-रहित आदि क्षुद्रजीवोंके वधमें प्राणायामसे शुद्ध हो जाता है ॥ १४१ ॥

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ।
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥१४२॥

आम्र आदि फलके वृक्षोंके काटनेमें और कुब्जक आदि गुच्छे वल्ली लता पुष्पवाली बेल कोहड़ा आदिकी बेल इनके काटनेमें गायत्री आदि ऋचाको सौ बार जपे ॥ १४२ ॥

अन्नाद्यजानां सत्वानां रसजानां च सर्वशः ।
फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ १४३ ॥

अन्न आदिकोंमें उत्पन्न हुए और गुड आदि रसोंमें उत्पन्न हुए और गूलर

आदि फलोंमें उत्पन्न हुए तथा पुष्पोंमें हुए संपूर्ण जीवोंके वधमें घृत प्राशन, घीके खानेसे पापकी शुद्धि होती है ॥ १४३ ॥

कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने ।
वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥ १४४ ॥

खेतीमें उत्पन्न हुए धान्य औषधी आदिकोंका अथवा आपही उत्पन्न हुए धान्य आदिकोंको वृथा छेदन करनेवाला पुरुष एक दिन दूधका आहार करके व्रत करे और गौओंके पीछे चले ॥ १४४ ॥

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् ।
ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे ॥ १४५ ॥

इन कहे हुए प्रायश्चित्तों करके ज्ञानसे वा अज्ञानसे किये हुए संम्पूर्ण हिंसाके पापको दूर करे। अब अभक्ष्य वस्तुके भक्षणके प्रायश्चित्तको आगे सुनो॥१४५॥

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥ ४६ ॥

अज्ञानसे अर्थात् विना जाने हुए मदिराको पीके संस्कार करनेसे शुद्ध होताहै और इच्छा पूर्वक पीने पर प्राणों का अन्त करनेसे शुद्धि होती है यही शास्त्रकी मर्यादा है ॥१४६ ॥

अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा ।
पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शङ्खपुष्पीश्रितं पयः ॥ १४७ ॥

सुराके पात्रमें स्थित तथा मदिराके भांडमें स्थित हुए जलको पीने पर पांच दिनतक शंख पुष्पी, औषधीमें पके हुए दूधको पीवे तब शुद्ध होता है ॥१४७॥

स्पृष्ट्वा दत्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ।
शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ॥ १४८ ॥

मदिराको स्पर्श करके वा देके अथवा स्वस्तिवाचनपूर्वक ग्रहण करके और शूद्रका उच्छिष्ट जलको पीने पर तीन दिनतक डाभके क्वाथ किये हुए जलको पीवे ॥ १४८ ॥

ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः ।

प्राणानप्सु त्रियम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥१४६॥

सोम यागको किये हुए ब्राह्मण मदिरा पीनेवालेके मुखकी गन्धिको सूँघने पर तीन वार जलमें प्राणायाम कर घृतको प्राशन कर शुद्ध होता है ॥ १४६ ॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ।

पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ १५० ॥

ब्राह्मण आदि तीनों द्विजातिवर्ण अज्ञानसे वराह आदिकोंकी विष्ठा मनुष्यादिकोंका मूत्र मदिरासे स्पर्श हुवा रस आदिक भक्षण कर लेवें तो फिर संस्कार करानेसे शुद्ध होते हैं ॥ १५० ॥

वपनं मेखलादण्डौ भैक्षचर्या व्रतानि च ।

निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ १५१ ॥

शिरको मुड़ा कर मेखला दण्ड धारण करना भिक्षा मांगना मधुमांस वर्जन आदि व्रत ये सब द्विजातियोंके फिरसे संस्कार करानेमें निवृत्त हो जाते हैं अर्थात् दूसरे वार उपनयन आदि संस्कारमें इनका न करे ॥ १५१ ॥

अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च ।

जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥ १५२ ॥

अभोज्य अर्थात् यज्ञ आदि रहित अन्नको भोजन करके वा स्त्री शूद्र इत्यादिके जूंठे अन्नको भक्षणकरके और मांसको तथा लहसुन आदि अभक्ष्यको भक्षण करने पर सात रात्रितक जवोंके दलियाको पीवे ॥ १५२ ॥

शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वामेध्यान्यपि द्विजः ।

तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥ १५३ ॥

सिरका आदि शुक्तवस्तु और बहेड़ा आदि कषायवस्तु और अन्य अशुचि पवित्र वस्तुओंको द्विज भक्षण करके तबतक अशुचि रहता है कि जबतक वह पचे नहीं ॥ १५३ ॥

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ।

प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ १५४ ॥

ग्रामका सूअर, गदहा, ऊंट गीदड, वानर, काक इनके विष्ठा मूत्रको भक्षण करने पर द्विज चान्द्रायण व्रतको करे ॥ १५४ ॥

शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च ।
अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ १५५ ॥

वायु आदिसे सूखे हुए मांस और भूमिमें उत्पन्न हुए कुकुरमुत्ता आदि शाकको और विना जाने हुए हिंसाके मांस आदिको भक्षण करनेपर द्विज इसी व्रतका आचरण करे ॥ १५५ ॥

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे ।
नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ १५६ ॥

कच्चा मांसभक्षी व्याघ्र आदिक ग्रामका सूवर, ऊँट, मुरगा, मनुष्य, काग गधा इनमें प्रत्येकके मांसको जानके भक्षण करनेवाला आगे कहे हुए तप्तकृच्छ्र व्रतको करे ॥ १५६ ॥

मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्तको द्विजः ।
स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥ १५७ ॥

जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण सपिंडी श्राद्धसे पहले महीने महीने श्राद्धके अन्नको मासिक श्राद्धको भोजन करता है वह तीन दिनतक उपवास करे और एक दिन जलमें वास करे ॥ १५७ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथंचन ।
स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥ १५८ ॥

जो ब्रह्मचारी किसी समय मधु मांसको भक्षण कर लेवे तो वह प्राजापत्य व्रतको करके शेष रहे अपने ब्रह्मचर्य व्रतको यापन करे ॥ १५८ ॥

बिडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च ।
केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥ १५९ ॥

विलाव, काग, मूसा, कुत्ता, नेवला इनके जूठे अन्नको भक्षण करके तथा बाल कीडा आदिकोंसे युक्त अन्नको भक्षण करके सुवर्चला अर्थात् ब्राह्मी औषधीके काढ़ेको पीवे ॥ १५९ ॥

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ।

अज्ञान भुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः ॥१६०॥

आत्माको शुद्धिकी इच्छा करने वाले पुरुषको अभोज्य अन्न भक्षण नहीं करना चाहिये और प्रमादसे भक्षण किया जाय तो वमन कर देवे, वमन न होवे तो प्रयश्चित्त करके शीघ्रही शुद्धि करे ॥ १६० ॥

एषोऽनाद्यदनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः ।
स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ॥ १६१ ॥

अभक्ष्य वस्तुओंके भक्षण करनेमें जो प्रायश्चित्त है उनका यह अनेक प्रकारका विधान कहा है । अब चोरी का पाप करने वालोंके प्रायश्चित्त को सुनो ॥ १६१ ॥

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुद्ध्यति ॥ १६२ ॥

ब्राह्मण ब्राह्मणके घरसे धान्य भात आदि सिद्धान्न धन इनकी चोरी इच्छासे करे तो वह प्राजापत्य व्रतको वर्षदिन तक करनेसे शुद्ध होता है ॥ १६२ ॥

मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ।
कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ १६३ ॥

पुरुष स्त्री खेत इनमेंसे किसी एकके हरनेमें अथवा बावडी कूवाँ इनके सम्पूर्ण जलके हरनेमें चान्द्रायण व्रत करने को मन्वादिकों ने कहा है ॥ १६३ ॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥ १६४ ॥

थोड़े मूल्यवाले और थोड़े प्रयोजन वाले द्रव्योंको अन्यके घरसे चोरी करके उस हरे हुए द्रव्यको मालिकके वास्ते देवे आगे कहा हुआ कृच्छ्र सांतपन व्रतको अपनी शुद्धिके अर्थ करे ॥ १६४ ॥

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ॥
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ १६५ ॥

लड्डु खीर आदि भक्ष्यभोज्य पदार्थों के हरने में सवारी शय्या आसन पुष्प मूल फल इनके हरने में प्रत्येक में, पञ्चगव्य का पीना शुद्धिकारक है ॥ १६५ ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ॥
चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ १६६ ॥

तृण काष्ठ वृक्ष सूखे अन्न गुड़ वस्त्र चाम मांस इनके चुराने में तीन रात्रि तक भोजन नहीं करे ॥ १६६ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य राजतस्य च ॥
अयः कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता ॥१६७॥

मणि मोती मूंगा तांबा चांदी लोहा कांसा पत्थर इनके चुराने में बारह दिन तक चावलों के कणों को भक्षण करे यहां सब जगह द्रव्य की अधिकता या न्यूनता के अनुसार प्रायश्चित्त है ॥ १६७ ॥

कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च ॥
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥ १६८ ॥

कपास रेशम ऊन बैल घोड़ा पक्षी गन्ध औषधी रज्जु इनके चुराने में तीन दिन तक दूध का आहार करे और पूर्वोक्त की तरह इन चोरी की वस्तुओं को मालिक को सौंप देवे ॥ १६८ ॥

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ॥
अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ १६९॥

इन कहे हुए व्रतों करके द्विज चोरी के पाप को न करे और अगम्या स्त्री के संग मैथुन करने के पाप को आगे कहे हुए व्रतों से दूर करे ॥ १६९ ॥

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ॥
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥१७०॥

अपनी भौजाई बहन मित्र की स्त्री, पुत्रवधू, कुमारी चांडाली इनमें प्रत्येक

विपे मैथुन से वीर्य स्खलित करने पर पूर्वोक्त गुरुभार्या संग में कहे हुए प्रायश्चित्त को करे ॥ १७० ॥

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीया मातुरेव च ।
मातुश्च भ्रातुस्तनया गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१७१॥

पिताकी बहनकी और माताकी बहनकी लड़की माताकी बहन भाईकी पुत्री इनके संग मैथुन होजाय तो निवृत्ति के अर्थ चांद्रायण व्रतको करे ॥ १७१ ॥

एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान् ।
ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः ॥ १७२ ॥

इन कही हुई तीनोंको बुद्धिमान् पुरुष विवाहै नहीं क्योंकि बांधवपने होनेसे ये विवाहने वा मैथुन करनेको योग्य नहीं हैं इनको विवाहनेवाला जन नरकमें गिरता है ॥ १७२ ॥

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥१७३॥

पुरुष घोड़ी आदि पशुकी योनिमें वा रजस्वला स्त्रीकी योनिमें वा स्त्रीयोनि विना अन्य कहीं स्त्रीके अंगमें वा जलमें वीर्य को छोड़े तो कृच्छ्र सान्तपन व्रतको करे ॥ १७३ ॥

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥१७४॥

पुरुषमें मैथुन करके अथवा बैलोंकी सवारी रथ बहेल आदिमें तथा दिनमें स्त्रीके संग मैथुन करे तो वस्त्रों सहित स्नान करे ॥ १७४ ॥

चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥१७५॥

चाण्डाली नीच जातिकी स्त्री इनके संग ब्राह्मण अज्ञानसे मैथुन करके और इनके हाथका भोजन करके और प्रतिग्रह लेके पतित हो जाता है और जो जानके ये सब बात करता है वह इनकीही जातिमें मिल जाता है ॥ १७५ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि ।

यत्पुन्सः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥ १७६ ॥

इच्छा करके जारिणी स्त्रीको पति एक घरमें रोक रक्खे और जो पुरुषको सजातीय परस्त्रीसंगमें प्रायश्चित्त कहा है वही इससे करवावे ॥ १७६ ॥

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥१७७॥

वह स्त्री यदि सजातीय पर पुरुषसे एकवार संग कर फिर प्रायश्चित्त करें पीछे सजातीय पुरुषके संग फिर वश होके बिगड़ जावे तो कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करे। वह व्रत मन्वादिकोंने इसको पवित्र करनेवाला कहा है ॥ १७७ ॥

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः ।
तद्भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ १७८ ॥

चाण्डालीके संग मैथुन करनेसे ब्राह्मण जो एकरात्रीमें पापको इकट्ठा करता है उस पापको भोग करता हुआ और गायत्री आदि जप करता हुआ तीन वर्ष में दूर करता है ॥ १७८ ॥

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः ।
पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः ॥ १७९ ॥

यह हिंसा अभक्ष्य-भक्षण, चोरी अगम्यागमन, इन पापोंको करनेवाले पुरुषों को प्रायश्चित्त कहा है अब पतित पुरुषोंके साथ रहनेवाले पुरुषोंकी इन आगे कही हुई शुद्धियोंको सुनो ॥ १७९ ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् ॥१८०॥

पतित पुरुषोंके साथ सवारी आसन भोजन इत्यादिकोंको मिलके करनेवाला संग विचरनेवाला पुरुष वर्षदिनमें पतित होजाता है और यज्ञआदि करानेसे वा उपनयन संस्कार करानेवाले एक संग भोजन करनेवाले ऐसे पुरुष तात्कालही पतित हो जाते हैं ॥ १८० ॥

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्संसर्गविशुद्धये ॥ १८१ ॥

जो इन पतित पुरुषोंके मध्यमें जिस पापकारी पुरुषके संग मेल करता है वह उसीके व्रतको चौथे हिस्सेसे हीनकरे जैसे ब्रह्मघाती पुरुषके संग मेल करने वाला पुरुष उसीके प्रायश्चित को द्वादश वर्षसे चतुर्थांश हीन करे तब शुद्धि होती है ॥ १८१ ॥

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ।
निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥१८२॥

महापातकी पुरुषके जीते हुए ही आगे कही हुई विधिसे सपिंड समानोदक भाइयोंको ग्रामसे बाहिर नवमी तिथिके दिन सायंकालमें बाँधव ऋत्विक गुरु इनके समीप उसकी उदक क्रिया अर्थात् प्रेतक्रिया करनी योग्य है ॥ १८२ ॥

दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा ।
अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह ॥ १८३ ॥

सपिंड समानोदकोंसे प्रयुक्त की हुई दासी जलसे भरे हुए घटको प्रेत कलश की तरह दक्षिणाभिमुख होको पैरसे फेंक देवे जिस्से वह पतित पुरुष निरुदक हो जावे और वे सपिंड तथा समानोदक भाई तिसका एक दिनका अशौच रक्खें ॥ १८३ ॥

निवर्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषणसहासने ।
दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैव हि लौकिकी ॥१८४॥

उस पतित पुरुषके साथ सपिंड भाइयोंका संभाषण, एक आसनपै बैठना घर में धनका हिस्सा निमन्त्रण आदि ये सब लोकव्यवहार निवृत्त हो जाते हैं॥१८४॥

ज्येष्ठता च निवर्तेत ज्येष्ठवाप्यं च यद्धनम् ।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान् गुणतोऽधिकः॥१८५॥

जो बड़ा भाई पतित हो जावे तो उसके छोटे भाई प्रत्युत्थान आदि उसका सत्कार न करें और बड़े भाईका जो धनमें विशेष हिस्सा होता है उसको न देवें, किंतु जो छोटा भाई गुणवान् हो वह उसके हिस्सेको लेवे ॥ १८५ ॥

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् ।
तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ १८६ ॥

और जो यदि वह पतित भाई प्रायश्चित्त कर देवे तो अन्य सपिंड समानोदक भाई उसीके प्रायश्चित्त किये हुए अपवित्र जलाधारमें स्नानकरके जलके भरे हुए नवीन घटको फेंक देवे ॥ १८६ ॥

स त्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकम् ॥
सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥ १८७ ॥

वह प्रायश्चित्त करनेवाला मनुष्य उस जलके घटको जलमें फेंककर फिर अपने घरमें प्रवेश करे और पहलेकी तरह अपने सब ज्ञातिकर्मोंको करे ॥ १८७ ॥

एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ॥
वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥ १८८ ॥

पतित स्त्रियोंको भी यही उदक क्रिया करनी चाहिये और इनके भर्त्ता आदिक इनके वास्ते वस्त्र अन्नपान आदिक देते रहें और घरके पास रहनेको कुटी बनवा देवें ॥ १८८ ॥

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किञ्चित्सहाचरेत् ॥
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ १८९ ॥

प्रायश्चित्त किये विना पापकारी पुरुषोंके साथ दान प्रतिग्रह आदि कुछ प्रयोजन न करे और जो प्रायश्चित्त कर चुके उसके पापकी कुछ भी निंदा न करे किन्तु पहले की तरह व्यवहार रक्खे ॥ १८९ ॥

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ॥
शरणागतहन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत् ॥ १९० ॥

बालकको मारनेवाला तथा कृतघ्नी अर्थात् उपकार करनेवालेको मारनेवाला ये सब प्रायश्चित्त कर देवे तो भी इनके साथ संभाषण आदि मेल न करे ॥ १९० ॥

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधिः ॥
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥ १९१ ॥

जिन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका उपनयन संस्कार यथोक्त कालमें नहीं होता

उनको तीन प्राजापत्य व्रत करवाके यथार्थ शास्त्रके अनुसार उपनयन करवा देवे ॥ १९१ ॥

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ते द्विजाः ॥
ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥ १९२ ॥

जो उपनयन संस्कारवाले द्विज शूद्रसेवा आदि विकर्ममें स्थित हैं वे यदि प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा करें तो ब्राह्मणोंसे त्यक्त हुए उनका भी यही प्राजापत्य प्रायश्चित्त है ॥ १९२ ॥

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ॥
तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥ १९३ ॥

निन्दित कर्म दुष्प्रतिग्रह कर्म आदिसे जो ब्राह्मण धनको संचय करते हैं उस धनके त्यागनेसे और आगे कहे हुए जप तप करके शुद्ध होते हैं ॥ १९३ ॥

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ॥
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥ १९४ ॥

सावधान होके तीन हजार गायत्रीका जप करके महीनातक गौओंके स्थान में दूधका आहार करके दुष्प्रतिग्रहके दोषसे ब्राह्मण छूट जाता है ॥ १९४ ॥

उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम् ॥
प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम् ॥१९५॥

दूधके आहारसे कृश दुर्बल देहवाले और गौओंके स्थानसे आये हुए तथा नम्र हुए उस आदमी से पूछे कि हे सौम्य फिर ऐसा प्रतिग्रह न लेवेगा और हमारे साथ साम्यता चाहते हो ॥ १९५ ॥

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ॥
गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम् ॥ १९६ ॥

फिर वह प्रायश्चित्त करनेवाला ब्राह्मण ऐसा कहे कि आपका कहना सच है मैं ऐसा न करूंगा ऐसा कहता गौओंके चरने वास्ते घास देवे पीछे गौओं करके पवित्र हुए उस देशमें ब्राह्मण उसको अंगीकार कर लेवें ॥ १९६ ॥

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ॥
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ १६७ ॥

पहले कहे हुए उपनयन संस्कारके बिना व्रात्य संज्ञक हुए पुरुषोंको यज्ञ आदि करवाके अथवा माता पिता आदिकोंकी और्ध्वदेहिक निषिद्ध श्राद्ध आदि करके श्येन आदि अभिचार करके वा अहीन यज्ञ विशेष करके तीन कृच्छ्र व्रतों करके शुद्ध होता है। १६७ ॥

शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः ॥
संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥ १६८ ॥

शरणागत अर्थात् रक्षाके वास्ते आये हुएको त्यागके और नहीं पढ़ानेके योग्य वेदको पढ़ाके द्विज उस पापको वर्ष पर्यन्त जवोंका आहार करके दूर करता है ॥ २६८ ॥

श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च ।
नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ १६६ ॥

कुत्ता, गीदड़, गधा, मनुष्य, घोड़ा, ग्राम्य शूकर, क्रव्याद अर्थात् बिलाव आदि इनसे डसा हुआ फड़ा हुआ मनुष्य प्राणायाम करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥१६६॥

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा ॥
होमाश्च सकला नित्यमपाङ्क्त्यानां विशोधनम ॥२००॥

पंक्तिरहित पतित तस्कर आदिकोंको शुद्धिके वास्ते, एक महीने तक तीन दिन भोजन नहीं करके चौथे दिन तीसरे पहर भोजन करना वेद संहिताका जप करना अनेक प्रकारके होम करना यह प्रायश्चित्त कहा है ॥ २०० ॥

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः ॥
स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥२०१॥

इच्छा करके ऊंटकी सवारी पर चढ़के अथवा गधेकी सवारी पर चढ़के ब्राह्मण नंगा होके स्नान करके बहुतसे प्राणायाम करनेसे शुद्ध होता है ॥ २०१ ॥

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं सन्निवेश्य च ॥

सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति ॥ २०२ ॥

जलके विना अर्थात् जलसे शुद्धि किये विना वा जलके मध्यमें मूत्र वा विष्ठाका त्याग करके वस्त्रों सहित ग्रामसे बाहिर नदी आदिमें स्नान करने से तथा गौको स्पर्श करनेसे शुद्ध होता है ॥ २०२ ॥

वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ॥
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥ २०३ ॥

वेदविहित अग्निहोत्री आदि नित्यकर्मोंके लोप होनेमें, तथा स्नातक छूट जानेमें व्रतके लोप होजाने में एक दिन तक भोजन नहीं करना यह प्रायश्चित्त है ॥२०३॥

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥
स्नात्वाऽनश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥ २०४ ॥

ब्राह्मण को हूं, चुप, ठहरो इत्यादि वचन कहके बड़े आदमीको तू इत्यादि एक वचन कहके नमस्कारके समयसे लेके बाकी रहे सब दिनमें सूर्यास्त तक स्नान करके और उनके पैर पकड़के तथा उस दिन कुछ भोजन नहीं करके उनको प्रसन्न करे ॥ २०४ ॥

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वा बध्य वाससा ॥
विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ २०५ ॥

ब्राह्मणको तृण करके भी ताड़ना देके अथवा उसके कंठमें वस्त्र आदि बांधके वा उसको विवादसे जीतके फिर उसको प्रणाम आदिसे प्रसन्न करे ॥ २०५ ॥

अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च ॥
जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते ॥ २०६ ॥

ब्राह्मणको मारनेकी इच्छा से लाठी आदिके उठानेसे सौ वर्ष तक नरकमें वास होता है और लाठी आदिका प्रहार करनेसे मारने से हजार वर्ष तक नरक में वास होता है ॥ २०६ ॥

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले ॥
तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत ॥ २०७ ॥

प्रहार किए हुए ब्राह्मण के शरीर से निकला हुआ रुधिर पृथ्वी में गिर कैं जितने धूल के किणकों को ग्रहण करता है उतने ही हजार वर्षों तक ब्राह्मण पर प्रहार करनेवाला नरक में रहता है ॥ २०७ ॥

अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥२०८॥

ब्राह्मण को मारने की इच्छा से लाठी उठा के कृच्छ्र व्रत करे और लाठी कों मार के अत्यन्त कृच्छ्र आगे कहे व्रत को करे और मार के उसके शरीर में रुधिर निकास के कृच्छ्र और अत्यन्त कृच्छ्र इन दोनों व्रतों को करे ॥ २०८ ॥

अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपनुत्तये ॥
शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥२०९॥

बिना कहे हुए प्रायश्चित्तों को पाप उतरने के वास्ते अपनी सामर्थ्य देख कैं और उस पाप को देखके अनुमान माफिक प्रायश्चित्त करे ॥ २०९ ॥

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ।
तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥२१० ॥

जिन उपायोंकरके मनुष्य पापोंको दूर कर सक्ता है तिन उपायोंको देवता ऋषि, पितर इन्होंसे सेवित किये हुयोंको तुम्हारे आगे कहेंगे ॥ २१० ॥

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन् द्विजः ॥२११॥

प्राजापत्यव्रत करता हुआ द्विज तीन दिनतक प्रातःकाल भोजनके समय आहार करे और पीछे तीन दिनतक सायंकाल भोजन करे, फिर तीन दिनतक विना मांगे हुए लब्ध भोजनको भोजन करे, फिर तीन दिनतक भोजन नहीं करे ॥ २११ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ २१२ ॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घृत, कुशा का क्वाथ इनको इकट्ठे कर एक एक

दिन भोजन करे पीछे एक दिन कुछ भी भोजन न करे यह कृच्छ्र सांतपन व्रत कहाता है ॥ २१२ ॥

एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः ॥ २१३ ॥

तीन दिन तक एक ग्रास भोजन करे फिर तीन दिन तक सायंकाल एक एक ग्रास भोजन करे फिर तीन दिन तक विना मांगा हुआ लब्ध एक ग्रास भोजन करे, फिर तीन दिन तक कुछ भी भोजन नहीं करे यह अति कृच्छ्र सांतपन व्रत कहाता है ॥ २१३ ॥

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ॥
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ २१४ ॥

तप्तकृच्छ्र व्रत करता हुआ द्विजाति तीन दिन तक गरम जल पीवे, तीन दिन तक गरम दूध पीवे, तीन दिन तक घृत पीवे तीन दिन गरम वायु पीवे ऐसे क्रम से पीवे और एकबार स्नान करने का नियम धारण रक्खे ॥ २१४ ॥

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥ २१५ ॥

जितेन्द्रिय रहे और प्रमाद से रहित रहै, बारह दिन तक भोजन नहीं करै यह पराककृच्छ्र व्रत कहाता है, यह सब पापों को दूर करता है ॥ २१५ ॥

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ २१६ ॥

तीनों वक्त स्नान करता हुआ पूर्णमासी को १५ ग्रास भोजन करके फिर प्रतिपदा से एक २ ग्रास घटाता जावे और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से एक एक ग्रास बढ़ाने लगे ऐसा भोजन करै यह चांद्रायण व्रत कहाता है ॥ २१६ ॥

एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ।
शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ २१७ ॥

इसी संपूर्ण विधि को करता हुआ तीनों काल में स्नान करता हुआ शुक्लपक्ष की प्रतिपदाको एक ग्रास से पूर्णमासी को १५ ग्रास, कृष्णपक्ष की प्रतिपदा

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते ॥
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २२८ ॥

जैसे जैसे मनुष्य पाप करके आपही लोगोंमें कह देता है तैसे तैसेही सर्प जैसे कांचली को छोड़ देता है उसी तरह उस अधर्म करके छूट जाता है ॥२२८॥

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति ॥
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २२६ ॥

उस पाप करनेवाले का मन जैसे जैसे तिस दुष्कृत कर्म की निंदा करता है तैसे वैसेही वह जीवात्मा उस अधर्म से छूट जाता है ॥ २२६ ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्या पूयते तु सः ॥ २३० ॥

मनुष्य पापको करके फिर पछताने से और मैं फिर ऐसा न करूंगा ऐसे कहनेसे निवृत्तिरूप संकल्प करने से उस पापसे पवित्र हो जाता है ॥२३०॥

एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्म फलोदयम् ॥
मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥ २३१ ॥

ऐसे शुभ अशुभ कर्मोंके फलको परलोकमें सुख दुःखको करनेवालों को अपने मनसे विचार के नित्यप्रति मन, वाणी, और शरीर से शुभ कर्म को करे ॥ २३१ ॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ॥
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत् ॥२३२

अज्ञान से अथवा इच्छा करके दुष्कृत कर्मको करके उससे मुक्तिकी इच्छा करने वाला पुरुष फिर दूसरा वैसा पाप न करे क्योंकि दूसरी बार द्विगुण प्रायश्चित्त करना कहा है ॥ २३२ ॥

यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम् ॥
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥ २३३ ॥

इस पापकारी मनुष्यका चित्त जिस प्रायश्चित्त के करने से संतोप को प्राप्त होता है उसी प्रायश्चित्त को मनकी प्रसन्नता होवे तब तक वह करै ॥ २३३ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम् ॥

त्रिरह्नस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत् ॥
स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् ॥ २२३ ॥

आदि मध्य अन्त ऐसे दिनमें तीन बार और रात्रिमें भी ऐसे ही तीन बार वस्त्रोंसहित नदी आदिकों के जलमें प्रवेश करे और स्त्री, शूद्र, पतित जन इनके साथ संभाषण कभी न करे, यह नियम पिपीलिकामध्य यवमध्य इन नामों वाले चांद्रायण व्रतमें हैं ॥ २२३ ॥

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा ॥
ब्रह्मचारी व्रती च स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ २२४ ॥

दिनमें, तथा रात्रिमें खड़ा रहे अथवा बैठा रहे और जो खड़ा या बैठा रहनेकी सामर्थ्य नहीं होवे तो पृथ्वीमें चौतरा आदि पर सोवे, खटिया पर नहीं सोवे और ब्रह्मचारी तथा व्रती रहे। गुरु, देवता, द्विज इनका पूजन करता रहे ॥ २२४ ॥

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ॥
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः ॥ २२५ ॥

गायत्रीको नित्य प्रति जपता रहे और अघमर्षण आदि पवित्र मंत्रोंको शक्ति के अनुसार जपे, ये सब नियम जैसे चांद्रायण व्रतमें हैं तैसे ही प्राजापत्य आदि आदि अन्य व्रतोंमें भी करने योग्य हैं ॥ २२५ ॥

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः ॥
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥ २२६ ॥

इन उक्त प्रायश्चित्तों करके प्रकट पापोंवाले द्विजाति शोधने के योग्य हैं और जिनका पाप प्रकट न हो उनको मंत्र होम आदि करके शुद्ध करे ॥ २२६ ॥

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च ॥
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥ २२७ ॥

पाप करनेवाला पुरुष लोगोंमें अपने पापके कहने से और धिक्कार आदि करके पछतानेसे तप करके गायत्री आदि जप करके और तप आदि न कर सके तो दान देनेसे उस पापसे छूट जाता है ॥ २२७ ॥

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते ॥
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २२८ ॥

जैसे जैसे मनुष्य पाप करके आपही लोगोंमें कह देता है तैसे तैसेही सर्प जैसे कांचली को छोड़ देता है उसी तरह उस अधर्म करके छूट जाता है ॥२२८॥

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति ॥
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २२९ ॥

उस पाप करनेवाले का मन जैसे जैसे तिस दुष्कृत कर्म की निंदा करता है तैसे वैसेही वह जीवात्मा उस अधर्म से छूट जाता है ॥ २२९ ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥ २३० ॥

मनुष्य पापको करके फिर पछताने से और मैं फिर ऐसा न करूंगा ऐसे कहनेसे निवृत्तिरूप संकल्प करने से उस पापसे पवित्र हो जाता है ॥२३०॥

एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्म फलोदयम् ॥
मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥ २३१ ॥

ऐसे शुभ अशुभ कर्मोंके फलको परलोकमें सुख दुःखको करनेवालों को अपने मनसे विचार के नित्यप्रति मन, वाणी, और शरीर से शुभ कर्म को करे ॥ २३१ ॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ॥
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत् ॥२३२॥

अज्ञान से अथवा इच्छा करके दुष्कृत कर्मको करके उससे मुक्तिकी इच्छा करने वाला पुरुष फिर दूसरा वैसा पाप न करे क्योंकि दूसरी बार द्विगुण प्रायश्चित्त करना कहा है ॥ २३२ ॥

यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम् ॥
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥ २३३ ॥

इस पापकारी मनुष्यका चित्त जिस प्रायश्चित्त के करने से संतोष को प्राप्त होता है उसी प्रायश्चित्त को मनकी प्रसन्नता होवे तब तक वह करै ॥ २३३ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम् ॥

तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥ २३४ ॥

यह देवताओं को तथा मनुष्यों को जो सुख है उसका कारण तप ही है और उस सुखके ठहरने में तपही कारण है और वेदके जानने वाले पंडितोंने उस सुखके अन्तमें भी तपही कारण कहा है ॥ २३४ ॥

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ॥
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥२३५॥

ब्राह्मणके वेदांत ज्ञानका होना यह तप कहा है और क्षत्रियको प्रजाकी रक्षा करना यह तप है, वैश्यको खेती, वणिज पशुपालन ये तप कहे हैं, शूद्रको द्विजों की सेवा करना यही तप है ॥ २३५ ॥

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २३६ ॥

ऋषिजन वाणी, मन, इंद्रिय इनको वशमें किये हुए फल, मूल, वायु इनका भक्षण करके स्वर्ग, पाताल, भूमि इस त्रिलोकीको एक जगह बैठे हुए इसी तप करके विशेष करके देखते हैं ॥ २३६ ॥

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः ।
तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥ २३७ ॥

व्याधिको दूर करनेवाली औषधि, आरोग्य, ब्रह्मविद्या अनेक प्रकारकी वेदविद्या ये सब तप करकेही सिद्ध होती हैं क्योंकि इनका कारण तपही है ॥ २३७ ॥

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ २३८ ॥

जो ग्रहदोष सूचित आपति आदि दुःखसे पार होता है जो प्राप्त होनेको दुर्लभ है जो सुमेरु आदि दुर्गम है और जो करनेमें दुष्कर है सो सब तप करके सिद्ध हो जाता है क्योंकि तपही संपूर्ण दुष्करोंको करनेवाला है ॥ २३८ ॥

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥ २३९ ॥

ब्रह्महत्या आदि महापातक करनेवाले और गौहत्या आदि उपपातक करने वाले सब पुरुष सुन्दर किये हुए तप करकेही उस पापसे छूट जाते हैं ॥२३९॥

कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च ।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥२४०॥

कीट, अहि अर्थात् सर्प, पतंग, पशु पक्षी, गुल्मवृक्ष आदि स्थावर भूत ये सब तपके बलसे स्वर्गमें प्राप्त होते हैं क्योंकि कपोत आदिकोंके इतिहास पुराण आदिकोंमें हैं ॥ २४० ॥

यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः ।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥ २४१ ॥

तपही है धन जिनके ऐसे तपस्वी जन जो कुछ मन, वाणी, शरीर इनसे पाप करते हैं उस सबको शीघ्रही तप करके नष्ट कर देते हैं ॥ २४१ ॥

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ।
इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च ॥२४२॥

प्रायश्चित्त रूपी तप करके क्षीणपापवाले ब्राह्मणके यज्ञमें देवता साकल्यको ग्रहण करते हैं और उसके वांछित मनोरथोंको बढ़ाते हैं ॥ २४२ ॥

प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैव वेदानृषयस्तपसाप्रतिपेदिरे ॥ २४३ ॥

संपूर्ण लोकोंकी रचना, प्रलय इनके करनेमें प्रभु समर्थ ब्रह्माजी इस ग्रन्थको तप करकेही करते भये और वसिष्ठ आदि संपूर्ण ऋषि तप करकेही संपूर्ण वेदोंके जाननेमें संपन्न हुए हैं ॥ २४३ ॥

इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते ।
सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम् ॥ २४४ ॥

देवता संपूर्ण इस जगतको जो दुर्लभ जन्मआदि है तिसको उत्तम पुण्यको तपके कारणसे देखते हुए ऐसा माहात्म्य कहते हैं कि यह सब जगत् तपोमूल है अर्थात् तपसेही सब बातोंकी उत्पत्ति होती है ॥ २४४ ॥

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ २४५ ॥

दिन प्रतिदिन वेदका पढ़ना, शक्तिके अनुसार पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान करना, क्षमा करना ये सब कर्म महापातकसे उत्पन्न हुए पापोंको भी शीघ्रही नष्ट कर देते हैं ॥ २४५ ॥

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥ २४६ ॥

जैसे अग्नि प्राप्त हुए इंधनको अपने तेजसे क्षणमात्रमें दग्ध कर देता है तैसेही वेदको जाननेवाला द्विज ज्ञानरूपी अग्निसे संपूर्ण पापको दग्ध कर देता है ॥ २४६ ॥

इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि ।
अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ २४७ ॥

यह सब ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त तथा विधि कह दिया है अब इसके उपरांत गुप्त किये हुए पापोंके प्रायश्चित्तोंको सुनो ॥ २४७ ॥

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ २४८ ॥

व्याहृतियोंसहित और प्रणवसहित गायत्रीसे युक्त सो यह प्राणायाम पूरक कुम्भक, रेचक आदि दिनदिन प्रति करनेसे भ्रूणहत्या करनेवालेको भी एक महीनामें पवित्र कर देते हैं ॥ २४८ ॥

कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम् ।
माहित्रं शुद्धवंत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्ध्यति ॥ २४९ ॥

अपनःशोशुचदघम् ० इस कौत्सऋषिकी ऋचाको वा वसिष्ठ ऋषिका सूक्त प्रतिस्तोम० इस ऋचाको पुरुष मनुशिष्य माहित्रं महित्रीणामवोस्तु० एतोन्विन्द्रं स्तवाम शुद्धम्० इत्यादिक शुद्धवती ऋचाओंको सोलहवार जपकरके मदिरा पीनेवाला भी शुद्ध होजाता यह संपूर्ण ऋचा वेदमें मिलेंगी ॥ २४९ ॥

सकृज्जप्त्वास्य वामीयं शिवसंकल्पमेव च ।
अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणाद्भवति निर्मलः ॥ २५० ॥

सुवर्ण की चोरी करनेवाला पुरुष अस्य वामस्य पलितस्य० इन सूक्तों को एक महीने तक जप कर अथवा यज्जाग्रतो दूरम्० इत्यादि शिवसंकल्पमस्तु ऐसी ऋचाओं का जप कर शीघ्र ही उस चोरी के पाप से दूर हो निर्मल हो जाता है ॥ २५० ॥

हविष्यन्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च ।
जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ २५१ ॥

हविष्यांगमजरं इन १९ ऋचाओं को तथा नतमंहोनदुश्तम्० इन ८ ऋचाओंको वा इतिमेमनसः शिवसंकल्प० इस सूक्त को वा सहस्रशीर्षा पुरुषः० इन सोलह ऋचाओं को एक महीना तक जपके गुरुकी स्त्रीके संग के मैथुन करने पाप से छूट जाता है ॥ २५१ ॥

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ।
अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किञ्चेदमितीति वा ॥ २५२ ॥

महापातकों को वा सूक्ष्म उपपातकों को दूर करने की इच्छावाला पुरुष अवते हेडो वरुण नमोभिः० इस ऋचा को वा वरुण दैव्येजने० इस ऋचा को वा इति मेमनः शिवसंकल्प० इस सूक्त को वर्षदिन पर्यन्त एक वार नित्य प्रति जपै ॥ २५२ ॥

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वाचान्नं विगर्हितम् ।
जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥ २५३ ॥

नहीं लेने के योग्य प्रतिग्रहदान को ग्रहण करके वा निंदित अन्न अर्थात् स्वभाव, काल, संसर्ग इनसे दूषित अन्न को भोजन करके तरत्समन्दीधावति० इन चार ऋचाओं को तीन दिन तक जपके उस पाप से छूट जाता है ॥ २५३ ॥

सोमारौद्रं तु बह्वेना मासमभ्यस्य शुद्ध्यति ।
स्रवन्त्यामाचरन् स्नानमर्यम्णामिति च त्यृचम् ॥२५४॥

सोमारुद्राधारयेथाम० इत्यादि चार ऋचाओं को और अर्यमा० वरुणं मित्रं० इन दो दो ऋचाओं को नित्य प्रति जपे और नदी में स्नान करे ऐसे एक महीने तक करने से बहुत से पापोंवाला पुरुष भी शुद्ध हो जाता है ॥ २५४ ॥

ऐन्द्रार्थमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् ।
अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक् ॥ २५५ ॥

पाप करनेवाला पुरुष सात महीनों तक इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निं त्रय इत्यादिक सात ऋचाओं को जपे और अप्रशस्त अर्थात् जिसने जल में मूत्र विष्ठा आदि की हो वह एक महीने तक भिक्षा का भोजन करे ॥ २५५ ॥

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः ।
सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् ॥ २५६ ॥

देवकृतस्य इत्यादिक शाकल्य होम करके वर्ष दिन तक द्विज घृत का होम करे अथवा नमः इन्द्रश्च० इस ऋचा को वर्ष तक जपे ऐसे करने में महापातक को भी नष्ट कर देता है ॥ २५६ ॥

महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः ।
अभ्यास्याब्दं पावमानीर्भैक्षाहारो विशुद्ध्यति ॥२५७॥

ब्रह्महत्या आदि महापातकी पुरुष वर्ष दिन तक भिक्षा का भोजन करे और जितेन्द्रिय रहै । ५ गौओं की सेवा करता हुआ तिनके पीछे गमन करे और पावमानी विद्या आदि ऋचाओंको नित्यप्रति जपे ऐसे करनेसे शुद्ध होजाताहै॥२५७॥

अरण्ये वात्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् ।
मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥२५८॥

तीन पराकसंज्ञक पहले किये हुए व्रतों करके शुद्ध हुआ पुरुष मंत्र ब्राह्मणादिक वेद संहिता को वन में तीन वार पढ़े और वाह्य अभ्यंतर की शुद्धि में युक्त रहे ऐसे करने से संपूर्ण पापों से छूट जाता है ॥ २५८ ॥

त्र्यहं तूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ।
मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम् ॥ २५९ ॥

तीन रात्री तक उपवास व्रत करता हुआ और प्रातः मध्यान्ह सायंकाल इन तीनों वक्त स्नान करता हुआ और नियम में रहता हुआ, स्नान के समय जलमें गोता मारता हुआ ऋतंचसत्यं० इस ऋचा को वा अघमर्षण ऋचा को जपता हुआ पुरुष संपूर्ण पापों से छूट जाता है ॥ २५९ ॥

स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥ २६५ ॥

संपूर्ण वेदोंका जो आद्य है अकार उकार मकार इन अक्षरोंसे ऽयक्षर हैं जिसमें तीनोंवेद प्रतिष्ठित हैं वह अन्य त्रिवित् वेद ओंकाररूप गुप्त हैं उसको जो जानता हैं वही वेदवित् है, ओम् इसके विना सब मंत्र निष्फल हैं इसवास्ते यह मुख्य वेद है ॥ २६५ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इति मनुस्मृति भाषा प्रकाशे एकादशोध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ ।
कर्मणां फलनिर्वृत्तिंशंस नस्तत्त्वतः पराम् ॥ १ ॥

हे पापरहित ! आपने ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका यह संपूर्ण धर्म कहा अब शुभाशुभ रूपक कर्मोंके फलकी निवृत्तिको अर्थात् जन्मांतरमें प्राप्त होनेवालीको परमार्थरूपको हमारे आगे कहो ऐसे महर्षिजन भृगुजीसे पूछते भये ॥ १ ॥

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥ २ ॥

वह प्रधान धर्मात्मा मनुजीका पुत्र भृगु उन ऋषियोंके प्रति बोला कि इस संपूर्ण कर्म संबन्धके फल निश्चयको तुम सुनो ॥ २ ॥

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः ॥ ३ ॥

मन वाणी देह इनसे उत्पन्न हुआ शुभ तथा अशुभ कर्म है और उस कर्मसे ही उत्पन्न होनेवाली उत्तम मनुष्य आदिक वा मध्यम तथा अधम पशुआदिक ये सब मनुष्योंकी गति हैं अर्थात जन्मांतरमें प्राप्त होनेवाली हैं ॥ ३ ॥

तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ।
दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥

उस देहधारीके संबन्धवाले कर्मकी उत्तम मध्यम अधम ये तीन गति भी हैं और आगे कहेहुए दश लक्षण भी हैं परन्तु ऐसे कर्मका प्रवर्त्तक मनको ही जानो ॥ ४ ॥

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥

पराये धनको अन्यायसे ग्रहण करूँगा ऐसा चिंतवन वा ब्रह्मवध आदि निषिद्ध इच्छा परलोक नहीं है देहही आत्मा है ऐसे वितथका अभिनिवेश यह तीन प्रकारका मानस कर्म कहाता है ॥ ५ ॥

पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥

कठोर वचन कहना वा झूठ बोलना पीछेसे अन्य किसीके दोष कहना और राजाकी देशकी वा पुरकी नि प्रयोजन बेमतलबकी बातोंका कहना ऐसे यह चार प्रकारका वाचिक कर्म है ॥ ६ ॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥

अन्याय करके पराये द्रव्यका हरना, अशास्त्रीय हिंसा परायी स्त्रीके संग मैथुन करना तह तीन प्रकारका अशुभ फल शारीरक कर्म कहाता है ॥ ७ ॥

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥
वाचा वाचाकृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥ ८ ॥

मन जो शुभाशुभ अर्थात् सुकृत वा दुष्कृत जैसा कर्म करता है वह इस जन्ममें वा अन्य जन्ममें मन से ही भोगा जाता है और वाणी से जो शुभाशुभ किया जाताहै वह वाणीसे भोगा जाता है शरीरसे किया हुआ कर्म शरीरसे ही भोगा जाता है ॥ ८ ॥

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥ ९ ॥

विशेष करके शरीरसे किये हुए कर्म दोषों से मनुष्य जन्मांतरमें स्थावर वृक्ष आदि होता है और विशेष करिके वाणीके दोषों करके पक्षी मृग आदि जातिको प्राप्त होता है मानस अर्थात् मनके किये हुए दोषों चांडाल आदि जातिको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥ १० ॥

वाणीरूप दण्ड है और मनका दण्ड है और काया का दंड है ये तीनों दंड जिसकी बुद्धिमें स्थित हैं अर्थात् निषिद्ध बोलना बुरा चिंतवन करना निषिद्ध आचरण इनको त्याग देवे वह त्रिदंडी कहाता है ॥ १० ॥

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ११ ॥

मनुष्य इस प्रकारसे सब प्राणियोंमें इस त्रिदंडको निक्षिप्त करके अर्थात् वाणी मन काया इनसे निषिद्ध आचरणको त्यागके काम क्रोधको वशमें करके फिर सिद्धि और मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ।
यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

जो इस लोकमें सिद्ध होनेसे सब कर्मोंमें शरीरात्माको प्रवर्त्त करता है अपनेको पृथक् जानता है तिसको पंडितजन क्षेत्रज्ञ कहते हैं और जो शरीर इन सब व्यापारोंका करता है वह पंडितों द्वारा भूतात्मा कहा गया है ॥१२॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १३ ॥

जो अंतरआत्मा है और सब देहधारियों के सहज अर्थात् साथ उत्पन्न होने वाला कहाता है और जिससे जन्मोंमें संपूर्ण सुख दुःखोंको प्राप्त होता है वह जीवसंज्ञक कहाता है अर्थात् महान् कहाता है ॥ १३ ॥

तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च ।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥ १४ ॥

वे दोनों महान् और क्षेत्रज्ञ आत्मा पृथिवी आदि पचभूतोंके संपर्कसे मिले हुए रहते हैं और उत्कृष्ट तथा अपकृष्ट संपूर्ण प्राणियोंमें उसी वक्ष्यमाण परमात्मा के आश्रय होके स्थित हो रहे हैं ॥ १४ ॥

असंख्या मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ॥
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः ॥ १५ ॥

इस परात्माकी मूर्तिं शरीरोंके भेदसे अनंत कही हैं और जो ऊंचे तथा नीचे भूतोंमें निरंतर चेष्टा करती हैं वेदांतके उक्त प्रकार के अग्नि के किरणों की तरह निकसती है चेष्टा करती है ऐसी असंख्यात हैं ॥ १५ ॥

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् ॥
शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

पृथ्वी आदि पंचभूतोंसे परलोकमें दुष्कृत करनेवालेमनुष्यों का शरीर जरा-

युक्त आदि योनिमें दुःखको भोगने का होता है ॥ १६ ॥

तेनानुभूयता यामीः शरीरेणेह यातनाः ॥
व भूतास्तेतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥ १७ ॥

उस शरीर से निकलनेवाला जो जीवात्मा है उसको जो इस शरीर से यमकी पीडा प्राप्त होती है फिर स्थूल शरीरके नाश हो जानेमें वे पंचभूतों की तन्मात्रा उन्हीं अपनी मात्राओंके विभागमें लीन हो जाती हैं ॥ १७ ॥

सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसंगजान् ॥
व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥ १८ ॥

भूत सूक्ष्म लिंग आदि शरीरों से अविच्छिन्न हुआ जीवात्मा, विषयके संगसे उत्पन्न हुए दुःखो को प्राप्त होता है फिर भोग हो जानेसे हत पापोंवाला होके महान्, परमात्मा, इन दोनोंके महातेजवालोंके आश्रय में रहता है ॥ १८ ॥

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ॥
याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥ १९ ॥

आलस्यरहित वे महत् परमात्मा उस जीवके धर्मको और बाकी रहे पापको साथही विचारते हैं क्योंकि जिन सुखदुःखोंसे मिला हुआ जीवात्मा इस लोकमें और परलोक में सुख दु खोंको प्राप्त होता है ॥१९॥

यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः ॥
तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते ॥ २० ॥

यह जीव यदि मनुष्य दशामें बहुतसा धर्म करता है और थोड़ा सा पाप करता है तो उन्हीं पृथवी आदि भूतोंसे स्थूल शरीरको प्राप्त हो स्वर्ग लोकमें सुखको भोगता है ॥ २० ॥

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ॥
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥ २१ ॥

जो विशेष कर पापों को करता है और धर्म थोड़ा करता है तो उन्हीं पृथवी आदि भूतोंसे स्थूल शरीर धारण कर पूर्व शरीरको त्याग जन्मांतर में दुःखों का भोगता है ॥ २१ ॥

यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः ।
तान्येव पञ्च भूतानि पुनरप्येति भागशः ॥ २२ ॥

वह जीव यमसे की हुई उन पिड़ाओं को इस कठिन देहसे भोगके फिर पापरहित होके उन्हीं पञ्च भूतोंके विभाग को प्राप्त होता है अर्थात् मनुष्य आदि शरीरको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

एता दृष्टास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा ।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥ ॥ २३ ॥

अपने चित्तके धर्मसे और अधर्म से जीवकी इन गतियोंको देखके सदा अपना मन धर्ममें ही स्थित रक्खे ॥ २३ ॥

सत्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् ।
यैर्व्याप्येमान् स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः ॥२४॥

सत्व रज तम इन तीनोंको आत्माके गुण जाने, इन गुणों द्वारा जीवात्मा स्थावर जगम आदि रूपों में व्याप्त होके स्थित हो रहा है ॥ २४ ॥

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते ।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥ २५ ॥

यद्यिपि ये तीनों गुण रहते हैं परन्तु जब जो गुण सम्पूर्ण प्रभावसे अधिक होता है तब वही गुण अपने अनुसार देहधारीको बना लेता है ॥ २५ ॥

सत्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥ २६ ॥

यथार्थ प्रयोजनका ज्ञान होना यह सत्वगुणका लक्षण है, तिससे विपरीत अज्ञान तमोगुणका लक्षण है; प्रीति, वैर ये रजोगुणके लक्षण हैं इन सत्वगुण आदिकों का यह ज्ञान आदि लक्षण सब प्राणियों आश्रय होके ठहरता है ॥ २६ ॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्वं तदुपधारयेत् ॥२७॥

उस आत्मामें जो किंचित् प्रीतियुक्त देखता है और जो कुछ क्लेश है उसको नहीं देखता प्रशान्त शुद्धकान्ति वाला देखता है वह सत्वगुण जानना ॥ २७ ॥

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
तद्रजो प्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥२८॥

जो दुःखसे संयुक्त है और आत्माको प्रीतिकारक नही जानता वह रजो गुण है, शरीर धारियोंको विषयकी इच्छा कराने वाला कहा है ॥ २८ ॥

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ २९ ॥

जो सत् असत् विवेकसे हीन है अस्फुट है तथा जिसका विषयी स्वभाव है तर्कना करनेके योग्य है कुछ जाननेके योग्य नहीं वह तमोगुण कहाता है ॥ २९ ॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः ।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तम् प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३० ॥

इन सत्वगुण आदि तीनों गुणोंका, जो उत्तम मध्यम अधम फलको उत्पन्न करनेवाला है उसको विशेष करके कहेंगे ॥ ३० ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकं गुणलक्षणम् ॥३१॥

वेदका अभ्यास करना, प्राजापत्य आदि तपका अनुष्ठान करना, शास्त्रका ज्ञान, शौच शुद्धि, इन्द्रियोंका निग्रह करना, दान आदिसे धर्मका अनुष्ठान करना, आत्मज्ञानका चिंतन करना, यह सत्वगुणका लक्षण है ॥ ३१ ॥

आरम्भरुचिता धैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥ ३२ ॥

फलके वास्ते धर्मका अनुष्ठान, करना थोड़ेसे प्रयोजनमें भी विकलता, निषिद्ध कर्मका आचरण, विषयोंके भोगकी इच्छा यह राजस अर्थात् रजोगुण

का लक्षण कहाता है ॥ ३२ ॥

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षम् ॥ ३३ ॥

लोभ करना, नींदको अधिकता, धीरज न रखना, क्रूरता, नास्तिक बुद्धि रखना, आचारका लोप, मांगने की इच्छा, प्रमाद होना ये तमोगुणके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषुतिष्ठताम् ।
इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षम् ॥ ३४ ॥

भूत, भविष्य, वर्त्तमान इन तीनों कालोंमें रहनेवाले इन सत्व आदि तीनों गुणोंका यह लक्षण क्रम करके संक्षेपमात्रसे कह दिया है ॥ ३४ ॥

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥३५॥

कर्मको करता हुआ या आगे करने वाले कर्मको करने में जो लज्जावान् होता है उसे तामस लक्षणी जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।
न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥ ३६ ॥

जिस कर्म से इस लोकमें बहुतसी लक्ष्मीको प्राप्त होता है वा विख्याति को प्राप्त होता है और परलोक के वास्ते उस कर्मकी संपत्तिको नहीं खर्चता है वह रजोगुणका लक्षण है ॥ ३६ ॥

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्वगुणलक्षणम् ॥ ३७ ॥

जिस कर्मको वेदके अर्थ जाननेके वास्ते करता है और कर्मको करता हुआ लज्जा नहीं मानता है और जिस कर्मसे इसका आत्मा प्रसन्न होता है वह

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥३८॥

कामकी प्राधानता यह तमोगुणका लक्षण है, द्रव्यकी प्रधानता रखना यह रजोगुणका लक्षण है, धर्मकी प्रधानता यह सत्वगुणका लक्षण है, इनमें उत्तरोत्तर क्रमसे श्रेष्ठता है, जैसे कामसे द्रव्य द्रव्यसे धर्म ॥ ३८ ॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ।
तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥

इन सत्व आदिगुणों के मध्यमें जिस गुण से जिस गतिको यह जीव प्राप्त होता है उन सबोंको इस जगत्के क्रमसे कहेंगे ॥ ३९ ॥

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥४०॥

जो सत्वगुणसे युक्त हैं वे देवयोनिको प्राप्त होते हैं और रजोगुणी पुरुष मनुष्य योनिको प्राप्त होते हैं, तमोगुणी पुरुष पशु पक्षी आदि तिर्यक् योनिको प्राप्त होते हैं, ऐसी यह तीन प्रकारकी गति है ॥ ४० ॥

त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ।
अधमा मध्यमाग्र्या च कर्मविद्या विशेषतः ॥४१॥

यह गुणोंकी गति इस प्रकार से तीन तीन प्रकार की जाननी चाहिये और, अधम, मध्यम, उत्तम ऐसे तीन प्रकारके संसारमें कर्मभेद इन गुणोंके ही हैं ॥ ४१ ॥

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः ।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥ ४२ ॥

वृक्षआदि स्थावर, कृमि कीट अर्थात् बड़े कीड़े मच्छ, सर्प, कछुवे, पशु, मृग, इन योनियोंमें प्राप्त होना यह अत्यन्त तामसी गति है ॥ ४२ ॥

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः ।

सिंहाव्याघ्रावराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥ ४३ ॥

हस्ती, अश्व, शूद्र, म्लेच्छ, सिंह, व्याघ्र सुवर इनकी योनियोमें प्राप्त होना यह मध्यम तामसी गति कहाती है ॥ ४३ ॥

चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥ ४४ ॥

चारण, नट आदिक सुवर्णपक्षि, विशेष छल करने वाले पुरुष, राक्षस पिशाच इन योनियोंकी प्राप्ति होना यह तमोगुणको उत्तम गति है ॥ ४४ ॥

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः ।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥ ४५ ॥

झल्ल मल्ल ये व्रात्यसंज्ञक क्षत्रियसे सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न होते हैं और नट-शास्त्रकी आजीविका करने वाले पुरुष जुआरी मदिरा पीनेवाले इनमें अत्यन्त राजसी अर्थात् रजोगुणकी गति है ॥ ४५ ॥

राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः ।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसीगतिः ॥ ४६ ॥

राजा, क्षत्रिय राजाओंके पुरोहित और वाद तथा युद्धमें प्रधान मनुष्य इनमें रजोगुणकी मध्यमा गति है ॥ ४६ ॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ।
तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमागतिः ॥ ४७ ॥

गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष, देवताओंके अनुचर, आदि और अप्सरा अर्थात् देवताओंकी गणिका ये सब रजोगुणमें उत्तमा गति कही हैं ॥ ४७ ॥

तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः ।
नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः ॥४८॥

वानप्रस्थ तथा भिक्षु ब्राह्मण और पुष्पक आदि विमानोंमें विचरनेवाले जन, नक्षत्र, दैत्य ये योनि सत्वगुणनिमित्त होनेवाली अधम गति कहाती है॥४८॥

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ।

पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्विकी गतिः ॥ ४९ ॥

यज्ञ करनेवाले यज्वा, ऋषि देवता, वेदाभिमानी देवता, ध्रुव आदि, शरीरधारी वत्सर जो कि इतिहास आदिकोंमें प्रसिद्ध हैं पितर साध्य संज्ञक देवता ये सब सत्वगुणकी मध्यमा गति कहाते हैं ॥ ४९ ॥

ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च ।
उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥

चतुर्मुखी ब्रह्मा, मरीचि आदि ऋषि महान् शरीरवाला धर्म और सौख्यप्रसिद्ध अव्यक्त जो तत्व है तिसका अधिष्ठातृ देवता इन सब को पडित जनों ने सत्वगुणकी उत्तमा गति कही है ॥ ५० ॥

एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ।
त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥ ५१ ॥

मन वचन शरीर करके तीन भेदोंवाले कर्मका यह संपूर्ण तीन तीन प्रकारवाला संपूर्ण प्राणियोंकी गतिका भेद कह दिया है ॥ ५१ ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च ।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥ ५२ ॥

अधम पापी मनुष्य इन्द्रियोंके विषयमें संग करनेसे, धर्मके असेवन से प्रायश्चित्त आदि धर्मोंके अनुष्ठान नहीं करनेसे निंदित अधम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ।
क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥ ५३ ॥

इस संसारमें यह जीव जिस जिस पापरूप कर्मसे जिस जिस जन्मको प्राप्त होता है उन सबको क्रम से सुनो ॥ ५३ ॥

बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् ।
संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥ ५४ ॥

ब्रह्महत्या आदि पाप करनेवाले पुरुष हजारों वर्षों तक नरक को प्राप्त

होकर फिर इन आगे कहे हुए जन्मोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥

श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् ।
चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणको मारनेवाला पुरुष कुत्ता, सुअर, गधा, ऊंट, गौ, बकरी, मृग, पक्षी, चाण्डाल पुक्कसजाति इन योनियोंको प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम् ।
हिंस्रानां चैव सत्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ ५६ ॥

मदिराको पीनेवाला पुरुष कृमि कीट अर्थात् बड़े कीड़े, पतङ्ग, सुअर, पक्षी हिंसा करनेवाले जीव, पिशाच इन योनियोंको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

लूताहिसरठानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ।
हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ ५७ ॥

मकड़ी सर्प, गिरगिट, तिरछे चलनेवाले सर्पादिक, जलचर; जीवहिंसा करने वाले पिशाच, आदि इन योनियोंमें सुवर्णकी चोरी करनेवाला हजार बार प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥

तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि ।
क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

दूब तृण के गुच्छे गिलोय लता; कच्चे मांसको भक्षण करने वाले सिंह क्रूर कर्मवाले व्याघ्र आदि इन योनिमें गुरुकी स्त्रीसे मैथुन करने वाले पुरुष सौ बार प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ।
परस्परादिनः स्तेनाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥ ५६ ॥

जो प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले हैं वे मरकर जन्मान्तरमें विलार आदि क्रव्याद बनते हैं और जो अभक्ष्यभक्षी हैं वे दूसरे जन्ममें कृमि योनिको प्राप्त होते हैं, जो चोर हैं वे आपसके मांसको भक्षण करनेवाले होते हैं और अन्य जाति की स्त्री से मैथुन करने से प्रेत होते हैं ॥ ५६ ॥

संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् ।

अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

पतित पुरुषोंके साथ सयोग करके और पराई स्त्रीके संग मैथुन करके तथा ब्राह्मणके धनको हरने वाला ब्रह्मराक्षस होता है ॥ ६० ॥

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ।
विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥

माणिक्य मणि मोती मूंगा इनको लोभ करके हरनेवाला और अनेक प्रकारके रत्नोंको हरनेवाला पुरुष हेमकार अर्थात् सुनार बनता है अथवा हेमकार पक्षी होता है ॥ ६१ ॥

धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलंप्लवः ।
मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥ ६२ ॥

अनाजकी चोरी करनेवाला मूसा होता है, कांसाको चुरानेवाला हंस, जलको चुरानेवाला मेंढक, शहदको हरनेवाला डांस, दूधको हरनेवाला काग, रसको हरनेवाला कुत्ता, घृतको हरनेवाला नेवला ऐसी ये सब योनियाँ प्राप्त होती हैं॥६२॥

मासं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः ।
चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि ॥ ६३ ॥

मांसको हरनेवाला गिद्ध होता है, चरबीको हरनेवाला मद्गु नामक जलचर जीव होता है, तेलको हरनेवाला तेलपायिक पक्षी होता है, नमकको हरनेवाला भंभीरी कीट होता है, दहीको हरनेवाला बगुला होता है ॥ ६३ ॥

कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः
कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम् ॥ ६४ ॥

फटे वस्त्रको हरनेवाला तित्तर होता है, रेशमी वस्त्रको हरनेवाला मेंढक होता है, कपासको हरनेवाला क्रौंच पक्षी होता है, गौको हरनेवाला गोह होता है, गुड़को चुरानेवाला वाग्गुदपक्षी होता है ॥ ६४ ॥

छुच्छुन्दरिः शुभान् गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः ।
श्वावित्कृतान्नं विविधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥ ६५ ॥

कस्तुरी आदि सुगंधित द्रव्योंको हरनेवाला छछुन्दर होता है बथुवा आदि पत्रशाकको हरनेवाला मोर होता है अनेक प्रकारके पके हुए अन्नोंको हरनेवाला श्वाविध पक्षी होता है चावल, जव आदि कच्चे अन्नको हरनेवाला स्याही होता है ॥ ६५ ॥

बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारीह्युपस्करम् ।
रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥ ६६ ॥

अग्निको चुराके वगुला पक्षी होता है और घरकी चीज ऊषल मूसल वरतन इत्यादिकोंको हरनेवाला भीत आदिमें रहनेवाला पंखोंदार गृहकारी कीट होता है कसुंभे वस्त्रोंको हरके चकोर पक्षी होता है ॥ ६६ ॥

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः ।
स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारी यानान्युष्ट्रः पशूनजः ॥ ६७ ॥

हस्तीको चुरानेवाला भेडिया वनता है और घोडाको हरनेवाला चीता वनता है फल मूलको चुराके वानर, स्त्रीको चुराके रीछ, पीनेका वास्ते जल हरके पपीहा, पक्षी सवारीका ऊंट आदि पशुवोंको चुराके वकरा होता है ॥ ६७ ॥

यद्वा यद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ।
अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य यत्किंचित् असार द्रव्यको भी बलसे हरता है वह मरके अवश्य पशुयोनिको प्राप्त होता है तथा पुरोडाश आदि विना होम हुए हविको भक्षण करके भी पशु होता है ॥ ६८ ॥

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः ।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ६९ ॥

स्त्रियाँ भी इसी प्रकारसे इच्छा करके पराये द्रव्य को हरके दोषको प्राप्त होती हैं और इन्हीं कहे हुए जीवोंकी योनिकोप्राप्तहोता है ॥ ६९ ॥

स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युता वर्णा ह्यनापदि ।
पापान्संसृत्य संसारान् प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ॥ ७० ॥

ब्राह्मणआदि चारों वर्ण आपत्कालके बिना अपने कर्म पंचायज्ञादिकोंसे जो भृष्ट हो जाते हैं वे मरके दूसरे जन्ममें आगे कही हुई निंदित योनियोंमें प्राप्त होके शत्रुओंके दास होते हैं ॥ ७० ॥

वान्ताश्युल्यामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ।
अमेध्यकुणपाशीचक्षत्रियः कटपूतनः ॥ ७१ ॥

अपने कर्मसे भ्रष्ट होनेवाला ब्राह्मण वमनको भोजन करनेवाला ज्वालामुख प्रेत होता है और अपने धर्मसे भ्रष्ट हुआ क्षत्रिय विष्ठा मुरदा आदिकों को भोजन करनेवाला कटपूतन संज्ञक प्रेत होता ॥ ७१ ॥

मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक ।
चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥ ७२ ॥

अपने कर्मसे भ्रष्ट हुआ वैश्य जन्मांतरमें पीवको भक्षण करनेवाला और मैत्राक्षज्योतित अर्थात् जिसकी गुदामें नेत्र हों ऐसा प्रेत होता है और अपने कर्मसे विगडनेवाला शूद्र चैलाशक अर्थात् वस्त्रोंकी जूओंको भक्षण करनेवाला प्रेत होता है ॥ ७२ ॥

यथा यथा निषेवन्ते विषयान विषयात्मकाः ।
तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते ॥ ७३ ॥

जैसे जैसे विषयी पुरुष विषयोंको सेवते हैं तैसे तैसेही उन विषयी पुरुषोंकी उन विषयोंमें अधिक प्रीति हो जाती है ॥ ७३ ॥

तेऽभ्यासात्कर्मणा तेषा पापानामल्पबुद्धयः ।
संप्राप्नुवंति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ॥ ७४ ॥

वे अल्पबुद्धिवाले विषयी तिन पापरूप कर्मोंके अधिक अभ्यास हो जानेसे जैसे जैसे अधिक पाप हो जाते हैं तैसी तैसी निंदित अत्यंत निंदित योनियोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ ७४ ॥

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्तनम् ।
असि पत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ॥ ७५ ॥

और व विषयी पुरुष तामिस्र आदि घोर नरकोंको प्राप्त होते हैं तथा असिपत्र वन आदिकोंमें दंडने तथा छेदन करनेवाले नरकोंको प्राप्त होते हैं ॥७५॥

विविधाश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम् ।
करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥ ७६ ॥

अनेक प्रकारकी पीडाको प्राप्त होते हैं तथा कागडे उलूक आदिकोंसे भक्षण किये जाते हैं और करंभ बालुका ताप कुंभीपाक इत्यादि दारुण नरकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासुनित्यशः ।
शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च ॥ ७७ ॥

नित्य दुःख प्राप्तिवाली तिर्यक पशुआदि योनियोंमें जन्मको प्राप्त होते हैं और शीत घाम चोट अभिघात आदि ऐसे अनेक प्रकारकेदुखोंको प्राप्त होते हैं ॥ ७७ ॥

असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दारुणम् ।
बन्धनानि च काष्ठानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७८ ॥

गर्भस्थनमें वास होवे और दारुण दुःखसहित जन्म होवे और बेडी अदिकोंसे बधन होवे तथा परपुरुषका दास होवे ॥ ७८ ॥

बन्धुप्रियवियोगांश्चसंवासं चैव दुर्जनैः ।
द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥ ७९ ॥

प्रियबंधु जनोंके साथ वियोग हावे और दुर्जनोंके साथ मेल हो धनके इकट्ठे करनेमें परिश्रम होवे और फिर धनका नाश हो जावे और मित्र तो कष्टसे होवे शत्रु अचानक उत्पन्न हो जावें ॥ ७९ ॥

जरांचैवप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम् ।
क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥ ८० ॥

जरा अर्थात् जिसका कुछ इलाज न हो सके ऐसे बुढापाकी पीडा व्याधियोंकी पीडा जिसका इलाज न हो सके ऐसी दुर्जय मृत्यु इनको प्राप्त होती है ॥ ८० ॥

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ।

तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ८१ ॥

जैसे स्वभाव से सत्वगुण स्वभावसे वा रजोगुणी स्वभावसे तथा तमोगुणी स्वभावसे जिस जिस कर्मका सेवन करता है वैसेही शरीरसे उसी उसी फलोंको भोगता है ॥ ८१ ॥

एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः ।

नैःश्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत ॥ ८२ ॥

निषिद्ध कर्मों को करनेवालोंका यह संपूर्ण फलोदय अर्थात् प्राप्त होनेवाला फल तुह्मारे वास्ते कह दिया है अब ब्राह्मणोंके हित कर्मके अनुष्ठानको सुनो ॥८२॥

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।

अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥ ८३ ॥

वेदका अभ्यास कृच्छ्र आदि तप शास्त्रका ज्ञान इन्द्रियोंका रोकना हिंसा नहीं करना गुरुकी सेवा करना ये सब परम कल्याणके साधन है ॥ ८३ ॥

सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणाम् ।

किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८४ ॥

वेदाभ्यास आदि इन सब शुभकर्मों के बीज किंचित्मात्र कर्म अत्यन्त करके पुरुषके मोक्षका साधक कहा है ॥ ८४ ॥

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।

तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥ ८५ ॥

वेदाभ्यास आदि सब कर्मों में उपनिषदोंमें कहा हुआ आत्मज्ञान परम श्रेष्ठ है क्योंकि यह ज्ञान सब विद्याओंमें प्रधान है कि जिससे मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥

षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेह च ।

श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥

वेदाभ्यास आदि इन पूर्वोक्त छह कर्मो के मध्यमें इस लोकमें तथा परलोकमें सदा कल्याण करनेवाला वैदिककर्म अर्थात् आत्मज्ञान कहा है ॥ ८६ ॥

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ।

अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिन् स्तस्मिनक्रियाविधौ ॥८७॥

परमात्माकी उपासनारूप वैदिक कर्ममें संपूर्ण कर्म क्रमसे उसी आ-

त्मामें सम्भव होते हैं अर्थात् ये सब वेदोक्तकर्म उसी आत्माका विचार करते हैं ॥ ८७ ॥

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ८८ ॥

स्वर्ग आदिके सुखोंकी प्राप्ति करनेवाला तथा मोक्षको प्राप्त करनेवाला ऐसा प्रवृत्तिकारक और निवृत्तिकारक दो प्रकारक अग्निष्टोम यज्ञ वैदिक कर्म कहा है ॥ ८८ ॥

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ।
निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते ॥ ८९ ॥

इस संसारमें वृद्धिआदिकी इच्छासे वा स्वर्ग आदिकी प्राप्तिके वास्ते जो वैदिक कर्म किया जाता है वह संसार पृवृत्त कर्म कहाता है और जोर जो ज्ञानपूर्वक निष्काम कर्म किया जाता है वह निष्काम कर्म कहाता है ॥ ८९ ॥

प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् ।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥ ९० ॥

प्रवृत्त वैदिक कर्मको अभ्याससे सेवन करे तो देवताओंके समान हो जाता है और निवृत्त कर्मको अभ्याससे सेवन करता हुआ पुरुष मोक्षको पूाप्त होता है ॥ ९० ॥

सर्वभूतेषु आत्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥ ९१ ॥

जो पुरुष अग्निष्टोम आदि यज्ञ करता हुआ, स्थावर जङ्गम आदि सब भूतोंमें आत्मारूपसे मैंही स्थित हूं तथा आत्मारूपसे सब मेरे मेंहो स्तिथ ऐसा समान देखता हुआ आत्मयाजी पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥

यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः ।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥९२॥

अग्निहोत्र अदि यथोक शास्त्रकर्मको त्यागके भी द्विजोत्तम ब्रह्मध्यान इंद्रियनिरोध ॐकर आदि उपनिषदोंका ध्यान इनके अभ्यासमें यतन करे ॥ ९२ ॥

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।

प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥ ९३ ॥

यह आत्मज्ञान आदि धर्म जन्मको सफल करनेवाला कहा है और ब्राह्मणको विशेष करिके श्रेष्ठ कहा है द्विज इस आत्मज्ञानको प्राप्त होके कृतकृत्य है अन्यथा नहीं ॥ ९३ ॥

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥ ९४ ॥

पितर देवता मनुष्य इनके हव्यकव्यके दानमें वेदही सनातन चक्षु है अशक्य अर्थात् कर्त्ता ईश्वरके विना अन्य नही और इसका प्रामण नहीं हो सकता, ऐसी स्थिति है ॥ ९४ ॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फला प्रेत्यतमो हिताः स्मृताः ॥ ९५ ॥

जो स्मृति वेदसे बाह्य है अर्थात् वेदके मतसे विरुद्ध है और तर्कमूल वाली हैं वे सब मन्वादिकों ने निष्फल कही हैं क्योंकि वे परलोकमें नरककी फल-वाली है ॥ ९५ ॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ९६ ॥

जो वेदमूल से विरुद्ध कोई शास्त्र पुरुषार्थ से उत्पन्न होते हैं वे सब शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं क्योंकि वे नवीन होने से निष्फल हैं और असत्य रूप हैं ॥ ९६ ॥

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ॥ ९७ ॥

ब्राह्मणोऽस्यमुख मासीत्० इत्यादिक वेदसेही चारों वर्ण और तीनों वद और अलग अलग चारों आश्रम ये सब वेदसेही सिद्ध होते हैं और व्यतीत वर्त्तमान भविष्य के हाल भी वेदसेही मालूम होते हैं ॥ ९७ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गंधश्च पञ्चमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥ ९८ ॥

इस लोकमें जो शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये विषय उत्पन्न होते हैं वे सब

गुणकर्मके योग होनेसे वेदसे ही सिद्ध होते हैं क्योंकि सत्व आदि गुणकर्म की उत्पत्ति वेद ही है ॥ ९८ ॥

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ ९९ ॥

वेदशास्त्र सदा संपूर्ण भूतोंको धारण करता है इस वास्ते इस वेदशास्त्रको परम श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि इससे सब प्राणियोंका प्रयोजन सिद्ध होता है ॥९९॥

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्व मेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ १०० ॥

सेनाका अधिपति राज्य दण्डको देनेवाला संपूर्ण लोकोंका अधिपति इन उक्त प्रयोजनोंके वास्ते वेदशास्त्रको जाननेवालाही योग्य है ॥ १०० ॥

यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ।
तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ॥ १०१ ॥

जैसे अत्यन्त प्रचण्ड अग्नि गीले वृक्षोंको भी जला देता है वैसेही वेदको जाननेवाला द्विज कर्मसे उत्पन्न हुए आत्माके दोषोंको दग्ध कर देता है ॥१०१॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्रतत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १०२ ॥

जो पुरुष तत्त्वसे वेदको और वेदके अर्थको अर्थात् उसके कर्मको जानता है वह जिस किसी आश्रममें वास करता हुआ इसी लोकमें स्थित भी ब्रह्म रूपताको प्राप्त होता है ॥ १०२ ॥

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः॥१०३॥

थोड़े पढे हुए अज्ञ पुरुषोंसे ग्रन्थोंके पढनेवाले अधिक श्रेष्ठ हैं और पढ़ने वालोंसे उन ग्रन्थोंकी धारणावाले श्रेष्ठ हैं उनसे श्रेष्ठ अर्थ-ज्ञानको जाननेवाले हैं और सब में निश्चय करनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ हैं ॥ १०३ ॥

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ १०४ ॥

द्विज तपकरके पापको दूर करता है और ब्रह्मविद्या से मोक्षको प्राप्त होता है इस वास्ते ब्राह्मणको तप विद्या ये दोनों परम कल्याणको देनेवाले हैं ॥ १०४ ॥

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥ १०५ ॥

धर्मके तत्त्वके अवबोधकी इच्छा करनेवाले पुरुषको प्रत्यक्षप्रमाण १ यथार्थ शास्त्र २ वेद मूल अनेक प्रकारका स्मृति आदि शास्त्र ३ ये तीन प्रमाण सुंदर प्रकारसे निश्चय करने चाहिये ॥ १०५ ॥

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेदनेतरः ॥ १०६ ॥

ऋषियोंसे कहा हुआ आर्षवेद धर्मका उपदेश इनको जो पुरुष वेद मूल और और वेदकी अविरोधिनी स्मृतिसे जो जो न्याय आदि तर्कसे विचारता है वह धर्मको जाननेवाला है अन्य नहीं ॥ १०६ ॥

निःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः ।
मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते ॥ १०७ ॥

यह कल्याण मोक्षको साधनेवाला कर्म यथार्थ प्रकारसे संपूर्ण कह दिया अब इस मनु शास्त्रके रहस्य अर्थात् गूढ़ अभिप्रायको कहते हैं ॥ १७ ॥

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत ।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥ १०८॥

जिनका कुछ नियम नहीं हो ऐसे बहुतसे धर्महो तिनमें कौनसा धर्म करे ऐसा संदेह होजावे तो जिस धर्मको आगे कहे हुए ये शिष्ट ब्राह्मण कहे उसको निस्सदेह होके करै॥ १०८ ॥

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरीबृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ १०९ ॥

जिन ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्य आदि धर्ममें युक्त होके न्याय मीमांसा धर्मशास्त्र पुराण इत्यादिकोंसे परि बृंहित वेद पढा हैं वे स्तुतिके प्रत्यक्ष करनेमें हेतु हैं जो उस श्रुतिको पढ़के उसके अर्थका उपदेश देते हैं वे शिष्ट ब्राह्मण कहाते है ॥१०९॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वाऽपि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ ११० ॥

प्रयोजनके वास्ते स्थित हुई दशवरा नामवाली वा त्र्यवरा नामवाली परिषत् जिस धर्मका निर्णय कर देवे उसको क्योंकि परास्त न करे यह कहेंगे ॥ ११० ॥

त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्च आश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ १११ ॥

तीनों वेद संबंधी तीनों शाखाओंके पढ़े हुए श्रुति स्मृतिसे अविरुद्ध न्याय शास्त्रके पढ़े हुए मीमांसात्मक धर्मको जाननेवाला मनु आदि धर्म शास्त्रको जाननेवाला ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ ये सब गुणोंवाले ब्राह्मण जहां होवें वह दशावरा परिषत् कहाती है ॥ १११ ॥

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ॥
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ११२ ॥

ऋक् यजुष् साम इन वेदोंको पढ़नेवाले और तीन ब्राह्मण इन तीनों वेदोंके अर्थको जाननेवाले जहां होवें वहां धर्मके संदेह दूर करने के वास्ते त्र्यवरा परिषत् कहाती है ॥ ११२ ॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः ॥
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ११३ ॥

वेदके अर्थको जाननेवाला एक भी द्विजोत्तम जिस धर्मका निर्णय कर देवे वह परम उत्तम धर्म जानना और मूर्ख जन दश हजार भी जो एक धर्मका करैं वह उत्तम नहीं ॥ ११३ ॥

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ॥
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ ११४ ॥

गायत्री ब्रह्मचर्य आदि व्रतसे रहित मंत्र वेदाध्ययनसे रहित ब्राह्मणकी जाति मात्रको धारण करनेवाले ऐसे ब्राह्मण हजारों भी इकट्ठे होवें तो वह परिषद् नहीं है अर्थात् उनसे किसी धर्मको निर्णय कराना योग्य नहीं ॥ ११४ ॥

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ॥
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥ ११५ ॥

तमोगुणी स्वभाववाले बहुतसे मूर्खजन विना जाने हुए जिस धर्मका किसी को उपदेश देते हैं उस उपदेश ग्रहण करनेवाले का पाप सौ गुना होके उन मूर्ख बहुतसे ब्राह्मणोंके उपदेश देनेवालोंके लग जाता है ॥ ११५ ॥

एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परम् ॥
अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ११६ ॥

यह परम कल्याणका साधक संपूर्ण धर्म तुम्हारे वास्ते कहा है इससे अलग नहीं होनेवाला ब्राह्मण स्वर्ग आदि परम उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ ११६ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकानां हितकाम्यया ॥
धर्मस्य परं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान् ॥ ११७ ॥

वह ऐश्वर्यवान मनु देवलोकोंके हितकी इच्छा करके इस प्रकार से इस सब परम गुह्य धर्म को मेरे वास्ते कहता भया यह भृगुजी का वचन ऋषियों के प्रति है ॥ ११७ ॥

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ॥
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥ ११८ ॥

ब्राह्मण इस प्रकारसे सत्वस्तुको और असत्वस्तुको देखता हुआ सावधान हुवा ब्रह्मस्वरूप आत्मामें संपूर्ण वस्तुको देखे क्योंकि आत्मामें संपूर्णको देखता हुआ ब्राह्मण अधर्म में मन नहीं करता है ॥ ११८ ॥

आत्मैव देवताःसर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ ११९ ॥

इंद्र आदि आत्माही हैं और सब कुछ आत्मामें स्थित है और परमात्माही इन क्षेत्रज्ञ आदि शरीर धारियोंके कर्मके सम्बन्धको उत्पन्न करने वाला है॥११९॥

खं संनिवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् ।
पक्तिदृष्ट्योः परं तेजः स्नेहेऽपो गां च मूर्तिषु ॥१२०॥

वाह्यके आकाशको उदरआदिके आकाशमें एकत्व लीन करके धारण करे और प्राणआदि अंतर्गतवायुमें वाह्यकी वायुको धारणकरे और अग्नि सूर्यके परम तेजको अपने नेत्र आदि तेजसे धारण करे जलको अपने स्नेहमें धारण करे पृथ्वी को अपने शरीरमें धारण करे ॥ १२० ॥

मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रान्ते विष्णुं बले हरम् ।

वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥ १२१ ॥

और मनमें चन्द्रमा दिशाओंको, कानोंमें पैरोंमें विष्णुको, बलमें शिवजीको वाणीमें अग्निको गुदा इन्द्रियमे मित्र देवता को और लिंग इन्द्रियमें प्रजापति ब्रह्माको धारण करे ऐसे इन देवताओंको एकत्व करके भावना करे ॥ १२१ ॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ १२२ ॥

जो ब्रह्मासे आदि ले स्तंबपर्यन्त सबको शिक्षा देता है अर्थात् जिसकी सत्ता-पाके सब अपने अपने कार्योंमें प्रवृत्त है और जो सूक्ष्मसेभी अति सूक्ष्म है शुद्ध सुवर्णके समान जिसके रूपकी उपासना की जाती है और जो स्वप्नकी बुद्धिकी तरह आपही बुद्धिको प्राप्त होता है उसको परम पुरुष परमात्मा जाने ॥ १२२ ॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ॥
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १२३ ॥

इस परमात्माको यज्ञ करने वाले जन अग्निरूपकरके मानते हैं और अग्नि रूपका ही उपदेश देते हैं और अन्य कई ऋषि प्रजाकी रचना करनेवाला होनेसे प्रजापतिरूपसे कहते हैं अन्य कई इंद्ररूपसे कहते हैं और अन्य कई प्राणरूप ही परमात्माको मानते है क्योंकि प्राणोंसे ही यह संसार वर्त्तता है और अन्य कई प्रपंचरहित आनंदस्वरूप ब्रह्म मानते है सर्वगत होनेसे अंतमें ये सब उपासना बन सकती हैं ॥ १२३ ॥

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ॥
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ १२४ ॥

यह परमात्मा पृथ्वी आदि पंचभूतोंसे संपूर्ण जीवोंको संयुक्त कराके सब में व्याप्त है और जन्म वृद्धि नाश इन करके इस संसार को चक्रकी तरह वर्त्तता है ॥ १२४ ॥

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ॥
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ १२५ ॥

इस प्रकार जो पुरुष सब भूतोंमें अपने आत्माकरके आत्माको ही देखता है

यह सबमें समताको प्राप्त होके परमपद ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १२५ ॥

इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन् द्विजः ॥
भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥ १२६ ॥

भृगुजीसे कहा हुआ इस मनुशास्त्रको पढ़ता हुआ द्विज नित्य विहित अनुष्ठानको आचरण करनेवाला हो जाता है और मनोवांछित स्वर्ग मोक्षआदि गतिको प्राप्त होता है ॥ १२६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां
संहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

समाप्तैषा मनुसंहिता ।

इति मनुस्मृति भाषाप्रकाशे द्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥

इति मनुस्मृति भाषाटीका समाप्ता ।